अप्रैल-जून, 2013 [संयुक्तांक]

# उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

**प्रधान संपादक**
अनूप कुमार वार्ष्णेय

**संपादक**
जुगल किशोर

**महत्वपूर्ण निर्णय**

**किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का अधिनियम सं. 56)** – धारा 7क [सपठित किशोर न्याय नियम, 2000 के नियम 12] – अपराध कारित किए जाने के समय किशोर होने का दावा – आयु अवधारण – पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय का प्रवेश रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि महत्वपूर्ण और मान्य है न कि गांव के चौकीदार द्वारा बनाए गए रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि ।

**जोधबीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** 190

**संसद् के अधिनियम**

**धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ** (1) – (13)

**पृष्ठ संख्या 1 – 199** **[2013] 2 उम. नि. प.**

**विधि साहित्य प्रकाशन**
**विधायी विभाग**
**विधि और न्याय मंत्रालय**
**भारत सरकार**

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अप्रैल-जून, 2013 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 199]

**संपादक-मंडल**

श्री पी. के. मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्री एन. एल. मीना,
अपर सचिव (प्रशा.), विधायी विभाग

श्री आर. डी. मीना, संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

डा. बी. एन. मणि, अधिवक्ता,
(पूर्व संपादक) वि.सा.प्र.

डा. प्रीती सक्सेना, प्रोफेसर,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ

डा. वैभव गोयल, संकायाध्यक्ष
विधि संकाय, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

श्री सुरेन्द्र शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली

डा. आर. पी. सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव,
राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री के. जी. अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पाण्डेय,
संपादक

**सहायक संपादक** : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

**उप-संपादक** : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, एम. पी. सिंह, जसवन्त सिंह और बी. के. भटनागर

**कीमत : डाक-व्यय सहित**

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

**© 2013 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय**

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

# सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

**विधि साहित्य प्रकाशन**
**(विधायी विभाग)**
**विधि और न्याय मंत्रालय**
**भारत सरकार**
**भारतीय विधि संस्थान भवन,**
**भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**
**दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105**

## विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

| | पुस्तक का नाम | लेखक | पृष्ठ सं. | कीमत (₹) |
|---|---|---|---|---|
| 1. | भारत का विधिक इतिहास | श्री सुरेन्द्र मधुकर | 410 | 30.00 |
| 2. | माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि | डा. एन. पी. परांजपे | 371 | 40.00 |
| 3. | वाणिज्य विधि | डा. आर. एल. भट्ट | 630 | 108.00 |
| 4. | अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण) | श्री शर्मन लाल अग्रवाल | 357 | 40.00 |
| 5. | अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण) | डा. एस. सी. खरे | 273 | 115.00 |
| 6. | मानव अधिकार | डा. शिवदत्त शर्मा | 340 | 120.00 |
| 7. | दण्ड प्रक्रिया संहिता | न्या. महावीर सिंह | 840 | 200.00 |

## पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

| | पुस्तक का नाम | लेखक | पृष्ठ सं. | मूल दर (₹) | संशोधित दर (₹) |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | संविदा विधि (द्वितीय संस्करण) | डा. रामगोपाल चतुर्वेदी | 552 | 275.00 | 137.00 |
| 2. | श्रम विधि (तृतीय संस्करण) | श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा | 658 | 452.00 | 226.00 |
| 3. | चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण) | डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया | 969 | 293.00 | 146.00 |
| 4. | आधुनिक पारिवारिक विधि | श्री राम शरण माथुर | 767 | 429.00 | 214.00 |
| 5. | भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) | संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे | 209 | 225.00 | 112.00 |
| 6. | हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण) | डा. रवीन्द्र नाथ | 617 | 425.00 | 212.00 |
| 7. | भारतीय दंड संहिता | डा. रवीन्द्र नाथ | 696 | 741.00 | 370.00 |
| 8. | भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण) | श्री माधव प्रसाद वाशिष्ठ | 272 | 165.00 | 82.00 |
| 9. | प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण) | डा. कैलाश चन्द्र जोशी | 635 | 200.00 | 100.00 |
| 10. | विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण) | डा. एस. के. कपूर | 414 | 311.00 | 155.00 |
| 11. | विधि शास्त्र | डा. शिवदत्त शर्मा | 501 | 580.00 | 377.00 |


**विधि साहित्य प्रकाशन**

**(विधायी विभाग)**

**विधि और न्याय मंत्रालय**

**भारत सरकार**

**भारतीय विधि संस्थान भवन,**

**भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001**

# उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अप्रैल-जून, 2013

## निर्णय-सूची


| | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| अनिल हाडा **बनाम** मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड (देखिए – पृष्ठ संख्या 1) | |
| अनीता हाडा **बनाम** मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड | 1 |
| अविनाश बजाज **बनाम** राज्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 1) | |
| ईबे इंडिया प्राइवेट लिमिटेड **बनाम** राज्य और एक अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 1) | |
| उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** मुनेश | 173 |
| केरल राज्य और अन्य **बनाम** मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य | 44 |
| कोपल रोहतगी **बनाम** दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 128) | |
| जोधबीर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य | 190 |
| दरबारा सिंह **बनाम** पंजाब राज्य | 156 |
| दीपक **उर्फ** वायरलैस **बनाम** महाराष्ट्र राज्य | 109 |
| भावना गर्ग और एक अन्य **बनाम** दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य | 128 |


## संसद् के अधिनियम


| | |
|---|---|
| धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ | (1) – (13) |

## विषय-सूची


पृष्ठ संख्या

### कानूनों का निर्वचन

– धारणा खंड – धारणा खंड द्वारा सृजित विधिक कल्पना का प्रयोजन – न्यायालय को इस बात का अभिनिश्चय करना होता है कि विधिक कल्पना किस प्रयोजन के लिए सृजित की गई है, उस कल्पना का सभी वास्तविक परिणामों और दृष्टांतों सहित अनुमान लगाना होता है और ऐसी कल्पना को पूर्ण रूप से प्रभावी करना होता है ।

**अनीता हाडा** बनाम **मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड** 1

### किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का अधिनियम सं. 56)

– धारा 7क [सपठित किशोर न्याय नियम, 2000 के नियम 12] – अपराध कारित किए जाने के समय किशोर होने का दावा – आयु अवधारण – पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय का प्रवेश रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि महत्वपूर्ण और मान्य है न कि गांव के चौकीदार द्वारा बनाए गए रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि ।

**जोधबीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** 190

### दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 300 और 376 – हत्या और बलात्संग – अभियुक्त द्वारा 11 वर्ष की बालिका के साथ बलात्संग करने के पश्चात् उसकी गला घोंट कर हत्या करना – प्रथम इत्तिला सूचना विलम्बित न होना – दो व्यक्तियों द्वारा घटना देखा जाना – प्रत्यक्षदर्शी स्वतंत्र साक्षी का साक्ष्य निष्पक्ष व सही पाया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी की निचले न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई तथा उच्च न्यायालय का दोषमुक्ति का निर्णय अपास्त किया गया ।

**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **मुनेश** 173

**पृष्ठ संख्या**

– धारा 302 और 34 – हत्या – अपीलार्थी-अभियुक्तों द्वारा सामान्य आशय के साथ मृतक की हत्या करना – अपीलार्थियों द्वारा मृतक को घातक क्षतियां कारित करना भी साबित होना जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई – अपीलार्थी की अपील खारिज की गई ।

**दरबारा सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** 156

– धारा 302 और 376 – हत्या और बलात्संग – 11 वर्ष की बालिका की बलात्संग के पश्चात् हत्या किया जाना – वीर्य जांच परीक्षण की रिपोर्ट का अभाव घातक नहीं है जब मृतका का योनिच्छद फटा हुआ पाया गया तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अनुसार मृतका की योनि से खून बहना और उसके गुप्तांगों पर क्षति पाई गई ।

**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **मुनेश** 173

– धारा 395, 396 और 397 – हत्या सहित डकैती – अभियुक्त अपीलार्थी का धारा 395, 396 और 397 के अधीन विचारण और दोषसिद्ध किया गया दो अन्य अभियुक्त घटना कारित किए जाने के समय किशोर थे तथा दो अन्य अभियुक्त फरार रहे – उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर अभियुक्त अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई ।

**दीपक** उर्फ **वायरलैस** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 109

**परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)**

– धारा 138 और 141 – चैक का अनादरण – कंपनी द्वारा अपराध – कंपनी के निदेशकों/अन्य अधिकारियों को अकेले अभियोजित नहीं किया जा

पृष्ठ संख्या

सकता है क्योंकि उनके अभियोजन के लिए कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित करना पूर्वशर्त है ।

**अनीता हाडा** बनाम **मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड** 1

**संविधान, 1950**

– अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 – चिकित्सा पाठ्यक्रम – प्रवेश – केन्द्रीय पूल के लिए स्थानों का आरक्षण – चूंकि चिकित्सा पाठ्यक्रमों में केन्द्रीय पूल के अधीन प्रवेश देने हेतु स्थानों को आरक्षित करने का उद्देश्य उन राज्यों, संघ-राज्य क्षेत्रों की अपेक्षाओं को पूरा करना है जिनके अपने कोई चिकित्सा महाविद्यालय नहीं है, इसलिए भौगोलिक या अन्य युक्तिसंगत आधार पर स्थान आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार की नीति को इस आधार पर असांविधानिक नहीं कहा जा सकता है कि स्रोतों के वर्गीकरण का उसके उद्देश्य से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है ।

**भावना गर्ग और एक अन्य** बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य** 128

– अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 [सपठित भारतीय चिकित्सा परिषद् विनियमों का विनियम 5] – चिकित्सा पाठ्यक्रम में केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश – केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थियों को सामान्य चिकित्सा प्रवेश परीक्षा देना आवश्यक नहीं है क्योंकि उनका चयन उस स्रोत से आवेदन करने वाले अभ्यर्थियों में से योग्यता के आधार पर किया जाना है तथा इस प्रकार किए गए चयन को ऐसे अभ्यर्थियों द्वारा

**पृष्ठ संख्या**

चुनौती नहीं दी जा सकती है जिन्होंने इस पूल से प्रवेश पाने की ईप्सा नहीं की है ।

**भावना गर्ग और एक अन्य** बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य** 128

– अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 – चिकित्सा शिक्षा – केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश – यद्यपि केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थियों को सामान्य चिकित्सा प्रवेश परीक्षा देना आवश्यक नहीं है तथापि, प्रवेश परीक्षा में असफल रहने वाले अभ्यर्थियों को इस पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए और केन्द्रीय सरकार को इस पूल के हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में हुए विकास को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का पुनर्विलोकन करना चाहिए ।

**भावना गर्ग और एक अन्य** बनाम **दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य** 128

– अनुच्छेद 245 और 246 – केन्द्रीय विधि और राज्य विधि के बीच विरोध – विरोध के अवधारण के लिए समय बिन्दु – दो विधियों के बीच विरोध विधि बनाने, अर्थात् उसके अधिनियमन पर ही उद्भूत होता है न कि उसके प्रारंभ या प्रवृत्त होने पर इसलिए ऐसे विधान-मंडल द्वारा, जिसे उस क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त है सम्यक् रूप से बनाया गया ऐसा विधान जो कि प्रवर्तन में नहीं लाया गया है या प्रारंभ नहीं हुआ है, अधीनस्थ विधान-मंडल के उस विधान को शून्य बना सकता है जो कि उसके विरुद्ध है ।

**केरल राज्य और अन्य** बनाम **मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 44

**पृष्ठ संख्या**

– अनुच्छेद 245, 246, सूची 7 की प्रविष्टि 1.2 और 3 – विधायी शक्ति – विधायी शक्ति अनुच्छेद 245 से व्युत्पन्न होती है और अनुसूची 7 की सूचियों की प्रविष्टियां संबंधित विधान-मंडलों का विधायी क्षेत्र सीमांकित करती हैं न कि ऐसी कोई विधायी शक्ति प्रदान करती हैं ।

**केरल राज्य और अन्य** बनाम **मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 44

– अनुच्छेद 246(1), 254(1) और (2) तथा अनुसूची 7 की सूची 1, 2 और 3 – केन्द्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम के बीच विरोध कैसे उद्भूत होता है – संसदीय विधान और राज्य विधान के बीच विरोध दो तरीके से उद्भूत होता है, प्रथमतः, जहां विधान यद्यपि अपने-अपने आबंटित क्षेत्रों में के विषयों के संबंध में अधिनियमित किए गए हैं किन्तु उनमें अतिव्याप्ति और टकराव है और द्वितीयतः, जहां दोनों विधान समवर्ती सूची में के विषयों के संबंध में हैं किन्तु उनमें परस्पर-विरोध है ।

**केरल राज्य और अन्य** बनाम **मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 44

– अनुच्छेद 254 [सपठित केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 4(1क)(2002 के अधिनियम सं. 7 द्वारा यथा-अंतःस्थापित) और चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 1] – विरोध – चिटों के संचालन से संबंधित संपूर्ण विधायी क्षेत्र को ग्रहण करते हुए केन्द्रीय अधिनियम बनाए जाने पर केरल अधिनियम शून्य हो गया था और इस तथ्य के होते हुए भी केन्द्रीय अधिनियम केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं किया गया था, राज्य विधान-मंडल ने 2002 के अधिनियम द्वारा राज्य अधिनियम में धारा 4(1क) अंतःस्थापित करने संबंधी

**पृष्ठ संख्या**

अपना प्राधिकार खो दिया था ।

**केरल राज्य और अन्य** बनाम **मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 44

– अनुच्छेद 254 और अनुच्छेद 367 [सपठित केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 1, चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) की धारा 90, 85 और साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) की धारा 6] – केन्द्रीय अधिनियम के विरुद्ध होने के कारण राज्य अधिनियम का विवक्षित निरसन – किसी अधिनियमिति का निरसन विधान-मंडल के आशय पर निर्भर करता है और यदि उस विधान-मंडल का आशय, जिसे उस स्थिति में सर्वोच्चता प्राप्त है, पश्चात्वर्ती अधिनियमिति द्वारा पूर्ववर्ती अधिनियमिति को पूर्णतः या भागतः निराकृत या समाप्त करना होता है तो यह सीमित निरसन का मामला होगा तथा केन्द्रीय अधिनियम को उस राज्य में प्रवर्तन में न लाए जाने के परिणामस्वरूप विधायी शून्यता पैदा नहीं होगी ।

**केरल राज्य और अन्य** बनाम **मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** 44

## सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21)

– धारा 85 – कंपनियों द्वारा अपराध – कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों का प्रतिनिधिक दायित्व – कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है ।

**अनीता हाडा** बनाम **मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड** 1

## तुलनात्मक सारणी

# उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2013] 2 उम. नि. प.

**अप्रैल-जून, 2013**

| क्र. सं. | निर्णय का नाम व तारीख | उम. नि. प. | | ए. आई. आर. (एस. सी.) | | | एस. सी. सी. | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 1 | 2 | 3 | | 4 | | | 5 | |
| 1. | अनीता हाडा **बनाम** मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड (27 अप्रैल, 2012) | [2013] 2 | 1 | | – | | | – |
| 2. | केरल राज्य और अन्य **बनाम** मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य (8 मई, 2012) | | 44 | 2012 | 2375 | (2012) | 7 | 106 |
| 3. | दीपक **उर्फ** वायरलैस **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (4 सितम्बर, 2012) | | 109 | | – | | 8 | 785 |
| 4. | भावना गर्ग और एक अन्य **बनाम** दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य (5 सितम्बर, 2012) | | 128 | | – | | | – |
| 5. | दरबारा सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (12 सितम्बर, 2012) | | 156 | | – | | 10 | 476 |

| 1 | 2 | 3 | | | 4 | | 5 | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 6. | उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** मुनेश (12 अक्तूबर, 2012) | [2013] | 2 | 173 | 2012 | – | (2012) | 9 | 742 |
| 7. | जोधबीर सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (3 दिसम्बर, 2012) | | | 190 | | – | | | – |

**अनीता हाडा**

बनाम

**मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड**

तथा

**अनिल हाडा**

बनाम

**मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड**

तथा

**अविनाश बजाज**

बनाम

**राज्य**

तथा

**ईबे इंडिया प्राइवेट लिमिटेड**

बनाम

**राज्य और एक अन्य**

27 अप्रैल, 2012

**न्यायमूर्ति दलवीर भंडारी, न्यायमूर्ति सुधांशु ज्योति मुखोपाध्याय और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा**

**परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881(1881 का 26) – धारा 138 और 141 – चैक का अनादरण – कंपनी द्वारा अपराध – कंपनी के निदेशकों/अन्य अधिकारियों को अकेले अभियोजित नहीं किया जा सकता है क्योंकि उनके अभियोजन के लिए कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित करना पूर्वशर्त है ।**

**सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (2000 का 21) – धारा 85 –**

**कंपनियों द्वारा अपराध – कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों का प्रतिनिधिक दायित्व – कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है ।**

**कानूनों का निर्वचन – धारणा खंड – धारणा खंड द्वारा सृजित विधिक कल्पना का प्रयोजन – न्यायालय को इस बात का अभिनिश्चय करना होता है कि विधिक कल्पना किस प्रयोजन के लिए सृजित की गई है, उस कल्पना का सभी वास्तविक परिणामों और दृष्टांतों सहित अनुमान लगाना होता है और ऐसी कल्पना को पूर्ण रूप से प्रभावी करना होता है ।**

प्रस्तुत मामले में 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 2008 की दांडिक अपील सं. 842 में विधि संबंधी जो सामान्य प्रतिपादना विचारार्थ उद्भूत हुई है वह यह है कि क्या किसी कंपनी का प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता कंपनी को एक अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन अभियोजन के लिए दायी होगा । 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 की धारा 85 के निर्वचन से संबंधित विवाद्यक अंतर्वलित है, जो कि तात्विक रूप से अधिनियम की धारा 141 के समरूप है । यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी-कंपनी के एक निदेशक को कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त किए बिना भारतीय दंड संहिता की धारा 292 और 2000 के अधिनियम की धारा 67 के अधीन अभियोजित किया गया था । अभियोजन आरंभ किए जाने की कार्यवाही को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि निदेशकों के साथ-साथ अपीलार्थी-कंपनी के विरुद्ध 2000 के अधिनियम की धारा 85 के साथ पठित धारा 67 के अधीन आरोप साबित होते हैं और उसने उक्त आधार पर कार्यवाही को अभिखंडित करने से इनकार कर दिया । इन दो अपीलों में जो महत्वपूर्ण विवाद्यक उद्भूत हुआ है वह यह कि क्या कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त किए बिना अभियोजन के लिए दायी ठहराया जा सकता था और क्या कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना निदेशकों को उपर्युक्त उपबंधों के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया जा सकता था । संविवाद की सादृश्यता को ध्यान में रखते हुए इन दो अपीलों को 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 2008 की दांडिक अपील सं. 842 के साथ जोड़ दिया गया था । 2008 की दांडिक अपील सं. 838 में अपीलार्थी ने, जो कि कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक कंपनी की प्राधिकृत

हस्ताक्षरकर्ता थी, प्रत्यर्थी के पक्ष में 5,10,000/- रुपए की रकम का एक चैक जारी किया था जो कि अनादृत हो गया जिसके फलस्वरूप उक्त प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद फाइल करके दांडिक कार्रवाई आरंभ की थी । परिवाद याचिका में कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया गया था । तथापि, मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अपराध का संज्ञान किया । उक्त आदेश से व्यथित होकर उसने दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिया और उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 और धारा 139 तथा विभिन्न अन्य कारकों पर विचार करने के पश्चात् यह राय व्यक्त की कि जिस आधार पर जोर दिया गया है वह अभियुक्त की प्रतिरक्षा के क्षेत्र के अंतर्गत आएगा और इससे कार्यवाही को अभिखंडित करने की बात को बल नहीं मिलेगा । उक्त आदेश को दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष चुनौती देते समय दी गई दलील का तत्व यह था कि चूंकि कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया गया था इसलिए अधिनियम की धारा 141 में विधान-मंडल द्वारा सृजित विधिक कल्पना लागू नहीं होगी । यह दलील दी गई थी कि जब एक बार कानूनी उपबंध द्वारा कंपनी तथा कंपनी के कार्यों के लिए उत्तरदायी व्यक्ति के विरुद्ध विधिक कल्पना सृजित हो जाती है तो इन धारणा उपबंधों के अधीन सन्निविष्ट पूर्व शर्तों का पूर्णतः पालन करना होता है और ऐसी एक शर्त मूल अपराधी को आलिप्त करना है । यह उल्लेखनीय है कि आरंभ में इन दोनों अपीलों की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने सुनवाई की थी और अधिनियम की धारा 138 और 141 के निर्वचन के संबंध में दोनों विद्वान् न्यायाधीशों के बीच मतभेद था और इसलिए मामला इस न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – कंपनी का दांडिक दायित्व हो सकता है और इसके अलावा यदि ऐसे व्यक्तियों के समूह का, जो कंपनियों के कारबार को मार्गदर्शित करते हैं, आपराधिक आशय है तो वह निगमित निकाय में आरोपित किया जाएगा । इसी पृष्ठभूमि में, अधिनियम की धारा 141 को समझना होगा । उक्त उपबंध में स्पष्ट रूप से यह अनुबंधित है कि जब कोई व्यक्ति, जो एक कंपनी है, कोई अपराध कारित करता है तब कतिपय प्रवर्गों के व्यक्ति, जो भारसाधक हैं, तथा कंपनी के बारे में यह समझा जाएगा कि वे धारा 138 के अधीन अपराधों के लिए दायी हैं । इस प्रकार, कानूनी अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट है । (पैरा 25)

यह अभिनिश्चित करना न्यायालय का बाध्यकारी कर्तव्य है कि किस प्रयोजन के लिए विधिक कल्पना सृजित की गई है । न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसी कल्पना को सभी वास्तविक परिणामों और घटनाओं सहित माने जब तक कि उसे ऐसा करने के लिए प्रतिषिद्ध न किया गया हो । इसके अलावा, ''समझा जाएगा'' पद के प्रयोग का पठन उसके संदर्भ में किया जाना है और इसके अतिरिक्त इसका पूर्ण तर्कसम्मत प्रयोजन और अभिप्राय समझा जाना है । इसी कारण, आधुनिक विधान में ''समझा जाएगा'' पद का प्रयोग अनेक प्रयोजनों के लिए किया गया है । विधान-मंडल के उद्देश्य को ध्यान में रखना होगा । (पैरा 32)

यह स्मरणीय है कि अधिनियम की धारा 141 का संबंध कंपनी द्वारा किए गए अपराधों से है । यह अन्य व्यक्तियों को कंपनी की ओर से अपराध कारित करने के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाती है । जैसा कि हमने इससे पूर्व कथन किया है, प्रतिनिधिक दायित्व तभी लागू होता है जब अधिनियम की धारा 141 में अधिकथित पूर्वशर्त पूरी हो जाती है । इस बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है कि चूंकि यह दायित्व दांडिक स्वरूप का है इसलिए इस उपबंध का कठोर अर्थान्वयन करना आवश्यक और एक प्रकार से न्यायसंगत होगा । (पैरा 39)

यह ध्यान में रखा जाना है कि दंड देने की शक्ति विधान-मंडल में निहित होती है और वह अधिनियम की धारा 141 में सुनिश्चित है जिसमें स्पष्ट रूप से कंपनी द्वारा अपराध कारित करने की बात कही गई है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने प्रबल रूप से इस बात पर जोर दिया है कि इस धारा में ''साथ ही'' पद के प्रयोग का अत्यंत महत्व है और इससे कंपनी साथ ही निदेशक और/या ऐसे अन्य अधिकारी उसकी परिधि के भीतर आ जाते हैं, जो कंपनी के कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं और इसलिए निदेशकों या अन्य अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन चलाया जा सकता है भले ही कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किया गया हो अथवा नहीं । ''साथ ही'' शब्दों का इसी संदर्भ में अर्थ लगाया जाना है । कठोर अर्थान्वयन का सिद्धांत लागू करते हुए हमारी यह सुविचारित राय है कि अन्य व्यक्तियों का प्रतिनिधिक दायित्व लागू करने के लिए कंपनी द्वारा अपराध कारित किया जाना एक सुस्पष्ट पूर्वशर्त है । अतः, धारा में आने वाले ''साथ ही कंपनी'' शब्दों से पूर्णतः असंदिग्ध रूप से यह स्पष्ट होता है कि जब कंपनी को अभियोजित किया जा सकता है केवल तभी अन्य प्रवर्गों में उल्लिखित व्यक्तियों को अपराध के लिए याचिका में किए जाने वाले प्रकथनों और उनके सबूत के अध्यधीन रहते हुए प्रतिनिधिक रूप से दायी

ठहराया जा सकेगा । इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि कंपनी एक विधिक व्यक्ति है और उसका अपना सम्मान है । यदि उसके विरुद्ध कोई निष्कर्ष लेखबद्ध किया जाता है तो उसकी ख्याति में गिरावट आ जाएगी । ऐसी स्थितियां भी हो सकती हैं जब कंपनी की ख्याति तब प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है जब उसके किसी निदेशक को अभ्यारोपित किया जाता है । (पैरा 42)

अधिनियम की धारा 141 के अधीन अभियोजन को कायम रखने के लिए कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित करना अनिवार्य है । अन्य प्रवर्गों के अपराधियों को केवल प्रतिनिधिक दायित्व की कसौटी के आधार पर इस जाल में लाया जा सकता है जैसा कि स्वयं उपबंध में ही अनुबंधित है । (पैरा 43)

## निर्दिष्ट निर्णय

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2011] | (2011) 1 एस. सी. सी. 74 : **इरिडियम इंडिया टेलीकाम लिमिटेड** बनाम **मोटोरोला इन्क. और अन्य** ; | 23 |
| [2008] | (2008) 13 एस. सी. सी. 678 : **सूर्यालक्ष्मी काटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **राजवीर इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड और अन्य** ; | 5 |
| [2008] | (2008) 2 एस. सी. सी. 417 : **सरबजीत रिक सिंह** बनाम **भारत संघ** ; | 42 |
| [2008] | (2008) 2 एस. सी. सी. 305 : **विनय देवन्ना नायक** बनाम **रयोत सेवा सहकारी बैंक लिमिटेड** ; | 12 |
| [2007] | (2007) 14 एस. सी. सी. 753 : **सर्व इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल कंसलटेंसी प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **लायड्स रजिस्टर ऑफ शिपिंग इंडियन आफिस स्टाफ प्राविडेंट फंड और एक अन्य** ; | 5,9 |
| [2007] | (2007) 12 एस. सी. सी. 788 : **के. श्रीकांत सिंह** बनाम **नार्थ ईस्ट सिक्यूरिटीज़ लिमिटेड और एक अन्य** ; | 5,9 |

| | | |
|---|---|---|
| [2007] | (2007) 11 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1481 : **मधुमिलन सिनटेक्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ; | 5 |
| [2007] | (2007) 10 एस. सी. सी. 528 : **दीवान सिंह और अन्य** बनाम **राजेन्द्र प्रसाद अरदेवी और अन्य** ; | 42 |
| [2007] | (2007) 9 एस. सी. सी. 481 : **एन. के. वाही** बनाम **शेखर सिंह और अन्य** ; | 5 |
| [2007] | (2007) 6 एस. सी. सी. 555 : **सी. सी. अल्वी हाजी** बनाम **पलपेट्टी मोहम्मद और एक अन्य** ; | 12 |
| [2007] | (2007) 5 एस. सी. सी. 108 : **एन. रंगाचारी** बनाम **भारत संचार निगम लिमिटेड** ; | 5 |
| [2007] | (2007) 5 एस. सी. सी. 54 : **एवरेस्ट एडवर्टाइजिंग (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य** ; | 5 |
| [2007] | (2007) 3 एस. सी. सी. 693: **सरोज कुमार पोद्दार** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और एक अन्य** ; | 5 |
| [2006] | (2006) 10 एस. सी. सी. 581 : **सविता राममूर्ति और एक अन्य** बनाम **आर. बी. एस. चन्नाबासवाराध्या** ; | 5 |
| [2006] | ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2179 : **डी. विनोद शिवप्पा** बनाम **नंदा बेल्ली अप्पा** ; | 12 |
| [2005] | (2005) 8 एस. सी. सी. 89 : **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला और एक अन्य** ; | 5,6,9,12,33 |
| [2005] | (2005) 4 एस. सी. सी. 530 : **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक और अन्य** बनाम **प्रवर्तन निदेशालय और अन्य** ; | 5,9,24 |

| | | |
|---|---|---|
| [2005] | (2005) 4 एस. सी. सी. 173 =<br>ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2436 :<br>**एस. वी. मजूमदार और अन्य** बनाम **गुजरात स्टेट फर्टिलाइज़र कंपनी लिमिटेड और एक अन्य** ; | 5,9,12 |
| [2003] | ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2035 :<br>**गोवाप्लास्ट प्राइवेट श्री लिमिटेड** बनाम **चीको उरसुला डिसूज़ा और एक अन्य** ; | 12 |
| [2002] | 2002 क्रिमिनल ला जर्नल 3935 (एस. सी.) :<br>**आई. सी. डी. सी. लिमिटेड** बनाम **बीना शबीर और एक अन्य** ; | 12 |
| [2001] | (2001) 10 एस. सी. सी. 91 =<br>ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2432 :<br>**आर. राजगोपाल** बनाम **एस. एस. वेंकट** ; | 6,12 |
| [2001] | जे. टी. 2001 (1) एस. सी. 325 :<br>**रजनीष अग्रवाल** बनाम **अमित जे. भल्ला** ; | 12 |
| [2001] | ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 676 :<br>**डालमिया सीमेंट (भारत) लिमिटेड** बनाम **मैसर्स गैलेक्सी ट्रेडर्स एंड एजेन्सीज़ लिमिटेड और अन्य** ; | 12 |
| [2000] | (2000) 1 एस. सी. सी. 1 :<br>**अनिल हाडा** बनाम **इंडियन एक्रेलिक लिमिटेड** ; | 6,9,11,12,36,37,43 |
| [1999] | (1999) 4 एस. सी. सी. 253 :<br>**एन. ई. पी. सी. माइकोन लिमिटेड और अन्य** बनाम **मैग्मा लीज़िंग लिमिटेड** ; | 12 |
| [1999] | जे. टी. 1999 (10) एस. सी. 236 :<br>**मैसर्स बिलाकचन्द ज्ञानचन्द कंपनी** बनाम **ए. चिन्नास्वामी** ; | 12 |
| [1998] | ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1057 :<br>**मैसर्स मोदी सीमेंट लिमिटेड** बनाम **श्री कुचिल कुमार नंदी** ; | 12 |

[1997] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1815 :
**तमिलनाडु राज्य** बनाम **आरूरन शुगर्स लिमिटेड** ; 31

[1996] (1996) 2 एस. सी. सी. 739 :
**इलैक्ट्रोनिक्स ट्रेड एंड टैक्नोलाजी डेवेलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड, सिकंदराबाद** बनाम **इंडियन टैक्नोलोजिस्ट्स एंड इंजीनियर्स (इलैक्ट्रोनिक्स) (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य** ; 12

[1995] (1995) 1 एस. सी. सी. 537 :
**हरीश टंडन** बनाम **अपर जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद** ; 31

[1994] 1994 के. बी. 146 = (1984) 1 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 119 (डी.सी.) :
**डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रासिक्यूशन्स** बनाम **केंट एंड ससेक्स कंट्रेक्टर्स लिमिटेड** ; 22

[1994] (1994) 2 एस. सी. सी. 323 :
**एम. वेणुगोपाल** बनाम **प्रभागीय प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम** ; 31

[1988] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 191 :
**जे. के. काटन स्पिन्निंग एंड वीविंग मिल्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 31

[1988] [1988] 1 उम. नि. प. 210 =
ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1128 :
**उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड** बनाम **मैसर्स मोदी डिस्टिलरी और अन्य** ; 38,43

[1987] (1987) 1 एस. सी. सी. 424 :
**भारतीय रिजर्व बैंक** बनाम **पियरलैस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य** ; 42

[1984] (1984) 4 एस. सी. सी. 352 :
**शिवरतन अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 5,9,11,34,35,36,37,43,46

[1970] (1970) 3 एस. सी. सी. 491 :
**मद्रास राज्य** बनाम **सी. वी. पारेख और एक अन्य**; 5,6,9,11,12,34,35,37,43

| | | |
|---|---|---|
| [1970] | [1970] 2 उम. नि. प. 890 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 44 : **हीरा एच. अडवानी और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; | 30 |
| [1961] | ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 838 : **मुख्य खान निरीक्षक और एक अन्य** बनाम **लाला करम चन्द थापर और अन्य** ; | 31 |
| [1956] | (1956) 3 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 624 : **एच. एल. बोल्टन (इंजीनियरिंग) कंपनी लिमिटेड** बनाम **टी. जे. ग्राह्म एंड सन्स लिमिटेड** ; | 21 |
| [1955] | ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 661 : **बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ; | 29 |
| [1952] | 1952 अपील केसेज़ 109 : **ईस्ट इंड ड्वेलिंग्स कंपनी लिमिटेड** बनाम **फिनस्बरी बोरो काउन्सिल** ; | 28 |
| [1915] | (1915) अपील केसेज़ 705 = 31 टी. एल. आर. 294 : **लेन्नार्ड कैरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **एशियाटिक पैट्रोलियम कंपनी लिमिटेड** ; | 21 |
| [1881] | (1881) 17 चांसरी डिवीजन 746 : **रि लेवी** । | 27 |

**अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2008 की दांडिक अपील सं. 838.**

2006 के दांडिक प्रकीर्ण मामला सं. 928-929 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 12 जनवरी, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

**उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से** सर्वश्री पी. पी. मल्होत्रा, अपर महासालिसिटर, अरुण मोहन (न्यायमित्र), डा. अभिषेक मनु सिंघवी, अमित देसाई, सिद्धार्थ लूथरा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, मनीष मल्होत्रा, पंकज गुप्ता, रजत बाली, श्री सिंह, (सुश्री) रूबी सिंह आहूजा,

(सुश्री) सुप्रिया आहूजा, रौनक ढिल्लों, उदित मेहंदीरत्ता, अमित भंडारी, (सुश्री) माणिक करंजावाला, विजय कुमार सोंढी, सलीम अंसारी, वासिम बेग, सुहैल मलिक, जयवीर शेरगिल, सुब्रमण्यम् प्रसाद, राजेश हरनाल, भारत बी. सेठी, (सुश्री) ज्योति मेहंदीरत्ता, आर. एन. करंजावाला, पी. के. डे. शैलेन्द्र शर्मा, (सुश्री) सोनिया मल्होत्रा, बी. वी. बलराम दास और (सुश्री) गार्गी खन्ना

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने दिया ।

**न्या. मिश्रा** – 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 2008 की दांडिक अपील सं. 842 में विधि संबंधी जो सामान्य प्रतिपादना विचारार्थ उद्भूत हुई है वह यह है कि क्या किसी कंपनी का प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता कंपनी को एक अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 138 के अधीन अभियोजन के लिए दायी होगा । यह उल्लेखनीय है कि आरंभ में इन दोनों अपीलों की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने सुनवाई की थी और अधिनियम की धारा 138 और 141 के निर्वचन के संबंध में दोनों विद्वान् न्यायाधीशों के बीच मतभेद था और इसलिए मामला हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है ।

2. 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 (जिसे संक्षेप में '2000 का अधिनियम' कहा गया है) की धारा 85 के निर्वचन से संबंधित विवाद्यक अंतर्वलित है, जो कि तात्विक रूप से अधिनियम की धारा 141 के समरूप है । यह उल्लेखनीय है कि अपीलार्थी-कंपनी के एक निदेशक को कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त किए बिना भारतीय दंड संहिता की धारा 292 और 2000 के अधिनियम की धारा 67 के अधीन अभियोजित किया गया था । अभियोजन आरंभ किए जाने की कार्यवाही को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी और उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि निदेशकों के साथ-साथ अपीलार्थी-कंपनी के विरुद्ध 2000 के अधिनियम की धारा 85 के साथ पठित धारा 67 के अधीन आरोप साबित होते हैं और उसने उक्त आधार पर कार्यवाही को अभिखंडित करने से इनकार कर

दिया । इन दो अपीलों में जो महत्वपूर्ण विवाद्यक उद्भूत हुआ है वह यह कि क्या कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त किए बिना अभियोजन के लिए दायी ठहराया जा सकता था और क्या कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किए बिना निदेशकों को उपर्युक्त उपबंधों के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजित किया जा सकता था । संविवाद की सादृश्यता को ध्यान में रखते हुए इन दो अपीलों को 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 2008 की दांडिक अपील सं. 842 के साथ जोड़ दिया गया था ।

3. हमने पहले ही यह उल्लेख कर दिया है कि अधिनियम की धारा 138 और 141 के निर्वचन की बाबत मतभेद था और इसलिए हम 2008 की दांडिक अपील सं. 838 के तथ्यों का उल्लेख करेंगे और इसके पश्चात् 2009 की दांडिक अपील सं. 1482 और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 के तथ्यों के प्रति निर्देश करेंगे ।

4. अपीलार्थी, अनीता हाडा ने, जो कि कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत एक कंपनी इंटरनेशनल ट्रेवल्स लिमिटेड की प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता थी, प्रत्यर्थी, अर्थात् मैसर्स गॉडफादर ट्रेवल्स एंड टुअर्स प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में तारीख 17 जनवरी, 2011 को 5,10,000/- रुपए की रकम का एक चैक जारी किया था जो कि अनादृत हो गया जिसके फलस्वरूप उक्त प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन संबंधित न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष परिवाद फाइल करके दांडिक कार्रवाई आरंभ की थी । परिवाद याचिका में कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया गया था । तथापि, मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी-अभियुक्त के विरुद्ध अपराध का संज्ञान किया ।

5. उक्त आदेश से व्यथित होकर उसने दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अधिकारिता का अवलंब लिया और उच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 और धारा 139 तथा विभिन्न अन्य कारकों पर विचार करने के पश्चात् यह राय व्यक्त की कि जिस आधार पर जोर दिया गया है वह अभियुक्त की प्रतिरक्षा के क्षेत्र के अंतर्गत आएगा और इससे कार्यवाही को अभिखंडित करने की बात को बल नहीं मिलेगा । उक्त आदेश को दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष चुनौती देते समय दी गई दलील का तत्व यह था कि चूंकि कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया गया था इसलिए अधिनियम की धारा 141 में विधान-मंडल द्वारा सृजित विधिक कल्पना लागू नहीं होगी । यह दलील दी गई थी कि जब एक बार

कानूनी उपबंध द्वारा कंपनी तथा कंपनी के कार्यों के लिए उत्तरदायी व्यक्ति के विरुद्ध विधिक कल्पना सृजित हो जाती है तो इन धारणा उपबंधों के अधीन सन्निविष्ट पूर्व शर्तों का पूर्णतः पालन करना होता है और ऐसी एक शर्त मूल अपराधी को आलिप्त करना है । न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने अधिनियम की धारा 138 और धारा 141 का विश्लेषण किया और **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक और अन्य** बनाम **प्रवर्तन निदेशालय और अन्य**[1]; **मधुमिलन सिनटेक्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[2]; **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला और एक अन्य**[3]; **सविता राममूर्ति और एक अन्य** बनाम **आर. बी. एस. चन्नाबासवाराध्या**[4]; **एस. वी. मजूमदार और अन्य** बनाम **गुजरात स्टेट फर्टिलाइज़र कंपनी लिमिटेड और एक अन्य**[5]; **सर्व इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल कंसलटेंसी प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **लायड्स रजिस्टर ऑफ शिपिंग इंडियन आफिस स्टाफ प्राविडेंट फंड और एक अन्य**[6]; **के. श्रीकांत सिंह** बनाम **नार्थ ईस्ट सिक्यूरिटीज़ लिमिटेड और एक अन्य**[7]; **सूर्यालक्ष्मी काटन मिल्स लिमिटेड** बनाम **राजवीर इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड और अन्य**[8]; **एन. रंगाचारी** बनाम **भारत संचार निगम लिमिटेड**[9]; **एवरेस्ट एडवर्टाइजिंग (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य**[10]; **सरोज कुमार पोद्दार** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और एक अन्य**[11]; **एन. के. वाही** बनाम **शेखर सिंह और अन्य**[12]; वाले मामलों में के विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया और **शिवरतन अग्रवाल और एक अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[13] वाले मामलों में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का उल्लेख किया जिसमें

---

[1] (2005) 4 एस. सी. सी. 530.
[2] (2007) 11 एस. सी. सी. 297 = ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 1481.
[3] (2005) 8 एस. सी. सी. 89.
[4] (2006) 10 एस. सी. सी. 581.
[5] (2005) 4 एस. सी. सी. 173 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2436.
[6] (2007) 14 एस. सी. सी. 753.
[7] (2007) 12 एस. सी. सी. 788.
[8] (2008) 13 एस. सी. सी. 678.
[9] (2007) 5 एस. सी. सी. 108.
[10] (2007) 5 एस. सी. सी. 54.
[11] (2007) 3 एस. सी. सी. 693.
[12] (2007) 9 एस. सी. सी. 481.
[13] (1984) 4 एस. सी. सी. 352.

**मद्रास राज्य** बनाम **सी. वी. पारेख और एक अन्य**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय से प्रभेद किया गया था और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "28. विद्वान् न्यायाधीशों के प्रति अत्यंत सम्मान व्यक्त करते हुए इससे सहमत होना कठिन है । यदि इन निष्कर्षों को तर्कसम्मत परिणाम दिया जाता है तो इसके परिणामस्वरूप एक असंगत स्थिति उत्पन्न होती है । विचारण न्यायालय को प्रस्तुत मामले में, यद्यपि कंपनी एक अभियुक्त नहीं है यह निष्कर्ष निकालना होगा कि वह दोषी है । यद्यपि कंपनी एक विधिक व्यक्ति है तथापि, वह एक पृथक् इकाई है । निदेशक बदलते रह सकते हैं । किन्तु कंपनी बनी रहती है । बाजार में उसकी अपनी प्रतिष्ठा और हैसियत होती है जिसे बनाए रखना आवश्यक होता है । कोई भी विधि के किसी प्राधिकार के बिना उसे दंडित नहीं कर सकता या उसे अपराध कारित करने का दोषी नहीं ठहरा सकता है । यह निष्कर्ष लेखबद्ध करने से पूर्व कि वह कोई गंभीर अपराध कारित करने की दोषी है, उसकी सुनवाई की जा सकती है । हो सकता है कि उस निदेशक का, जो कि किसी समय कंपनी का भारसाधक रहा था, कंपनी में कोई हित न हो । हो सकता है कि वह कंपनी का बचाव न करे । यह आवश्यक नहीं है वह उसका निदेशक बना रहे । कंपनी के प्रबंधतंत्र में परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए वह अपनी दुश्मनी निकालना चाहता हो । इस प्रकृति की स्थिति में, कंपनी समस्त आशय और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए निश्चित रूप से दोषसिद्ध ठहराई जाएगी यद्यपि वह अभियुक्त नहीं थी और इस प्रकार उसे अपनी प्रतिरक्षा करने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया गया था ।
>
> 29. कोई अपराध कारित करने वाले किसी व्यक्ति को, चाहे वह नैसर्गिक हो या विधिक, कुछ अधिकार प्राप्त हैं । यदि उसे उस आधार पर कोई अपराध कारित करने का दोषी पाया जाना है जिस आधार पर उसके निदेशकों को दोषी ठहराया जाता है तो दंड प्रक्रिया संहिता में अधिकथित प्रक्रियाओं का अनुसरण अवश्य किया जाना चाहिए । ऐसे किसी विवाद्यक का अवधारण करते समय मामले के सभी सुसंगत पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए । वस्तुस्थिति को अनदेखा नहीं किया जा सकता है । अभियुक्त व्यक्तियों को

---

[1] (1970) 3 एस. सी. सी. 491.

अधिनियम की धारा 138 के अधीन अन्य बातों के साथ-साथ कानूनी उपधारणाओं के आधार पर अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया जा रहा है ।

उसमें अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंध चैक के लेखीवाल या उसके धारक के पक्ष में और अभियुक्त के विरुद्ध जाते हैं । अधिनियम की धारा 20, धारा 118(ग), धारा 139 और धारा 140 कुछ ऐसे ही उपबंध हैं । यह अधिनियम एक शास्तिक कानून है । सामान्य विधि के अंतर्गत आने वाले अपराधों के विपरीत इसमें प्रतिवर्तित भार के लिए उपबंध हैं । यदि कुछ आधारभूत तथ्य स्थापित कर दिए जाते हैं तो साबित करने का भार अभियुक्त पर अंतरित हो जाता है ।

अतः, इस प्रकृति के कानून का निर्वचन करते समय यह समझना कठिन है कि मुख्य अपराधी, अर्थात् कंपनी को कोई अपराध कारित करने के लिए विधिक रूप से दायी ठहराना अनुज्ञेय है हालांकि उसे अपनी प्रतिरक्षा करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ है । यह ऋजुता और न्याय के समस्त सिद्धांतों के विरुद्ध है । यह विधि संबंधी शासन के विपरीत है । हमारी सांविधानिक स्कीम के अनुसार किसी भी कानून का अर्थान्वयन ऐसी रीति में नहीं किया जा सकता है जिससे कि किसी व्यक्ति को सुने जाने का अवसर देने से इनकार किया जा सके । यह न केवल सामान्य बोध के विरुद्ध होगा बल्कि इसे असांविधानिक भी ठहराया जा सकता है । अतः, मेरी राय में ऐसा अर्थान्वयन करने से बचना चाहिए ।

किसी भी दशा में इस प्रकृति के मामले में, वह अर्थान्वयन, जो आवश्यक वस्तु अधिनियम, खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम का अवलंब लेते समय उपलब्ध हो सकता है जिससे समाज पर व्यापक रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तब लागू नहीं किया जा सकता है जब उसमें केवल एक ही प्राइवेट व्यक्ति अंतर्वलित हो ।"

6. इसके पश्चात्, विद्वान् न्यायाधीश ने **अनिल हाडा** बनाम **इंडियन एक्रेलिक लिमिटेड**[1] और **आर. राजगोपाल** बनाम **एस. एस. वेंकट**[2] वाले निर्णयों के प्रति निर्देश किया, **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय से प्रभेद किया और यह राय व्यक्त की कि उक्त मामले में जिस विवाद्यक को

---

[1] (2000) 1 एस. सी. सी. 1.

[2] (2001) 10 एस. सी. सी. 91 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2432.

विनिश्चित किया गया है उसे उस मामले में विद्यमान तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में समझना है क्योंकि कंपनी परिसमापनाधीन होने के कारण उसे अभियोजित नहीं किया जा सकता था । इस आशय की मताभिव्यक्तियों को कि कंपनी के विरुद्ध अभियोजन चलाने की आवश्यकता नहीं है, इतरोक्ति माना गया था न कि विनिश्चयाधार । न्यायमूर्ति सिन्हा ने स्पष्ट रूप से यह राय व्यक्त की कि न्यायपीठ **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** (उपर्युक्त) और **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय से आबद्ध थी । इस प्रकार कथन करने के पश्चात्, उसने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया : –

> "यह कहना अलग बात है कि परिवाद याचिका में अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध इस आधार पर कार्यवाही की गई कि कंपनी ने अपराध कारित नहीं किया था बल्कि अभियुक्त ने अपराध कारित किया था किन्तु यह कहना भी अलग बात है कि यद्यपि कंपनी मुख्य अपराधी थी तथापि, उसे अभियुक्त बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।
>
> हमारे मन में इस संबंध में किसी भी प्रकार का कोई संदेह नहीं है कि ऐसे अन्य व्यक्तियों के अभियोजन के लिए, कंपनी का अभियोजन अनिवार्य है, जो अभ्यर्थियों के दूसरे और तीसरे प्रवर्ग के अंतर्गत आते हैं, अर्थात् प्रत्येक ऐसा व्यक्ति जो कंपनी का भारसाधक था और उसके कामकाज के लिए उत्तरदायी था और ऐसा अन्य व्यक्ति जो कंपनी का निदेशक या प्रबंध निदेशक या सचिव या अधिकारी था जिसकी मौनानुकूलता से या जिसकी उपेक्षा के कारण कंपनी ने अपराध कारित किया था ।"

7. विद्वान् न्यायाधीश ने लेक्स नॉन कोजिट एड इम्पोसिबिला (विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती) सूत्र का भी उल्लेख किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "मेरी राय में, उक्त उपबंध का सही निर्वचन यह होगा कि कंपनी को अभियुक्त बनाया जाना है किन्तु 'विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती (लेक्स नॉन कोजिट एड इम्पोसिबिला)' को लागू करते हुए, अर्थात्, यदि किसी विधिक अड़चन के कारण कंपनी के विरुद्ध किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी की मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है तो अन्य अभियुक्तों के विरुद्ध विचारण तभी चलाया जा सकता है यदि धारा 138 तथा धारा 141 के संघटकों की अन्यथा पूर्ति हो जाती है । ऐसी दशा में,

यह एक ऐसा मामला नहीं होगा जिसमें कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया गया था बल्कि ऐसा मामला होगा जिसमें विधिक वर्जन के विद्यमान होने के कारण कंपनी के विरुद्ध अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है । ऐसे मामलों के बीच विभेद को ध्यान में रखा जाना चाहिए, एक जहां किसी कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया गया था और दूसरा जहां उसे अभियुक्त बनाए जाने के बावजूद किसी विधिक वर्जन के कारण उसके विरुद्ध अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है ।"

8. उसने उपर्युक्त मत अपनाते हुए अपीलें मंजूर कर दीं ।

9. न्यायमूर्ति वी. एस. सीरपुरकर ने तथ्यों को वर्णित करने और अधिनियम की धारा 141(1) के प्रति निर्देश करने के पश्चात्, जो कि अतिरिक्त दांडिक दायित्व के संबंध में है, यह राय व्यक्त की कि भले ही इस मामले में अपराध अभिकथित रूप से मैसर्स इंटरनेशनल ट्रेवल्स द्वारा कारित किए जाने के कारण अपीलार्थी के विरुद्ध दायित्व प्रतिनिधिक है तो भी यह उपधारित किया जाएगा कि अपीलार्थी ने भी अपराध कारित किया था और मैसर्स इंटरनेशनल ट्रेवल्स को अभियुक्त के रूप में शामिल न किए जाने का कोई महत्व नहीं होगा । माननीय न्यायमूर्ति ने इसके अलावा यह अभिनिर्धारित किया कि **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक और अन्य** (उपर्युक्त), **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** (उपर्युक्त), **सविता राममूर्ति और एक अन्य** (उपर्युक्त), **एस. वी. मजूमदार और अन्य** (उपर्युक्त), **सर्व इन्वेस्टमेंट एंड फाइनेंशियल कंसलटेंसी प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** (उपर्युक्त) और **के. श्रीकांत सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामलों में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह संकेत मिलता हो कि जब तक स्वयं कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया जाता है तब तक केवल चैक के हस्ताक्षरकर्ता पर अभियोजन नहीं चलाया जा सकता है । इसके पश्चात्, विद्वान् न्यायाधीश ने **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के प्रति निर्देश किया और यह मत व्यक्त किया कि उक्त मामले में **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) और **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयों के प्रति निर्देश किया गया था और इसलिए यह एक बाध्यकर पूर्वनिर्णय है और इसे इतरोक्ति नहीं समझा जा सकता है । न्यायमूर्ति सीरपुरकर ने आगे यह कथन किया कि "विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती" का सिद्धांत लागू नहीं होगा । इसके अलावा, विद्वान् न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में यह अभी विनिश्चित किया जाना है कि क्या गलती कंपनी की थी या स्वयं अपीलार्थी की थी और यह साबित

नहीं किया जा सका है कि क्या अभियुक्त द्वारा जारी किया गया चैक कंपनी की ओर से जारी किया गया था या उसके व्यक्तिगत दायित्व को पूरा करने के लिए जारी किया गया था । अंततोगत्वा, माननीय न्यायमूर्ति ने परिवाद में किए गए अभिकथनों के प्रति निर्देश किया जो कि इस आशय के थे कि दो अभियुक्त व्यक्तियों, अर्थात् अनिल हाडा और अनीता हाडा अपने ग्राहकों के लिए विमान टिकटों का क्रय किया करते थे और उन्होंने समय-समय पर कंपनी की ओर से टिकटें क्रय की थीं और चैक जारी किए थे । अभियुक्त सं. 1 कंपनी के कारबार का संचालन करती थी और वह परिवादी से टिकटें भी क्रय किया करती थीं । विद्वान् न्यायाधीश ने उपर्युक्त आधार पर यह राय व्यक्त की कि मूलभूत शिकायत दोनों अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध उनकी व्यष्टिक हैसियत में है और हो सकता है कि वे अपनी ट्रेवलिंग कंपनी के लिए टिकटों का क्रय करते हों । यह मत अपनाते हुए उसने दोनों अपीलें खारिज कर दीं ।

10. हमने 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 842 में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री मनीष मल्होत्रा, 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 में अपीलार्थी की ओर से और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 में प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल डा. अभिषेक मनु सिंघवी, 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 में अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री सिद्धार्थ लूथरा, 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 842 में प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल श्री राजेश हरनाल, 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 में प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री पी. पी. मल्होत्रा तथा विद्वान् न्यायमित्र श्री अरुण मोहन की सुनवाई की ।

11. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने इस प्रस्ताव के समर्थन में कि निदेशकों, विभिन्न हस्ताक्षरकर्ताओं और अन्य प्रवर्गों के अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन चलाने के लिए कंपनी को आलिप्त करना सुस्पष्ट रूप से अनिवार्य है, निम्न प्रकार दलीलें दीं : –

(क) चूंकि अधिनियम की धारा 141 की भाषा पूर्णतः सरल और स्पष्ट है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला होगा कि कंपनी ने अपराध कारित किया है और ऐसा निष्कर्ष तब तक अभिलिखित नहीं किया जा सकता है जब तक कंपनी न्यायालय के समक्ष पक्षकार न हो, विशेषकर तब जब उसे

एक पृथक् विधिक इकाई की हैसियत प्राप्त है । इसके अलावा, उपबंध के अनुसार किसी व्यष्टि का दायित्व प्रतिनिधिक है और ऐसी अभियोज्यता स्वयमेव ही और विधितः इस तथ्य से उद्भूत होती है कि व्यष्टि निगमित इकाई में विनिश्चय करने की हैसियत रखता है । यह प्रत्यक्ष है कि जब तक कंपनी, अर्थात् मूल इकाई को अभियुक्त के रूप में अभियोजित नहीं किया जाता है तब तक समनुषंगी इकाई, अर्थात् व्यष्टि को दायी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि इस उपबंध में प्रयुक्त भाषा कंपनी को मूल अपराधी बनाती है ।

(ख) प्रतिनिधिक दायित्व का सार मूल अपराधी के दायित्व से असमाधेय रूप से जुड़ा हुआ है । यदि दोनों को पृथक्-पृथक् माना जाता है तो यह इस उपबंध में प्रयुक्त भाषा का एकदम गलत अर्थ लगाने की कोटि में आएगा ।

(ग) दांडिक विधि का यह मूल सिद्धांत है कि किसी शास्तिक उपबंध का यथार्थ अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । समझी जाने वाली कल्पना का पूर्ण प्रभाव प्राप्त करने के लिए उसे संपूर्ण आशय से लागू करना होगा क्योंकि उपबंध में प्रयोग की गई भाषा से वस्तुतः "पहचान", "अभ्यारोपण" और निगमित आवरण को हटाने जैसी संकल्पनाओं का बहिष्कार होता है या उससे बचा जाता है और वास्तव में इससे निदेशकों और उत्तरदायी अधिकारियों को कतिपय मार्गदर्शित पैरामीटरों के संबंध में समझी जाने वाली संकल्पना के भीतर लाया जाता है ।

(घ) अधिनियम की धारा 141 के अनुसार, कंपनी मूल अपराधी होती है और जब वह अस्तित्व में हो तब उसे पक्षकार न बनाए जाने से अभियोजन में असाध्य प्रतिकूल प्रभाव पडेगा और इसके अलावा, यदि कोई दंड अधिरोपित किया जाता है या कोई प्रतिकूल निष्कर्ष लेखबद्ध किया जाता है तो इससे कंपनी की ख्याति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो विधि की दृष्टि से स्वीकार्य नहीं है ।

(ङ) **शिवरतन अग्रवाल और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय में **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय से गलत विभेद किया गया है और उसमें अधिकथित विनिश्चयाधार का भी गलत अर्थान्वयन किया गया है । इसके अलावा, उक्त विनिश्चय में आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 (जिसे संक्षेप में "1955 का अधिनियम" कहा गया है) की धारा 10(1) में अंतर्विष्ट उपबंध के एक भाग का पूर्णतः लोप किया गया है जिसके

परिणामस्वरूप एक प्रत्यक्ष गलती हुई है ।

(च) **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय में **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयाधार का मूल्यांकन उचित परिप्रेक्ष्य में नहीं किया गया है और इसके अलावा, निर्णय में एक अंतर्निहित परस्पर-विरोध है चूंकि एक स्थान पर यह कहा गया है कि पाने वाला मामले में "केवल तभी सफल हो सकता है यदि वह यह दर्शित करने में सफल हो जाता है कि वह अपराध वास्तव में कंपनी द्वारा कारित किया गया था" किन्तु एक अन्य स्थान पर यह निर्णय किया गया है कि "अभियुक्त यह दर्शित कर सकता है कि कंपनी ने अपराध कारित नहीं किया है यद्यपि ऐसी कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया गया है"।

(छ) अधिनियम की धारा 141(1) में प्रयुक्त "साथ ही वह कंपनी" पद का यह अर्थ नहीं हो सकता है कि कंपनी के प्रबंध के भारसाधक अधिकारियों का प्रतिनिधिक दायित्व लागू करने के लिए कंपनी द्वारा कोई अपराध कारित किया जाना आवश्यक नहीं है क्योंकि प्रथम पूर्वशर्त किसी व्यक्ति द्वारा, जो कि कंपनी है, अपराध कारित किया जाना है ।

12. प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउन्सेल ने अपीलार्थियों के विद्वान् काउन्सेल द्वारा प्रस्तुत किए गए निवेदनों का विरोध करते हुए निम्नलिखित दलीलें दी हैं :–

(i) यदि अपीलार्थी द्वारा किए गए निर्वचन को स्वीकार किया जाता है तो विधान-मंडल की स्कीम, उसके लक्ष्य, उद्देश्य और उसका प्रयोजन विफल हो जाएगा चूंकि परक्राम्य लिखत विधियां (संशोधन) अधिनियम, 1988 (1988 का 66) द्वारा यथापुरःस्थापित अधिनियम का अध्याय 18 यह सुनिश्चित करने के लिए बैंकिंग की प्रभावकारिता का संवर्धन करने के लिए है कि वाणिज्यिक या संविदात्मक संव्यवहारों में चैक अनादृत न हों और चैकों के माध्यम से कारबार करने की विश्वसनीयता बनी रही । यह अध्याय कारबार सव्यवहारों में बैंककारी पद्धति और उसके प्रचालन की प्रभावकारिता का संवर्धन करने और उसमें आस्था पैदा करने और परक्राम्य लिखतों को विश्वसनीय बनाने के उद्देश्य से अंतःस्थापित किया गया था । मूल प्रयोजन लोगों को अपनी वचनबद्धता का सम्मान न करने से निरुत्साहित करना है और ऐसे बेईमान व्यक्तियों को दंडित करना है जिनका तात्पर्य चैक जारी करके अपने दायित्व का निर्वहन करना है जबकि वास्तव में उनका आशय ऐसा करना नहीं होता है । यदि

विधायी आशय का उपयुक्त अर्थान्वयन या मूल्यांकन किया जाता है तो अधिनियम के विभिन्न उपबंधों का निर्वचन पाने वाले-शिकायतकर्ता के पक्ष में किया जाना है । उपरोक्त निवेदन के समर्थन में **इलैक्ट्रोनिक्स ट्रेड एंड टैक्नोलाजी डेवेलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड, सिकंदराबाद** बनाम **इंडियन टैक्नोलोजिस्ट्स एंड इंजीनियर्स (इलैक्ट्रोनिक्स) (प्रा.) लिमिटेड और एक अन्य**[1], **सी. सी. अल्वी हाजी** बनाम **पलपेट्टी मोहम्मद और एक अन्य**[2] और **विनय देवन्ना नायक** बनाम **रयोत सेवा सहकारी बैंक लिमिटेड**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया गया है ।

(ii) अपीलार्थियों द्वारा **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय का लिया गया अवलंब पूर्णतः भ्रामक है । प्रथम मामले में, न्यायालय पक्षकारों द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् अभियुक्त व्यक्तियों की दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के प्रश्न पर विचार कर रहा था किन्तु प्रस्तुत मामले में, प्रारंभ में ही चुनौती दी गई है जहां कि समन जारी किए गए हैं । इसके अलावा, 1955 का अधिनियम और प्रश्नगत अधिनियम भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में प्रवृत्त होते हैं क्योंकि उनके विधायी आशय, उद्देश्य और प्रयोजन भिन्न-भिन्न हैं और इसके अलावा वे विभिन्न प्रकृति के अपराधों के संबंध में हैं । वर्तमान मामले में, आर्थिक विकास के नए आयामों और क्रांतिकारी परिवर्तनों और चैकों के प्रयोग द्वारा किए जाने वाले प्रायिक वाणिज्यिक संव्यवहारों को ध्यान में रखा जाना है । इसके अलावा, धारा 141 में धारा 138 के अधीन आने वाले अपराधों के लिए दंडित करने का दायित्व सृजित किया गया है और यह एक समझा गया दायित्व है जबकि 1955 के अधिनियम की धारा 7 के अधीन किसी अपराध के लिए सृजित दांडिक दायित्व एक समझा गया अपराध नहीं है ।

(iii) अधिनियम में संशोधन के पश्चात्, बेईमान चैक लेखीवालों ने दांडिक दायित्व से बचने के लिए कई मार्ग तलाश करने की भरसक कोशिश की थी किन्तु इस न्यायालय ने समुचित निर्वचनात्मक प्रक्रिया द्वारा ऐसे अभियुक्त व्यक्तियों के, जिन्होंने चैक जारी किए थे नए-नए अभिवाकों का समर्थन नहीं किया क्योंकि प्रयोजन

---

[1] (1996) 2 एस. सी. सी. 739.

[2] (2007) 6 एस. सी. सी. 555.

[3] (2008) 2 एस. सी. सी. 305.

वाणिज्यिक संसार में रिष्टि का उन्मूलन करना है । उपरोक्त निवेदन को पुष्ट करने के लिए **डी. विनोद शिवप्पा** बनाम **नंदा बेल्ली अप्पा**[1], **मैसर्स मोदी सीमेंट लिमिटेड** बनाम **श्री कुचिल कुमार नंदी**[2], **गोवाप्लास्ट प्राइवेट श्री लिमिटेड** बनाम **चीको उरसुला डिसूज़ा और एक अन्य**[3], **एन. ई. पी. सी. माइकोन लिमिटेड और अन्य** बनाम **मैग्मा लीज़िंग लिमिटेड**[4], **डालमिया सीमेंट (भारत) लिमिटेड** बनाम **मैसर्स गैलेक्सी ट्रेडर्स एंड एजेन्सीज़ लिमिटेड और अन्य**[5], **आई. सी. डी. सी. लिमिटेड** बनाम **बीना शबीर और एक अन्य**[6] और **एस. वी. मजूमदार और अन्य** बनाम **गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर्स कंपनी लिमिटेड और एक अन्य**[7] वाले मामलों का जोरदार अवलंब लिया गया है ।

(iv) चूंकि कंपनी एक विधिक इकाई होती है इसलिए वह अपने निदेशकों या अन्य प्राधिकृत अधिकारियों के माध्यम से कार्य करती है और वह अपने निदेशकों या अन्य अधिकारियों को चैकों पर हस्ताक्षर करने और उन्हें जारी करने के लिए प्राधिकृत करती है और बैंकों को चैकों का भुगतान करने के लिए सूचित करती है, यदि वे ऐसे व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित हैं । विधान-मंडल ने विवेकपूर्ण रूप से अधिनियम की धारा 7 और धारा 138 में 'लेखीवाल' शब्द न कि 'खाता धारक' शब्द का प्रयोग किया है । कंपनी के प्रबंध निदेशक को, जिसने चैकों पर हस्ताक्षर किए हैं, सूचना जारी की जाती है जो कि अपराध के लिए दायी है और चैक का हस्ताक्षरकर्ता स्पष्ट रूप से अपराध में फंसाने वाले कार्य के लिए उत्तरदायी है और इसलिए निदेशक या चैक के प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के विरुद्ध अधिनियम की धारा 138 के अधीन परिवाद लाया जा सकता है । इस संबंध में, **मैसर्स बिलाकचन्द ज्ञानचन्द कंपनी** बनाम **ए. चिन्नास्वामी**[8], **रजनीष अग्रवाल** बनाम **अमित जे. भल्ला**[9], **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला**

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 2179.
[2] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 1057.
[3] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2035.
[4] (1999) 4 एस. सी. सी. 253.
[5] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 676.
[6] 2002 क्रिमिनल ला जर्नल 3935 (एस. सी.).
[7] ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 2436.
[8] जे. टी. 1999 (10) एस. सी. 236.
[9] जे. टी. 2001 (1) एस. सी. 325.

(उपर्युक्त), **अनिल हाडा** बनाम **इंडियन एक्रेलिक लिमिटेड** (उपर्युक्त) और **आर. राजगोपाल** बनाम **एस. एस. वेंकट**[1] वाले मामलों का अवलंब लिया गया है ।

(v) अधिनियम की धारा 141 के अधीन ऐसा कोई आधार तत्व नहीं है कि निदेशक या चैक के हस्ताक्षरकर्ता को पृथक्-पृथक् रूप में तब तक अभियोजित नहीं किया जा सकता है जब तक कि कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया जा सकता है । कंपनी, जैसा कि सुज्ञात है, अपने निदेशकों या प्राधिकृत अधिकारियों के माध्यम से कार्य करती है और वे एकमात्र इस आधार पर कि कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त नहीं किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की ईप्सा करके बच निकलने का मार्ग नहीं अपना सकते हैं । "साथ ही वह कंपनी" शब्द महत्वपूर्ण हो जाते हैं चूंकि समझे गए दायित्व में कंपनी और भारसाधक अधिकारी दोनों शामिल हैं और इसलिए परिवाद याचिका में किए गए प्रकथनों के आधार पर निदेशकों या भारसाधक अधिकारियों के विरुद्ध अनन्य रूप से अभियोजन चलाया जा सकता है ।

13. संविवाद की मुख्य बात यह है कि क्या किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे अधिनियम की धारा 141(1) और 141(2) में उल्लिखित किया गया है, कंपनी को अभियुक्त के रूप में आलिप्त किए बिना अभियोजित किया जा सकता है । इस संविवाद का मूल्यांकन करने की दृष्टि से कतिपय उपबंधों के प्रति निर्देश करने की आवश्यकता है । अधिनियम की धारा 138, जो चैक के अनादर के लिए अपराध और उस पर देय रकम का संदाय न करने के परिणामस्वरूप उद्भूत होने वाले संघटकों के संबंध में है, निम्नलिखित रूप में है :–

"138. **खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण चैक का अनादरण –** जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंककार के पास अपने द्वारा रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि

---

[1] (2001) 10 एस. सी. सी. 91 = ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 2432.

उस चैक का आदरण करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो चैक की रकम का दुगुना तक हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा :

परन्तु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक –

(क) वह चैक उसके लिखे जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर, जो भी पूर्वतर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो,

(ख) चैक का पाने वाला या धारक, सम्यक् अनुक्रम में चैक के लेखीवाल को, असंदत्त चैक के लौटाए जाने की बाबत बैंक से उसे सूचना की प्राप्ति के पन्द्रह दिन के भीतर, लिखित रूप में सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए मांग नहीं करता है, और

(ग) ऐसे चैक का लेखीवाल, चैक के पाने वाले को या धारक को उक्त सूचना की प्राप्ति के पन्द्रह दिन के भीतर उक्त धनराशि का संदाय सम्यक् अनुक्रम में करने में असफल नहीं रहता है ।"

14. इस उपबंध के मुख्य भाग को तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है, अर्थात्, (i) चैक किसी व्यक्ति द्वारा लिखा गया है, (ii) उसके द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंककार के पास रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चैक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि उस चैक का आदरण करने के लिए अपर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है और (iii) ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो चैक की रकम का दुगुना तक हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा । उक्त धारा के परन्तुक

में यह उपधारित है कि किन परिस्थितियों में यह धारा लागू नहीं होगी । वर्तमान मामले में हमारा संबंध उक्त पहलू से नहीं है । यह कथन करना असंगत नहीं होगा कि इस उपबंध का मुख्य भाग मूलभूत घटकों के संबंध में है और उसका परन्तुक कतिपय परिस्थितियों के संबंध में है और उसमें कतिपय ऐसी स्थितियां अधिकथित की गई हैं जिनमें यह लागू नहीं होगा । इस तथ्य पर जोर दिया गया है कि चैक किसी व्यक्ति द्वारा ऐसे खाते पर लिखा जाना है जो उसके द्वारा रखा गया है और उसने वह चैक किसी ऋण या अन्य दायित्व के उन्मोचन के लिए जारी किया हो । अधिनियम की धारा 7 में 'लेखीवाल' की परिभाषा दी गई है जिससे विनिमय-पत्र या चैक का रचयिता अभिप्रेत है । किसी कंपनी का प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता लेखीवाल बन जाता है क्योंकि उसे कंपनी द्वारा रखे गए खाते के संबंध में ऐसा करने के लिए प्राधिकृत किया गया है ।

15. इस प्रक्रम पर हम धारा 141 के प्रति निर्देश कर सकते हैं जो कंपनियों द्वारा अपराध के संबंध में है । चूंकि संविवाद की जड़ उक्त उपबंध पर आधारित है इसलिए इसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "141. **कंपनियों द्वारा अपराध** – (1) यदि धारा 138 के अधीन अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के लिए दोषी समझे जाएंगे और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :
>
> परन्तु इस उपधारा की कोई बात ऐसे किसी व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध उसकी जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने ऐसे अपराध के निवारण के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी :
>
> परन्तु यह और कि जहां किसी व्यक्ति को, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रणाधीन किसी वित्त निगम में कोई पद धारण करने या नियोजन में रहने के कारण किसी कंपनी के निदेशक के रूप में नामनिर्दिष्ट किया जाता है वहां वह इस अधिनियम के अधीन अभियोजन का भागी नहीं होगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण हुआ माना जा सकता है, वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी, उस अपराध का दोषी समझा जाएगा तथा तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।"

16. उक्त उपबंध का पठन करने पर यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई व्यक्ति, जो अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध करता है, कंपनी है तो कंपनी साथ ही ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, जो अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था, ऐसे अपराध के लिए दोषी समझा जाएगा । प्रथम परन्तुक में यह उपबंधित है कि किन परिस्थितियों में दांडिक दायित्व अधिरोपित नहीं होगा । उपधारा (2) में मौनानुकूलता, उपेक्षा और सहमति की ऐसी संकल्पनाएं समाविष्ट करके, जो अनेक प्रवर्गों के अधिकारियों को अंतर्वलित करती हैं, दांडिक दायित्व को विस्तारित किया गया है । यह उल्लेखनीय है कि दोनों उपबंधों में दांडिक दायित्व की 'समझी गई' धारणा अंतर्वलित है ।

17. अधिनियम की धारा 139 धारक के पक्ष में उपधारणा सृजित करती है । उक्त उपबंध का पठन धारा 118(क) के साथ किया जाना है, जो अधिनियम के अध्याय 13 में आती है, जो कि साक्ष्य के विशेष नियमों के संबंध में है । धारा 140 में वह प्रतिरक्षा अनुबंधित है जो कि अधिनियम की धारा 138 के अधीन अभियोजन के संबंध में अनुज्ञात नहीं की जा सकती है । अतः, दांडिक दायित्व के संबंध में एक समझी गई कल्पना, धारक के पक्ष में उपधारणा और कतिपय पहलुओं की बाबत प्रतिवाद का प्रत्याख्यान है ।

18. धारा 141 में 'व्यक्ति' पद का प्रयोग किया गया है और वह किसी कंपनी के प्रति निर्देश करता है । इस संबंध में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि कंपनी एक विधिक व्यक्ति है । निगमित दांडिक दायित्व का संकल्पना किसी निगम और कंपनी के संबंध में लागू होती है और अधिनियम की धारा 141 के अधीन प्रयुक्त भाषा से यही द्योतित होता

है । यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि प्रस्तुत अधिनियमिति ऐसी अधिनियमिति है जिसमें स्वयं कंपनी और कतिपय परिस्थितियों में कतिपय प्रवर्ग के अधिकारी अपराध के दोषी समझे जाते हैं ।

19. हाल्सबरीज़ लाज़ ऑफ इंग्लैंड, खंड 11(1) के पैरा 35 में यह अधिकथित किया गया है कि साधारणतया कोई निगम दांडिक दायित्व के संबंध में उसी स्थिति में है जैसे कि कोई नैसर्गिक व्यक्ति होता है और उसे साधारण विधि और कानूनी अपराधों के लिए, जिनमें वे अपराध भी हैं जिनमें आपराधिक मनःस्थिति अपेक्षित होती है, दोषसिद्ध किया जा सकता है ।

20. 19 कार्पस जूरिस सेकेंडम के पैरा 1358 में दांडिक अभियोजन की बाबत दायित्व के संबंध में विचार करते समय यह कहा गया है कि निगम जुर्माने से दंडनीय अपराधों के लिए दांडिक अभियोजन का दायी होगा; कतिपय अधिकारिताओं में, किसी निगम को कानून द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित के सिवाय दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

21. **एच. एल. बोल्टन (इंजीनियरिंग) कंपनी लिमिटेड** बनाम **टी. जे. ग्राह्म एंड सन्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में लार्ड डेनिंग ने किसी कंपनी के दायित्व के संबंध में विचार करते समय अपनी अननुकरणीय शैली में यह मत व्यक्त किया है कि कंपनी कई प्रकार से व्यक्ति के समान हो सकती है । इसमें एक मस्तिष्क और तंत्रिका-केन्द्र होता है जो कि उन बातों को नियंत्रित करता है जो वह करती है । इसके हाथ भी होते हैं जो औजार पकड़ते हैं और केन्द्र से प्राप्त निदेशों के अनुसार कार्य करते हैं । कंपनी के कुछ लोग मात्र सेवक और अभिकर्ता होते हैं जो कि काम करने वाले हाथों से अधिक कुछ नहीं होते हैं और उनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता है कि वे उसके मस्तिष्क या उसकी इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं । अन्य व्यक्ति निदेशक और प्रबंधक होते हैं जो कंपनी के निदेशात्मक मस्तिष्क और इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हैं और उस कार्य को नियंत्रित करते हैं जो कार्य वह करती है । इन प्रबंधकों की मनोदशा कंपनी की मनोदशा है और उसे विधि द्वारा इस प्रकार माना जाता है । कतिपय मामलों में, जहां विधि में यह अपेक्षित है कि अपकृत्य में दायित्व की शर्त व्यक्तिगत दोष है वहां प्रबंधक का दोष कंपनी का व्यक्तिगत दोष होगा । विद्वान् न्यायाधीश ने **लेन्नार्ड कैरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **एशियाटिक पैट्रोलियम कंपनी लिमिटेड**[2] वाले मामले में लार्ड हालडेन के भाषण के प्रति निर्देश किया ।

---

[1] (1956) 3 आल इंग्लैड ला रिपोर्ट्स 624.

[2] (1915) अपील केसेज़ 705, 713-714; 31 टी. एल. आर. 294.

इसे और स्पष्ट करते हुए उसने यह मत व्यक्त किया कि दांडिक विधि में, ऐसे मामलों में जिनमें दांडिक अपराध की शर्त के रूप में दोषी मन आवश्यक होता है, निदेशकों या प्रबंधकों का दोषी मन स्वयं कंपनी को दोषी बना देगा ।

22. इस प्रक्रम पर, **डायरेक्टर ऑफ पब्लिक प्रासिक्यूशन्स** बनाम **केंट एंड ससेक्स कंट्रेक्टर्स लिमिटेड**[1] वाले मामले में न्यायमूर्ति मैकनाटन द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों की अवेक्षा करना उपयुक्त है :–

> "निगमित निकाय ऐसा 'व्यक्ति' होता है जिसमें, उन विभिन्न विशेषताओं के साथ-साथ जो उसमें हो सकती हैं, ऐसे मस्तिष्क की विशेषता आरोपित की जानी चाहिए जो किसी आशय को जानने और बनाने में सक्षम है – वास्तव में अब इसके विपरीत सुझाव देना विलंबकारी है । वह केवल अपने मानव अभिकर्ताओं के माध्यम से किसी आशय को जान सकता है या आशय बना सकता है किन्तु परिस्थितियां ऐसी हों कि अभिकर्ता की जानकारी निगमित निकाय में आरोपित की जाए । प्रत्यर्थियों के काउन्सेल ने यह कहा कि यद्यपि कोई निगमित निकाय कोई आशय रखने में समर्थ हो सकता है तथापि, वह आपराधिक आशय रखने में समर्थ नहीं हो सकता है । इस विशिष्ट मामले में आशय प्रवंचित करने का आशय था । यदि, जैसा कि इस मामले में है, किसी निगमित निकाय का उत्तरदायी अभिकर्ता किसी दस्तावेज़ को मिथ्या जानते हुए और इस आशय से अग्रेषित करता है कि इससे प्रवंचना होनी चाहिए तो उन नजीरों के अनुसार जो विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति विस्काउंट काल्डकोट ने उद्धृत की हैं, मुझे आशंका है कि उसकी जानकारी और उसका आशय निगमित निकाय में अवश्य ही आरोपित किया जाना चाहिए ।"

23. इस संबंध में **इरिडियम इंडिया टेलीकाम लिमिटेड** बनाम **मोटोरोला इन्क. और अन्य**[2] वाले मामले में के विनिश्चय के प्रति निर्देश करना उपयोगी है जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विधिसम्मत शासन द्वारा शासित विश्व भर की सभी अधिकारिताओं में कंपनियां और निगमित घराने अब इस आधार पर दांडिक अभियोजन से उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकते हैं कि वे दांडिक अपराध कारित करने के लिए आवश्यक

---

[1] 1994 के. बी. 146 = (1984) 1 आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 119 (डी.सी.).

[2] (2011) 1 एस. सी. सी. 74.

आपराधिक मनःस्थिति रखने में सक्षम नहीं हैं । यह मत व्यक्त किया गया है कि इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका में विधिक स्थिति अब स्पष्ट हो गई है कि इसमें किसी भी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं रह गई है कि निगम आशय संबंधी अपराधों के लिए दायी होंगे । उक्त विनिश्चय में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "इंग्लैंड के न्यायालयों ने इस धारणा को जोरदार से अस्वीकार कर दिया है कि कोई निगमित निकाय ऐसा दांडिक अपराध कारित नहीं कर सकता था जो कि किसी कार्य या इच्छा का परिणाम था जिसमें किसी विशिष्ट मनोदशा की आवश्यकता होती है । उपरोक्त धारणा को आरोपण और अभ्यारोपण का सिद्धांत अंगीकार करके नामंजूर कर दिया गया है । दूसरे शब्दों में, कंपनी/निगमित निकाय की 'द्वितीय आत्मा', अर्थात् वह व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जो कंपनी के कारबार को मार्गदर्शित करते हैं, का दांडिक आशय निगम में आरोपित किया जाएगा ।"

24. **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक** (उपर्युक्त) वाले मामले में बहुमत द्वारा यह दृष्टिकोण अधिकथित किया गया है कि इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कंपनी दांडिक अपराधों के लिए अभियोजित और दंडित किए जाने के लिए दायी है । यद्यपि इस आशय की पूर्ववर्ती नजीरें भी हैं कि निगम कोई अपराध कारित नहीं कर सकता है, साधारणतया स्वीकार्य आधुनिक नियम यह है कि कोई निगम अभ्यारोपण और अन्य दांडिक प्रक्रिया के अध्यधीन हो सकता है हालांकि दांडिक कृत्य उसके अभिकर्ता के माध्यम से किया जा सकता है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि कंपनियों को मात्र इस कारण अभियोजन से उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है कि अभियोजन ऐसे अपराधों की बाबत है जिनके लिए आज्ञापक कारावास और जुर्माने का दंड है ।

25. हमने इस बात को स्पष्ट करने के लिए उपर्युक्त नजीरों के प्रति निर्देश किया है कि कंपनी का दांडिक दायित्व हो सकता है और इसके अलावा यदि ऐसे व्यक्तियों के समूह का, जो कंपनियों के कारबार को मार्गदर्शित करते हैं, आपराधिक आशय है तो वह निगमित निकाय में आरोपित किया जाएगा । इसी पृष्ठभूमि में, अधिनियम की धारा 141 को समझना होगा । उक्त उपबंध में स्पष्ट रूप से यह अनुबंधित है कि जब कोई व्यक्ति, जो एक कंपनी है, कोई अपराध कारित करता है तब कतिपय प्रवर्गों के व्यक्ति, जो भारसाधक हैं, तथा कंपनी के बारे में यह समझा जाएगा कि वे धारा 138 के अधीन अपराधों के लिए दायी हैं । इस प्रकार,

कानूनी अभिप्राय पूर्णतः स्पष्ट है ।

26. जैसा कि बोधगम्य है, यह उपबंध कृत्यकारियों और कंपनियों को दायी बनाता है और वह भी समझी गई कल्पना द्वारा । किसी समझी जाने वाली कल्पना का अपना महत्व होता है ।

27. इस संदर्भ में, हम **रि लेवी**[1] वाले मामले में एक्स पार्टे वाल्टन में माननीय न्यायमूर्ति जेम्स द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों के प्रति उपयोगी रूप से निर्देश कर सकते हैं, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

> "जब किसी कानून में यह अधिनियमित किया जाता है कि कोई ऐसी बात, जो वास्तव में और असल में नहीं की गई है, की गई समझी जाएगी तब न्यायालय यह अभिनिश्चित करने के लिए हकदार और बाध्य है कि किन प्रयोजनों के लिए और किन व्यक्तियों के बीच कानूनी कल्पना का अवलंब लिया जाना है ।"

28. **ईस्ट इंड ड्वेलिंग्स कंपनी लिमिटेड** बनाम **फिनस्बरी बोरो काउन्सिल**[2] वाले मामले में लार्ड एस्क्विथ ने अपनी राय निम्नलिखित रूप में व्यक्त की थी :–

> "यदि आपको किसी काल्पनिक परिस्थिति को वास्तविक मानने का आदेश किया जाता है तो आपको उन परिणामों और घटनाओं की, जो उससे अपरिहार्य रूप से उद्भूत हुए होते या उससे निकले होते यदि अनुमानित परिस्थिति वास्तव में विद्यमान रही होती, तब तक वास्तविक रूप में कल्पना भी करनी चाहिए जब तक आप ऐसा करने से प्रतिषिद्ध न हों ...। कानून में यह कहा गया है कि आपको एक निश्चित परिस्थिति की कल्पना अवश्य करनी चाहिए; इसमें यह नहीं कहा गया है कि ऐसा करने पर आपको तब अपनी कल्पना के संबंध में आपत्ति करनी चाहिए या आपत्ति करने के लिए अनुज्ञात करना चाहिए जब उस परिस्थिति से अपरिहार्य रूप से जुड़े परिणामों का प्रश्न उत्पन्न होता है ।"

29. **बंगाल इम्युनिटी कंपनी लिमिटेड** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में संविधान पीठ ने बहुमत द्वारा यह राय व्यक्त की थी कि विधिक संकल्पनाएं केवल कुछ निश्चित प्रयोजन के लिए सृजित की जाती हैं ।

---

[1] (1881) 17 चांसरी डिवीजन 746.

[2] 1952 अपील केसेज़ 109.

[3] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 661.

30. **हीरा एच. अडवानी और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में सीमाशुल्क अधिनियम, विशेषकर धारा 171-क की उपधारा (4) के अधीन आने वाली ऐसी कार्यवाही पर विचार करते समय, जहां सीमाशुल्क प्राधिकारी द्वारा कोई जांच निर्दिष्ट की जाती है और उसमें यह भाषा प्रयुक्त की जाती है, अर्थात्, "भारतीय दंड संहिता की धारा 193 और 228 के अर्थान्तर्गत न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी", निम्न प्रकार राय व्यक्त की गई है :–

> "यह दलील दी गई थी कि हो सकता है कि विधान-मंडल द्वारा धारा 171 की उपधारा (4) में 'समझा जाएगा' पद का प्रयोग उपर्युक्त अर्थों में से पहले अर्थ में न किया जाकर यदि तीसरे अर्थ में नहीं तो दूसरे अर्थ में किया गया हो । हमारे मतानुसार 'समझा जाएगा' पद को दिया जाने वाला अर्थ उस संदर्भ पर निर्भर करेगा जिसमें इसका प्रयोग किया गया है ।"

31. **तमिलनाडु राज्य** बनाम **आरूरन शुगर्स लिमिटेड**[2] वाले मामले में संविधान पीठ ने किसी कानून में धारणा उपबंध के संबंध में कार्यवाही करते हुए यह निर्णय दिया कि विधिक कल्पना सृजित करने वाले किसी कानून में किसी उपबंध की भूमिका सुस्थापित है । **मुख्य खान निरीक्षक और एक अन्य** बनाम **लाला करम चन्द थापर और अन्य**[3], **जे. के. काटन स्पिन्निंग एंड वीविंग मिल्स लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4], **एम. वेणुगोपाल** बनाम **प्रभागीय प्रबंधक, भारतीय जीवन बीमा निगम**[5] और **हरीश टंडन** बनाम **अपर जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद**[6] वाले मामलों के प्रति निर्देश किया गया था और अंततोगत्वा यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जब कानून में यह कहते हुए कोई विधिक कल्पना सृजित की जाती है कि किसी ऐसी बात को, जो कि वास्तव में और असल में की नहीं गई है, किया गया समझा जाएगा तब न्यायालय को इस बात की परीक्षा करनी होती है और यह अभिनिश्चित करना होता है कि किस प्रयोजन के लिए और किन व्यक्तियों के बीच ऐसी कानूनी कल्पना का अवलंब लिया जाना

---

[1] [1970] 2 उम. नि. प. 890 = ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 44.

[2] ए. आई. आर. 1997 एस. सी. 1815.

[3] ए. आई. आर. 1961 एस. सी. 838.

[4] ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 191.

[5] (1994) 2 एस. सी. सी. 323.

[6] (1995) 1 एस. सी. सी. 537.

है और इसलिए, न्यायालयों को ऐसी कानूनी कल्पना को पूर्ण रूप से प्रभावी करना होता है और उसे तर्कसम्मत निष्कर्ष तक पहुंचाना होता है ।

32. उपर्युक्त निर्णयों से यह सिद्धांत प्रकट होता है कि यह अभिनिश्चित करना न्यायालय का बाध्यकारी कर्तव्य है कि किस प्रयोजन के लिए विधिक कल्पना सृजित की गई है । न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि वह ऐसी कल्पना को सभी वास्तविक परिणामों और घटनाओं सहित माने जब तक कि उसे ऐसा करने के लिए प्रतिषिद्ध न किया गया हो । इसके अलावा, "समझा जाएगा" पद के प्रयोग का पठन उसके संदर्भ में किया जाना है और इसके अतिरिक्त इसका पूर्ण तर्कसम्मत प्रयोजन और अभिप्राय समझा जाना है । इसी कारण, आधुनिक विधान में "समझा जाएगा" पद का प्रयोग अनेक प्रयोजनों के लिए किया गया है । विधान-मंडल के उद्देश्य को ध्यान में रखना होगा ।

33. अधिनियम की धारा 141 में प्रयुक्त "समझा जाएगा" शब्द कंपनी और कंपनी के कार्यों के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को लागू होते हैं । इससे निगमित दांडिक दायित्व और किसी ऐसे व्यक्ति का प्रतिनिधिक दायित्व स्पष्ट होता है जो कंपनी का भारसाधक है । किसी व्यक्ति को प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाने के लिए कौन से प्रकथन किए जाने आवश्यक हैं, इस संबंध में **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचार किया गया है । उक्त मामले में, यह राय व्यक्त की गई है कि चैक के अनादरण के कारण दांडिक दायित्व प्रमुख रूप से लेखीवाल कंपनी पर आता है और यह कंपनी के अधिकारियों तक विस्तारित होता है और चूंकि दायित्व को अधिकारियों तक विस्तारित करने वाला विनिर्दिष्ट उपबंध है इसलिए धारा 141 में सम्मिलित शर्तों को पूरा किया जाना होता है । निर्णय में निम्न प्रकार कहा गया है :–

> "यह (दायित्व) प्रमुखतः लेखीवाल कंपनी पर आता है और कंपनी के अधिकारियों तक विस्तारित होता है । ऐसे मामलों में, जिनमें दांडिक दायित्व अंतर्वलित होता है, सामान्य नियम प्रतिनिधिक दायित्व के विरुद्ध है, अर्थात्, किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति के कार्य के लिए दांडिक रूप से दायी नहीं ठहराया जाना है । तथापि, यह सामान्य नियम ऐसे विनिर्दिष्ट उपबंध के कारण अपवाद के अध्यधीन है, जो दायित्व को अन्य व्यक्तियों तक विस्तारित करने के लिए कानून में किए जा रहे हैं । अधिनियम की धारा 141 विनिर्दिष्ट उपबंध का एक दृष्टांत है, जो धारा 138 के अधीन किसी कंपनी द्वारा

अपराध कारित किए जाने की दशा में किसी चैक के अनादरण के लिए दांडिक दायित्व कंपनी के अधिकारियों तक विस्तारित करता है । धारा 141 में ऐसी शर्तें अंतर्विष्ट हैं जो किसी कंपनी के अधिकारियों पर दायित्व विस्तारित करने से पूर्व पूरी की जानी हैं । चूंकि इस उपबंध द्वारा दांडिक दायित्व सृजित किया गया है इसलिए इन शर्तों का कठोरता से पालन किया जाना है । ये शर्तें यह सुनिश्चित करने के लिए आशयित हैं कि उस व्यक्ति की, जिसे किसी ऐसे अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाने की ईप्सा की जाती है जिसका मुख्य अपराधी कंपनी है, अपराध में फंसाने वाले कार्य के संबंध में भूमिका निभानी होती है और इसके अलावा ऐसे व्यक्ति को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि उसे दायी बनाने के लिए कौन से कारण हैं ।"

इस प्रकार कथन करने के पश्चात् आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 141 का विश्लेषण करते समय यह दृष्टव्य है कि यह उन मामलों में प्रवर्तित होती है जहां धारा 138 के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा कारित किया जाता है । निर्णय के पैरा 19 में स्पष्ट रूप से निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया गया है :–

"इस संबंध में लगभग एकमत न्यायिक राय है कि किसी व्यक्ति को दांडिक प्रक्रिया के अध्यधीन लाए जा सकने के पूर्व परिवाद में आवश्यक प्रकथन अवश्य ही अंतर्विष्ट होने चाहिएं । अधिनियम की धारा 141 के अधीन कंपनी से संबद्ध किसी व्यक्ति को प्रतिनिधिक रूप से दायित्व से बांधने की ईप्सा की जाती है जबकि मुख्य अपराधी स्वयं कंपनी होती है । यह दांडिक विधि में प्रतिनिधिक दायित्व के नियम से विचलन है ।"

34. अब हम **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयाधार पर विचार करेंगे । उक्त मामले में, तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1955 के अधिनियम की धारा 10 का निर्वचन किया था । प्रत्यर्थी, सी. वी. पारेख और एक अन्य व्यक्ति कंपनी के प्रबंधन में सक्रिय रूप से भागीदार थे । विचारण न्यायालय ने उन्हें इस आधार पर दोषसिद्ध किया था कि माल का व्ययन वल्लभदास ठक्कर द्वारा कामदार की सहायता से नियंत्रण कीमत से अधिक कीमत पर किया गया था और वह फर्म के भागीदारों की जानकारी के बिना नहीं किया जा सकता था । उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि

ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जिसके आधार पर यह निष्कर्ष अभिलिखित किया जा सकता था कि प्रत्यर्थी कामदार और वल्लभदास ठक्कर द्वारा किए गए व्ययन के बारे में जानते थे । मद्रास राज्य की ओर से इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई थी कि 1955 के अधिनियम की धारा 10 के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती थी । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्न प्रकार कथन करते हुए उस दलील को नकार दिया :–

> "तथापि, अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 10 के आधार पर दोनों प्रत्यर्थियों की दोषसिद्धि की ईप्सा की, जिसके अधीन यदि धारा 3 के अधीन किए गए किसी आदेश (जिसमें लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश, 1956 के अधीन किया गया आदेश भी आता है) का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है तो प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जो उल्लंघन किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी उल्लंघन के दोषी समझे जाएंगे और तदनुसार कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे । इस बात पर जोर दिया गया था कि दोनों प्रत्यर्थी कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी के भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी थे और परिणामस्वरूप उन्हें विक्रय के लिए और इस प्रकार लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश के खंड (5) के उपबंधों का उल्लंघन करने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए । यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसमें धारा 10 के लागू होने के संबंध में इस आशय की प्रथम शर्त को अनदेखा किया गया है कि आदेश का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति स्वयं कंपनी होनी चाहिए । प्रस्तुत मामले में, मजिस्ट्रेट द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया है कि लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश के खंड (5) का उल्लंघन करते हुए किया गया विक्रय कंपनी द्वारा किया गया था । वास्तव में, कंपनी को अपराध करने के लिए आरोपित नहीं किया गया था । कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों का दायित्व केवल तभी उद्भूत होता है जब उल्लंघन स्वयं कंपनी द्वारा किया जाता है । चूंकि, इस मामले में इस संबंध में कोई साक्ष्य और कोई निष्कर्ष नहीं है कि कंपनी ने लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश के खंड (5) का उल्लंघन किया था, इसलिए दोनों प्रत्यर्थियों को उत्तरदायी नहीं

ठहराया जा सकता है । वास्तविक उल्लंघन कामदार और वल्लभदास ठक्कर द्वारा किया गया था और उनके द्वारा किए गए किसी उल्लंघन से प्रत्यर्थियों पर उत्तरदायित्व नहीं डाला जाएगा ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

उपरोक्त पैरा में स्पष्ट रूप से यह अधिकथित है कि प्रथम शर्त यह है कि कंपनी को दायी ठहराया जाना चाहिए; आरोप विरचित किया जाना है; निष्कर्ष लेखबद्ध किया जाना है और कंपनी के भारसाधक व्यक्तियों का दायित्व केवल तभी उद्भूत होता है जब उल्लंघन स्वयं कंपनी द्वारा किया जाता है । उक्त विनिश्चय को **शिवरतन अग्रवाल और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रभेदित किया गया है । उक्त मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 1955 के अधिनियम की धारा 10 के प्रति निर्देश किया और यह राय व्यक्त की कि अकेले कंपनी को अभियोजित किया जा सकता है या केवल भारसाधक व्यक्ति को अभियोजित किया जा सकता है चूंकि इस संबंध में कोई कानूनी बाध्यता नहीं है कि भारसाधक व्यक्ति या कंपनी के किसी अधिकारी को तब तक अभियोजित नहीं किया जा सकता है जब तक कि उसे स्वयं कंपनी के साथ नहीं रखा जाता है । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने इसके आगे यह अधिकथित किया कि 1955 के अधिनियम की धारा 10 में उन व्यक्तियों को उपदर्शित किया गया है जिन्हें तब अभियोजित किया जा सकता है जहां उल्लंघन कंपनी द्वारा किया जाता है किन्तु उसमें ऐसी कोई शर्त अधिकथित नहीं है कि यदि स्वयं कंपनी को अभियोजित नहीं किया जाता है तो कंपनी के भारसाधक व्यक्ति या किसी अधिकारी को पृथक् रूप से अभियोजित नहीं किया जा सकता है । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले निर्णय के उस पैरा के प्रति निर्देश किया जिसे हमने इसमें इसके ऊपर उद्धृत कर दिया है और उसमें के कतिपय वाक्यांशों पर जोर दिया और निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"हमारे द्वारा रेखांकित वाक्यांशों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि जिस बात पर जोर देने की ईप्सा की गई थी वह यह थी कि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने से पूर्व यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि उल्लंघन कंपनी द्वारा किया गया था न कि अभियुक्त के साथ-साथ स्वयं कंपनी को भी अभियोजित किया जाना चाहिए । अतः, हमारा यह स्पष्ट मत है कि अभियोजन चलाए जाने योग्य हैं और आवश्यक वस्तु अधिनियम की धारा 10 में ऐसी कोई बात नहीं

है जो ऐसे अभियोजनों को वर्जित करती है ।"

संपूर्णता की दृष्टि से, हम उन वाक्यांशों को निर्दिष्ट करना उपयुक्त समझते हैं जिन्हें दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा रेखांकित किया गया है :–

> "क्योंकि इसमें धारा 10 के लागू होने के संबंध में इस आशय की प्रथम शर्त को अनदेखा किया गया है कि आदेश का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति स्वयं कंपनी होनी चाहिए । प्रस्तुत मामले में, मजिस्ट्रेट द्वारा या उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया है कि लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश के खंड (5) का उल्लंघन करते हुए किया गया विक्रय कंपनी द्वारा किया गया था और इस संबंध में कोई साक्ष्य और कोई निष्कर्ष नहीं है कि कंपनी ने लौह और इस्पात नियंत्रण आदेश के खंड (5) का उल्लंघन किया है, इसलिए दोनों प्रत्यर्थियों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है ।"

35. **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में विद्वान् न्यायाधीशों के प्रति अत्यधिक सम्मान व्यक्त करते हुए **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में के प्रामाणिक निर्णय का उपयुक्त रूप से मूल्यांकन नहीं किया गया है । इस संबंध में स्पष्ट कथन के बावजूद कि 1955 के अधिनियम की धारा 10 के लागू होने के लिए प्रथम शर्त यह है कि उल्लंघन स्वयं कंपनी द्वारा किया गया हो इस विनिश्चय से प्रभेद किया गया है । हमारे विनम्र मतानुसार, निर्णय का उक्त विश्लेषण सही नहीं है । इसके अतिरिक्त, **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाला विनिश्चय 1955 के अधिनियम की धारा 10(क) के अधीन तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा किया गया था और यदि ऐसा मत अपनाया जा रहा था तो मामले को बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित करना उपयुक्त होता । तथापि, दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने उस विनिश्चयाधार पर, जो कि हमने इसमें इसके ऊपर उद्धृत किया है, उससे प्रभेद करना उपयुक्त समझा । हम ससम्मान यह बात दोहराते हैं कि हम उपर्युक्त मत से सहमत होने में असमर्थ हैं ।

36. **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह प्रश्न उठाया : जब कोई ऐसी कंपनी, जिसने अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध कारित किया है, उसके लिए अभियोजित किए जाने से बच निकलती है, तब क्या उस अपराध के लिए उस कंपनी

के निदेश्कों को अभियोजित किया जा सकता है । न्यायपीठ ने अधिनियम की धारा 141 के प्रति निर्देश किया और निम्न प्रकार मत व्यक्त किया : –

> "12. इस प्रकार, जब चैक का लेखीवाल, जो अधिनियम की धारा 138 की परिधि के भीतर आता है, कोई व्यक्ति या कोई निगमित निकाय या फर्म भी है, तो ऐसे लेखीवाल के विरुद्ध अभियोजन कार्यवाहियां संस्थित की जा सकती हैं । इस संदर्भ में, अधिनियम की धारा 141 की उपधारा (1) में प्रयुक्त "साथ ही" वाक्यांश का भी कुछ महत्व है । उक्त वाक्यांश से प्रथम प्रवर्ग में उल्लिखित व्यक्ति अपराधी कंपनी के समान अपराध की परिधि में उलझ जाएगा । इसी प्रकार, उपधारा (2) में "भी" शब्द तीसरे प्रवर्ग के व्यक्तियों को भी समान रूप से अपराध के महाजाल में लाने में समर्थ है । धारा 141 के पठन का आशय यह है कि जब चैक का लेखीवाल कोई कंपनी है तो वह कंपनी अधिनियम की धारा 138 के अधीन मुख्य अपराधी होती है और शेष व्यक्तियों को इस धारा के अनुसार विधान-मंडल द्वारा सृजित विधिक कल्पना के आधार पर अपराधी बनाया जाता है । अतः वास्तविक अपराध कंपनी द्वारा किया गया होना चाहिए और केवल तभी अन्य दो प्रवर्गों के व्यक्ति भी अपराध के दायी बन सकते हैं ।
>
> 13. यदि अपराध कंपनी द्वारा कारित किया गया था तो उसे केवल तभी दंडित किया जा सकता है यदि कंपनी को अभियोजित किया जाता है । किन्तु यदि चैक पाने वाला कंपनी को अभियोजित करने की बजाय केवल दूसरे या तीसरे प्रवर्ग के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों को अभियोजित करना चाहता है तो पाने वाला उस मामले में केवल तभी सफल हो सकता है यदि वह यह दर्शित करने में सफल हो जाता है कि अपराध वास्तव में कंपनी द्वारा कारित किया गया था । ऐसे अभियोजन में अभियुक्त यह दर्शित कर सकता है कि कंपनी ने अपराध कारित नहीं किया है, यद्यपि ऐसी कंपनी को अभियुक्त नहीं बनाया जाता है और इसलिए अभियोजित अभियुक्त दंडित किए जाने के लिए दायी नहीं है । इन उपबंधों में ऐसी शर्त नहीं है कि अन्य व्यक्तियों के अभियोजन के लिए, जो ऊपर उल्लिखित दूसरे और तीसरे प्रवर्गों के भीतर आते हैं, कंपनी को अभियोजित करना अनिवार्य है । निस्संदेह, ऐसे अन्य व्यक्तियों को दोषसिद्ध करने के लिए यह निष्कर्ष निकालना अनिवार्य है कि वह

अपराध कंपनी द्वारा किया गया था । किन्तु यदि किसी कंपनी को किसी विधिक अड़चन के कारण या अन्यथा अभियोजित नहीं किया जाता है तो अन्य अभियोजित व्यक्ति केवल उस आधार पर अधिनियम की धारा 141 में प्रकल्पित विधिक कल्पना के माध्यम से सृजित दंडात्मक दायित्व से बच नहीं सकते हैं ।"

दोनों पैराओं का पठन करने से यह दृष्टव्य है कि दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया कि वास्तविक अपराध कंपनी द्वारा किया जाना चाहिए और उसके बाद ही अन्य दो प्रवर्गों के व्यक्ति भी अपराध के लिए दायी बन सकते हैं और इसके पश्चात् यह कथन किया कि यदि कंपनी को विधिक अड़चन के कारण या अन्यथा अभियोजित नहीं किया जाता है तो अभियोजित व्यक्ति केवल उस आधार पर विधिक कल्पना के माध्यम से सृजित दंडात्मक दायित्व से बच नहीं सकता है और यह अधिनियम की धारा 141 में प्रकल्पित है । यदि दोनों पैराओं का विश्लेषणात्मक रीति में मूल्यांकन किया जाता है तो निरापद रूप से यह कहा जा सकता है कि उससे उद्भूत होने वाले तथ्यात्मक आधार को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष निकाले जाने हैं । तथापि, यह अवेक्षणीय है कि न्यायपीठ ने इसके पश्चात् **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के प्रति निर्देश किया और अंततोगत्वा निम्न प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि भले ही कंपनी के विरुद्ध अभियोजन कार्यवाहियां नहीं की गई थीं या जारी नहीं रखी जा सकी थीं, तथापि, अधिनियम की धारा 141 की उपधारा (1) और (2) के कार्यक्षेत्र के भीतर आने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन चलाने के संबंध में कोई वर्जन नहीं है ।"

37. हमने पहले ही यह राय व्यक्त कर दी है कि **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चय **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयाधार के विपरीत है, जो कि एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा दिया गया निर्णय है और एक बाध्यकारी पूर्वनिर्णय है । उपर्युक्त विनिश्चयाधार पर **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चय को सही विधि अधिकथित न करने वाला विनिश्चय माना जाना है, जहां तक उसमें यह कहा गया है कि निदेशक या किसी अन्य अधिकारी को कंपनी को आलिप्त किए बिना अभियोजित किया जा सकता है । इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि यह मामला भिन्न आधार पर आधारित होगा

जहां कुछ विधिक अड़चन है और लेक्स नान कोजिट एड इम्पोसिबिला, अर्थात् "विधि असंभव करने के लिए विवश नहीं करती" का सिद्धांत लागू होता है ।

38. इस प्रक्रम पर, हम **उत्तर प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड** बनाम **मैसर्स मोदी डिस्टिलरी और अन्य**[1] वाले मामले में के विनिश्चय के प्रति उपयोगी रूप से निर्देश कर सकते हैं । उक्त मामले में, कंपनी को अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया गया था और उस आधार पर उच्च न्यायालय ने अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध की गई कार्यवाही अभिखंडित कर दी थी । इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्न प्रकार मत व्यक्त किया था :–

> "संक्षेप में, विधि की पूर्ण प्रतिपादना के रूप में विद्वान् एकल न्यायाधीश के इस मत को सही रूप में माना जा सकता है कि अधिनियम की धारा 47 की उपधारा (1) या (2) के अधीन, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, प्रबंध निदेशक और निदेशक बोर्ड के सदस्यों का प्रतिनिधायी दायित्व तब तक नहीं हो सकता जब तक कि औद्योगिक यूनिट का स्वामित्व रखने वाली कंपनी मैसर्स मोदी इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड के विरुद्ध अभियोजन नहीं किया गया हो । उच्च न्यायालय के समक्ष याचियों द्वारा किए गए आक्षेप को पृथक् रूप से नहीं देखा जाना चाहिए किन्तु तथ्यों और घटनाओं की सामान्य दशा में न कि शून्य में देखा जाना चाहिए । हम पहले ही यह बतला चुके हैं कि परिवाद में तकनीकी त्रुटि बोर्ड से मांगी गई अपेक्षित जानकारी पेश करने में औद्योगिक यूनिट की असफलता के कारण है । इसके अतिरिक्त, विधिक त्रुटि ऐसी प्रकृति की है जो सरलता से ठीक की जा सकती है । अन्य परिस्थिति, जो विद्वान् एकल न्यायाधीश के संकीर्ण दृष्टिकोण को प्रकट करती है इस तथ्य का अधिमूल्यन करने में उनकी असफलता है कि पैरा 2 के प्रकथन का पैरा 17, 18 और 19 में अंतर्विष्ट प्रकथनों को देखते हुए अर्थान्वयन किया जाना चाहिए, जो इस आशय के हैं कि अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, प्रबंध निदेशक और निदेशक बोर्ड के सदस्य भी कंपनी द्वारा किए गए अभिकथित अपराध के लिए दायी थे ।"

यह उल्लेखनीय है कि दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने ठीक ही यह

---

[1] [1988] 1 उम. नि. प. 210 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 1128.

कथन किया है कि प्रतिनिधिक दायित्व तब तक नहीं हो सकता जब तक कि औद्योगिक यूनिट का स्वामित्व रखने वाली कंपनी के विरुद्ध अभियोजन न चलाया गया हो किन्तु तथ्यात्मक आधार, अर्थात् कंपनी की ओर से बोर्ड द्वारा मांगी गई अपेक्षित जानकारी प्रस्तुत करने में तकनीकी त्रुटि को ध्यान में रखना होगा, आवेदक द्वारा औपचारिक संशोधन किए जाने और स्वामित्व रखने वाले औद्योगिक यूनिट का नाम प्रतिस्थापित करने का निदेश दिया । यह उल्लेखनीय है कि उक्त मामले में मैसर्स मोदी इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड की बजाय मैसर्स मोदी डिस्टिलरी को पक्षकार के रूप में शामिल किया गया था । इस प्रकार, यह एक त्रुटिपूर्ण किन्तु सहगर्भित परिवाद था जिसे ठीक किया जा सकता था, कंपनी के मुख्य दायित्व के संबंध में अधिकथित विधि का उपयुक्त रूप से कथन किया गया था, जिसके बिना कोई प्रतिनिधिक दायित्व अधिरोपित नहीं किया जा सकता है ।

39. यह स्मरणीय है कि अधिनियम की धारा 141 का संबंध कंपनी द्वारा किए गए अपराधों से है । यह अन्य व्यक्तियों को कंपनी की ओर से अपराध कारित करने के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाती है । जैसा कि हमने इससे पूर्व कथन किया है, प्रतिनिधिक दायित्व तभी लागू होता है जब अधिनियम की धारा 141 में अधिकथित पूर्वशर्त पूरी हो जाती है । इस बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है कि चूंकि यह दायित्व दांडिक स्वरूप का है इसलिए इस उपबंध का कठोर अर्थान्वयन करना आवश्यक और एक प्रकार से न्यायसंगत होगा ।

40. इस संदर्भ में, हम फ्रांसिस बेन्नियोन स्टेट्यूटरी इंटरप्रटेशन की धारा 263 के प्रति उपयोगी रूप से निर्देश कर सकते हैं जिसमें निम्न प्रकार कथन किया गया है :–

> "कानूनी निर्वचन के सिद्धांत में विधि का सिद्धांत सन्निविष्ट होता है जो कि पुनः लोक नीति पर आधारित होता है । न्यायालय, जब तक प्रतिकूल आशय प्रतीत नहीं होता है, यह उपधारणा करता है, कि विधान-मंडल का आशय इस विधिक नीति के अनुरूप था । अतः, कानूनी निर्वचन के सिद्धांत को विधायी आशय के मार्गदर्शक के रूप में विरचित विधिक नीति के सिद्धांत के रूप में वर्णित किया जा सकता है ।"

41. मैक्सवैल कृत द इंटरप्रटेशन ऑफ स्टेट्यूट्स (12वां संस्करण) में से एक लेखांश को उद्धृत करना उचित होगा :–

दंड संबंधी कानूनों का कठोर अर्थान्वयन चार तरीकों से स्वतः प्रकट होता है ; किसी अपराध के सृजन के लिए अभिव्यक्त भाषा की अपेक्षा करने में ; किसी अपराध के संघटक उपवर्णित करने वाले शब्दों का कठोरता से निर्वचन करने में; दंड आरोपित करने संबंधी कानूनी पूर्वशर्तों के भाव को पूरा करने की अपेक्षा करने में; और दंड प्रक्रिया और अधिकारिता से संबंधित तकनीकी उपबंधों के यथार्थ अनुपालन पर जोर देने के संबंध में प्रकट होता है ।

42. हमने उपर्युक्त लेखांशों का उल्लेख केवल यह प्रदर्शित करने के लिए किया है कि विधायी आशय को ध्यान में रखते हुए उपबंधों का यथार्थ अनुपालन किया जाना चाहिए क्योंकि यह दांडिक उपबंधों के संबंध में है और शास्ति इस प्रकार अधिरोपित नहीं की जानी है कि उससे व्यक्तियों के अधिकारों पर, चाहे वे विधिक इकाइयां हों या व्यष्टि, तब तक प्रतिकूल प्रभाव न पड़ता हो जब तक उन्हें अभियुक्त के रूप में शामिल नहीं किया जाता है । यह ध्यान में रखा जाना है कि दंड देने की शक्ति विधान-मंडल में निहित होती है और वह अधिनियम की धारा 141 में सुनिश्चित है जिसमें स्पष्ट रूप से कंपनी द्वारा अपराध कारित करने की बात कही गई है । प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने प्रबल रूप से इस बात पर जोर दिया है कि इस धारा में "साथ ही" पद के प्रयोग का अत्यंत महत्व है और इससे कंपनी साथ ही निदेशक और/या ऐसे अन्य अधिकारी उसकी परिधि के भीतर आ जाते हैं, जो कंपनी के कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं और इसलिए निदेशकों या अन्य अधिकारियों के विरुद्ध अभियोजन चलाया जा सकता है भले ही कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित किया गया हो अथवा नहीं । "साथ ही" शब्दों का इसी संदर्भ में अर्थ लगाया जाना है । **भारतीय रिजर्व बैंक** बनाम **पियरलैस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य**[1] वाले मामले में यह अधिकथित किया गया है कि सर्वप्रथम संपूर्ण कानून का पठन समग्र रूप से और उसके बाद धारा-वार, खंड-वार, वाक्यांश-वार और शब्दशः किया जाना चाहिए । यही सिद्धांत **दीवान सिंह और अन्य** बनाम **राजेन्द्र प्रसाद अरदेवी और अन्य**[2] और **सरबजीत रिक सिंह** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामलों में दोहराया गया है । कठोर अर्थान्वयन का सिद्धांत लागू करते हुए हमारी यह सुविचारित राय है

---

[1] (1987) 1 एस. सी. सी. 424.

[2] (2007) 10 एस. सी. सी. 528.

[3] (2008) 2 एस. सी. सी. 417.

कि अन्य व्यक्तियों का प्रतिनिधिक दायित्व लागू करने के लिए कंपनी द्वारा अपराध कारित किया जाना एक सुस्पष्ट पूर्वशर्त है । अतः, धारा में आने वाले "साथ ही कंपनी" शब्दों से पूर्णतः असंदिग्ध रूप से यह स्पष्ट होता है कि जब कंपनी को अभियोजित किया जा सकता है केवल तभी अन्य प्रवर्गों में उल्लिखित व्यक्तियों को अपराध के लिए याचिका में किए जाने वाले प्रकथनों और उनके सबूत के अध्यधीन रहते हुए प्रतिनिधिक रूप से दायी ठहराया जा सकेगा । इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता है कि कंपनी एक विधिक व्यक्ति है और उसका अपना सम्मान है । यदि उसके विरुद्ध कोई निष्कर्ष लेखबद्ध किया जाता है तो उसकी ख्याति में गिरावट आ जाएगी । ऐसी स्थितियां भी हो सकती हैं जब कंपनी की ख्याति तब प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है जब उसके किसी निदेशक को अभ्यारोपित किया जाता है ।

43. हमारे उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए हम इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिनियम की धारा 141 के अधीन अभियोजन को कायम रखने के लिए कंपनी को अभियुक्त के रूप में दोषारोपित करना अनिवार्य है । अन्य प्रवर्गों के अपराधियों को केवल प्रतिनिधिक दायित्व की कसौटी के आधार पर इस जाल में लाया जा सकता है जैसा कि स्वयं उपबंध में ही अनुबंधित है । हम ऐसा **सी. वी. पारेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयाधार पर कहते हैं जो कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय है । इस प्रकार, **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत द्वारा विधि सही रूप में अधिकथित नहीं की गई है और तदनुसार उसे एतद्द्वारा उलटा जाता है । **अनिल हाडा** (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चय पैरा 37 में यथा-कथित शर्त के साथ उलटा जाता है । **मोदी डिस्टिलरी** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय को उसके अपने तथ्यों तक निर्बंधित मानना होगा जैसा कि हमारे द्वारा इसमें इसके ऊपर स्पष्ट किया गया है ।

44. यदि हम यह कथन नहीं करते हैं कि प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा उद्धृत सभी विनिश्चयों का संबंध सूचना की तामील करने, भुगतान रोकने के लिए अनुदेश देने और अधिनियम की धारा 138 के अधीन आने वाले कतिपय अन्य क्षेत्रों से है तो हम अपने कर्तव्य में विफल हो जाएंगे । इनसे प्रत्यर्थियों के मामले को वास्तव में कोई मदद या सहायता नहीं मिलती है और इसलिए हम उक्त नजीरों पर विचार करने से स्वयं को विरत करते हैं ।

45. परिणामतः, 2008 की दांडिक अपील सं. 838 और 2008 की दांडिक अपील सं. 842 मंजूर की जाती हैं और अधिनियम की धारा 138 के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

46. अब हम अन्य दो अपीलों का उल्लेख करेंगे, अर्थात्, 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 जिनमें 2000 के अधिनियम की धारा 85 के साथ पठित धारा 67 के अधीन अपराध किया गया है । 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 में, कंपनी का निदेशक अपीलार्थी है और 2009 की दांडिक अपील सं. 1484 में कंपनी अपीलार्थी है । इन दोनों ने, उच्च न्यायालय द्वारा पारित उसी आदेश की विधिक प्रमाणिकता को प्रश्नगत किया है । उक्त मामले में, उच्च न्यायालय ने **शिवरतन अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय का अनुसरण किया है और कंपनी के प्रबंध निदेशक अविनाश बजाज की ओर से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन किए गए आवेदन पर कार्यवाही करते समय भारतीय दंड संहिता की धारा 292 और 294 के अधीन आरोपों को अभिखंडित कर दिया है और 2000 के अधिनियम की धारा 85 के साथ पठित धारा 67 के अधीन अपराधों को जारी रखा है । यह उल्लेख करना उपयुक्त है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया है कि कंपनी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 292(2)(क) और 292(2)(ख) के अधीन अपराध के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला भी साबित होता है ।

47. 2000 के अधिनियम की धारा 85 निम्नलिखित रूप में है :–

> "85. कंपनियों द्वारा अपराध – (1) जहां कोई व्यक्ति, जो एक कंपनी है, इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए किसी निदेश या आदेश के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन करता है, वहां प्रत्येक ऐसा व्यक्ति, जो उस उल्लंघन के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी, ऐसे उल्लंघन के दोषी समझे जाएंगे और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने के भागी होंगे :
>
> परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि ऐसा उल्लंघन उसकी जानकारी के बिना किया गया था या उसने ऐसे उल्लंघन के किए जाने का निवारण करने के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए किसी निदेश या आदेश के किन्हीं उपबंधों का उल्लंघन किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह उल्लंघन कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य प्राधिकारी भी उस अपराध या उल्लंघन का दोषी समझा जाएगा और तदनुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।"

48. उपर्युक्त उपबंध की संरचना को ध्यान में रखते हुए अधिनियम की धारा 141 से संबंधित हमारा विश्लेषण 2000 की अधिनियमिति को समान रूप से लागू होगा । इस प्रकार न्यायनिर्णयन करने पर निदेशक को 2000 के अधिनियम की धारा 85 के अधीन अपराध के लिए दायी नहीं ठहराया जा सकता था । परिणामतः, 2009 की दांडिक अपील सं. 1483 मंजूर की जाती है और अपीलार्थी के विरुद्ध कार्यवाही अभिखंडित की जाती है । जहां तक कंपनी का संबंध है, उसे अभियुक्त के रूप में दोषारोपित नहीं किया गया था । इसीलिए, विद्यमान रूप में आरंभ की गई कार्यवाही न तो कंपनी के विरुद्ध और न ही निदेशक के विरुद्ध कायम रखे जाने योग्य है । तर्कसंगत परिणाम के रूप में, अपीलें मंजूर की जाती हैं और अविनाश बजाज तथा कंपनी के विरुद्ध वर्तमान रूप में आरंभ की गई कार्यवाहियां अभिखंडित की जाती हैं ।

49. मामले को समाप्त करने से पूर्व, हम पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलो और विद्वान् न्यायमित्र द्वारा प्रदान की गई कुशल सहायता के लिए अपना निर्विघ्न और निस्संकोच आभार व्यक्त करते हैं ।

50. अंतिम विश्लेषण के तौर पर, सभी अपीलें मंजूर की जाती हैं ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

ग्रो./अनू.

## केरल राज्य और अन्य

बनाम

## मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड और एक अन्य

8 मई, 2012

मुख्य न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया, न्यायमूर्ति डी. के. जैन, न्यायमूर्ति सुरिन्दर सिंह निज्जर, न्यायमूर्ति (श्रीमती) रंजना प्रकाश देसाई और न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 245 और 246 – केन्द्रीय विधि और राज्य विधि के बीच विरोध – विरोध के अवधारण के लिए समय बिन्दु – दो विधियों के बीच विरोध विधि बनाने, अर्थात् उसके अधिनियमन पर ही उद्भूत होता है न कि उसके प्रारंभ या प्रवृत्त होने पर इसलिए ऐसे विधान-मंडल द्वारा, जिसे उस क्षेत्र में सर्वोच्चता प्राप्त है सम्यक् रूप से बनाया गया ऐसा विधान जो कि प्रवर्तन में नहीं लाया गया है या प्रारंभ नहीं हुआ है, अधीनस्थ विधान-मंडल के उस विधान को शून्य बना सकता है जो कि उसके विरुद्ध है ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 245, 246, सूची 7 की प्रविष्टि 1.2 और 3 – विधायी शक्ति – विधायी शक्ति अनुच्छेद 245 से व्युत्पन्न होती है और अनुसूची 7 की सूचियों की प्रविष्टियां संबंधित विधान-मंडलों का विधायी क्षेत्र सीमांकित करती हैं न कि ऐसी कोई विधायी शक्ति प्रदान करती हैं ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 254 [सपठित केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 4(1क)(2002 के अधिनियम सं. 7 द्वारा यथा-अंतःस्थापित) और चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 1] – विरोध – चिटों के संचालन से संबंधित संपूर्ण विधायी क्षेत्र को ग्रहण करते हुए केन्द्रीय अधिनियम बनाए जाने पर केरल अधिनियम शून्य हो गया था और इस तथ्य के होते हुए भी केन्द्रीय अधिनियम केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं किया गया था, राज्य विधान-मंडल ने 2002 के अधिनियम द्वारा राज्य अधिनियम में धारा 4(1क) अंतःस्थापित करने संबंधी अपना प्राधिकार खो दिया था ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 254 और अनुच्छेद 367 [सपठित**

**केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 1, चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) की धारा 90, 85 और साधारण खंड अधिनियम, 1897 (1897 का 10) की धारा 6] – केन्द्रीय अधिनियम के विरुद्ध होने के कारण राज्य अधिनियम का विवक्षित निरसन – किसी अधिनियमिति का निरसन विधान-मंडल के आशय पर निर्भर करता है और यदि उस विधान-मंडल का आशय, जिसे उस स्थिति में सर्वोच्चता प्राप्त है, पश्चात्वर्ती अधिनियमिति द्वारा पूर्ववर्ती अधिनियमिति को पूर्णतः या भागतः निराकृत या समाप्त करना होता है तो यह सीमित निरसन का मामला होगा तथा केन्द्रीय अधिनियम को उस राज्य में प्रवर्तन में न लाए जाने के परिणामस्वरूप विधायी शून्यता पैदा नहीं होगी ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 246(1), 254(1) और (2) तथा अनुसूची 7 की सूची 1, 2 और 3 – केन्द्रीय अधिनियम और राज्य अधिनियम के बीच विरोध कैसे उद्भूत होता है – संसदीय विधान और राज्य विधान के बीच विरोध दो तरीके से उद्भूत होता है, प्रथमतः, जहां विधान यद्यपि अपने-अपने आबंटित क्षेत्रों में के विषयों के संबंध में अधिनियमित किए गए हैं किन्तु उनमें अतिव्याप्ति और टकराव है और द्वितीयतः, जहां दोनों विधान समवर्ती सूची में के विषयों के संबंध में हैं किन्तु उनमें परस्पर-विरोध है ।**

प्रस्तुत मामले में मुकदमेबाजी निम्नलिखित परिस्थितियों में उद्भूत हुई थी । अनेक प्राइवेट चिट्टी फर्में स्वयं को केरल राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत कराकर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 में विहित विनियामक प्रणाली से बाहर हो गई किन्तु वे केरल राज्य में कार्य करती रहीं । इस कारण निवेशकों का संरक्षण करना कठिन हो गया । परिणामस्वरूप, 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा 1975 के अधिनियम की धारा 4 में संशोधन किया गया था । उक्त संशोधन द्वारा धारा 4 में उपधारा (1क) अंतःस्थापित की गई थी । इस संशोधन का आशय राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत उन चिट्टियों को, जिनके 20 प्रतिशत या उसके अधिक अभिदाता सामान्य रूप से राज्य में निवास करते हैं, 1975 के उक्त अधिनियम की परिधि के भीतर लाना था । प्राइवेट चिट्टी फर्मों ने उक्त संशोधन से व्यथित होकर 1975 के अधिनियम की धारा 4(1क) की शक्तिमत्ता को अनुच्छेद 254(1) के अधीन केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के विरुद्ध होने के आधार पर चुनौती दी । खंड न्यायपीठ के आक्षेपित निर्णय द्वारा प्राइवेट चिट्टी फर्मों की ओर से दी गई इस दलील को स्वीकार कर लिया गया है कि दोनों अधिनियमों

के उपबंधों के बीच असंगतियां हैं । तथापि, एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 1(3) के अधीन ऐसी अधिसूचना के अभाव में, जिसके द्वारा 1982 का उक्त अधिनियम राज्य में प्रवृत्त किया गया था और 1982 के उक्त अधिनियम की धारा 89 के अधीन नियम विरचित किए जाने के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, 1982 के उक्त अधिनियम के, जो कि एक केन्द्रीय अधिनियम है, अधिनियमित हो जाने पर निरसित हो गया था ; जबकि खंड न्यायपीठ ने 1975 के अधिनियम की धारा 4(1क) को राज्यक्षेत्रातीत और परिणामस्वरूप असांविधानिक घोषित किया, अतः, केरल राज्य ने इस न्यायालय में अपील फाइल की । प्रस्तुत मामले में, जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है वह यह है – क्या केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) बनाए जाने पर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 (1975 का 23) केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) (अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 1982 को, जब राष्ट्रपति ने उसे अपनी अनुमति दी) विरुद्ध हो गया था या क्या केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 (1975 का 23) तब केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) के विरुद्ध हो जाएगा जैसे ही केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) की धारा 1(3) के अधीन केन्द्रीय अधिनियम को केरल राज्य में प्रवृत्त करने संबंधी अधिसूचना जारी कर दी जाती है । इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की निर्देश न्यायपीठ ने केरल राज्य बनाम मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड वाले मामले में 2005 की सिविल अपील सं. 6660 में तारीख 18 फरवरी, 2009 के आदेश द्वारा पंडित ऋषिकेश और एक अन्य बनाम सलमा बेगम (श्रीमती) वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए मत की शुद्धता पर संदेह किया था । तदनुसार, यह मामला संविधान के अनुच्छेद 254(1) के अधीन सांविधानिक महत्व के निम्नलिखित प्रमुख विवाद्यकों पर निश्चितता के साथ विनिश्चय करने के लिए प्रस्तुत किया गया है । उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा निर्देश का तदनुसार उत्तर देते हुए,

**अभिनिर्धारित** – जबकि विधायी शक्ति अनुच्छेद 245 से व्युत्पन्न होती है किन्तु संविधान की सातवीं अनुसूची में की प्रविष्टियां केवल संबंधित विधान-मंडलों के विधायी क्षेत्रों को सीमांकित करती हैं और ऐसी कोई विधायी शक्ति प्रदान नहीं करती हैं । जबकि संसद् को भारत के संपूर्ण

राज्यक्षेत्र या किसी भाग के लिए विधियां बनाने की शक्ति प्राप्त हैं किन्तु किसी राज्य का विधान-मंडल उस राज्य या उसके भाग के लिए ही विधियां बना सकता है । इस प्रकार, अनुच्छेद 245 में अन्य बातों के साथ-साथ संसद् और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के विस्तार को उपदर्शित करता है । अनुच्छेद 246 संसद् द्वारा और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों की विषयवस्तु के संबंध में है । अनुच्छेद 245 विधायी शक्तियों के प्रदान किए जाने के संबंध में है जबकि अनुच्छेद 246 में विधायी शक्तियों के वितरण के लिए उपबंध हैं । अनुच्छेद 245 विधियों के विस्तार के संबंध में है जबकि अनुच्छेद 246 विधायी शक्तियों के वितरण के संबंध में है । इन अनुच्छेदों में, संविधान निर्माताओं ने "बनाने" शब्द का प्रयोग किया है न कि "प्रारंभ" शब्द का, जिसका एक विनिर्दिष्ट विधिक अर्थ है [साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 2(13) देखिए] । एक और पहलू पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है । अनुच्छेद 246(1) "खंड (2) और खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी" सर्वोपरि खंड से आरंभ होता है । इन शब्दों से संघीय सर्वोच्चता उपदर्शित होती है, अर्थात्, संघ और राज्य की शक्तियों के बीच अपरिहार्य टकराव की दशा में सूची 1 में प्रगणित संघ की शक्तियां सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित राज्य की शक्तियों पर अभिभावी होंगी और सूची 3 और सूची 2 के बीच अधिव्यापन की दशा में पूर्ववर्ती अभिभावी होगी । तथापि, अनुच्छेद 246(1) में दर्शित संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का तब तक अवलंब लिया जा सकता है जब तक कि संघ और राज्य सूचियों में की प्रविष्टियों के बीच "असमाध्येय" टकराव न हो । यह टकराव वास्तविक टकराव होना चाहिए । अनुच्छेद 246(1) का सर्वोपरि खंड केवल तभी प्रवर्तित होता है यदि समाधान असंभव हो । इस प्रकार, अनुच्छेद 246 के खंड (2) और खंड (3) में "के अधीन रहते हुए" अभिव्यक्ति संसद् की सर्वोच्चता द्योतित करती है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 246(1) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "के संबंध में" है । "के संबंध में" विधि और किसी विषयवस्तु पर "प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली" विधि के बीच विभेद है । अनुच्छेद 245 के आरंभिक शब्द "संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए" अनुच्छेद 245 और अनुच्छेद 246 तथा विधायी सूचियों द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति को "संविधान के उपबंधों के अध्यधीन" बना देते हैं । परिणामस्वरूप, विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधियां न केवल विषयवस्तु की बाबत विधायी शक्तियों की कमी के कारण बल्कि सांविधानिक परिसीमाओं का अतिलंघन करने के कारण भी शून्य बनाई जा सकती हैं । इस प्रकार, विधि बनाना राज्य सूची में के

किसी विषय के संबंध में तब विधि बनाना है यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो । इस विचार-विमर्श का महत्व यह दर्शाना है कि संविधान निर्माताओं ने जानबूझकर उपरोक्त अनुच्छेदों में "बनाई गई" या "बनाने" शब्द का प्रयोग किया है । हमारे संविधान में संसद् को विधियां बनाने या तीन सूचियों में अंकित विषयों के संबंध में विधान बनाने के विषय में सर्वोच्चता दी गई है । संसद् की सर्वोच्चता के सिद्धांत, विधायी शक्तियों के वितरण, तीन सूचियों में विषयों के आत्यांतिक वर्णन को विधियां बनाने के संदर्भ में न कि विधियों के प्रारंभ के संदर्भ में देखा जाना है । (पैरा 16)

जहां राज्य विधि का संघ (केन्द्रीय) विधि से विरोध हो वहां संघ विधि अभिभावी होगी । विरोध का प्रश्न केवल समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों के संबंध में ही उद्भूत होता है क्योंकि संसद् और राज्य विधान-मंडल दोनों को उस सूची में की विषयवस्तु के संबंध में विधान बनाने की शक्तियां प्राप्त हैं । ऐसे मामलों में, अनेक बार टकराव उत्पन्न होता है । अनुच्छेद 254 के खंड (1) में यह कहा गया है कि यदि किसी समवर्ती विषय से संबंधित कोई राज्य विधि उस विषय से संबंधित संघ विधि के "विरुद्ध" है तो चाहे संघ विधि उससे पहले या बाद में बनाई गई हो, संघ विधि अभिभावी होगी और राज्य विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी । इस प्रकार, अनुच्छेद 254(1) में भी संसद् द्वारा बनाई गई उस विधि को सर्वोच्चता प्रदान की गई है जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है । विरोध की दशा में, राज्य विधान विरोध की सीमा तक ही शून्य होगा । यदि दोनों विधियों के बीच कोई विरोध नहीं है तो अनुच्छेद 254(1) के लागू होने का कोई प्रश्न नहीं है और दोनों अधिनियम अभिभावी होंगे । इस प्रकार, अनुच्छेद 254 केवल तभी लागू होता है जब संघ द्वारा और राज्य द्वारा सूची 3 में के एक ही विषय के अंतर्गत आने वाले विधान उस विषय पर प्रवर्तित होते हैं क्योंकि सूची 3 में के विषयों के संबंध में उनमें से दोनों (संसद् और राज्य विधान-मंडल) विधियां अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं । अतः, संसद् और राज्य विधान-मंडल ऐसी संविदाओं के संबंध में विधि अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं । संसदीय विधान और राज्य विधान के बीच विरोध का प्रश्न दो तरीके से उद्भूत होता है । प्रथमतः, जहां विधान यद्यपि अपने-अपने आबंटित क्षेत्रों में के विषयों के संबंध में अधिनियमित किए गए हैं किन्तु उनमें अतिव्याप्ति और टकराव है । द्वितीयतः, जहां दोनों विधान समवर्ती सूची में के विषयों के संबंध में हैं किन्तु उनमें परस्पर-विरोध है । दोनों स्थितियों में, संसदीय विधान को प्रथमतः अनुच्छेद 246(1) में

सर्वोपरि खंड के आधार पर और द्वितीयतः, अनुच्छेद 254(1) के कारण प्रधानता मिलेगी । व्यापक रूप से, विधि बनाना अनन्य रूप से विधान-मंडलों का कृत्य है (देखिए अनुच्छेद 79 और 68) । राष्ट्रपति और राज्यपाल संघ या राज्यों के विधान-मंडलों के भाग हैं । जहां तक संसद् का संबंध है, विधायी प्रक्रिया तब पूरी हो जाती है जैसे ही संविधान के अनुच्छेद 107 द्वारा विहित प्रक्रिया और संबद्ध उपबंधों का अनुसरण कर लिया जाता है और संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक को अनुच्छेद 111 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार, कोई राज्य विधान तब अधिनियम बन जाता है जैसे ही कोई विधेयक राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है और उसे अनुच्छेद 200 के अनुसार राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो जाती है । केवल अनुच्छेद 254(2) में अनुध्यात स्थिति में ही किसी राज्य विधान को राष्ट्रपति के विचारार्थ और अनुमति के लिए आरक्षित रखना होता है । इस प्रकार, संसदीय या राज्य अधिनियमिति के प्रवर्तन की तारीख को ध्यान में रखे बिना कोई विधेयक अधिनियम बन जाता है और यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल की अनुमति प्राप्त करने के ठीक पश्चात्, जो अनुमति राजपत्र में प्रकाशित की जानी होती है, कानून की पुस्तक में आ जाता है । विधान-मंडल अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, किसी अधिनियम को, जो पारित हो गया है और जिसे यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो गई है, किसी विनिर्दिष्ट तारीख से प्रवृत्त कर सकता है या उसके प्रवर्तन की तारीख नियत करने का कार्य किसी पदाभिहित प्राधिकारी पर छोड़ सकता है । ऐसे विधान सशर्त विधान होते हैं क्योंकि ऐसे मामलों में विधायी कृत्य का कोई भाग अप्रयुक्त नहीं छोड़ा जाता है । ऐसे विधानों में, मात्र इस कारण कि विधान-मंडल ने अधिनियम का प्रवर्तन मुल्तवी कर दिया है, इसका अर्थ यह नहीं होता है कि विधि बनाई नहीं गई है । प्रस्तुत मामले में, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 एक बनाई गई विधि है । चिट फंड विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था और उसे तारीख 19 अगस्त, 1982 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई थी । यह चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) के रूप में कानून की पुस्तक में आया । उक्त अधिनियम की धारा 1(2) में यह कहा गया है कि इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है जबकि धारा 1(3) में यह कहा गया है कि यह ऐसी तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकती हैं ।

उल्लेखनीय बात यह है कि विधि बनाने की प्रक्रिया तारीख 19 अगस्त, 1982 को समाप्त हो गई थी । धारा 1(3) सशर्त विधान का एक भाग है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऐसी प्रकृति के विधानों में, मात्र इस कारण कि विधान-मंडल ने अधिनियम के प्रवर्तन को मुल्तवी कर दिया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि विधि बनाई नहीं गई है । प्रस्तुत मामले में, तारीख 19 अगस्त, 1982 को चिट फंड अधिनियम, 1982 अधिनियमित किए जाने के पश्चात् उक्त अधिनियम धारा 1(3) के अधीन समय-समय पर जारी की गई अधिसूचनाओं द्वारा 17 राज्यों में लागू किया गया है । धारा 1(3) उक्त अधिनियम को तारीख 2 अप्रैल, 1984 और 15 सितम्बर, 2008 के बीच 17 राज्यों में प्रवर्तित और/या कतिपय अन्य राज्यों के लिए, जिनमें केरल, गुजरात, हरियाणा इत्यादि राज्य भी हैं, अधिनियम के प्रारंभ को मुल्तवी कैसे कर सकती थी यदि वह धारा स्वयं प्रवर्तन में नहीं होती ? यदि संपूर्ण अधिनियम, जिसमें धारा 1(3) भी है, तारीख 19 अगस्त, 1982 को प्रवर्तन में नहीं था तो केन्द्रीय सरकार 17 राज्यों की बाबत उसी धारा के अधीन कोई अधिसूचना कैसे जारी कर सकती थी ? अधिनियम को प्रवर्तन में लाने के लिए सरकार को प्राधिकृत करने वाली कोई विधि अवश्य होनी चाहिए । इस प्रकार, धारा 1(3) अधिनियम के पारित हो जाने के ठीक पश्चात् प्रवर्तन में आ गई । तात्विक तारीखें वे तारीखें हैं जब दोनों अधिनियमितियों को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई जो कि केन्द्रीय अधिनियम की दशा में तारीख 19 अगस्त, 1982 है जबकि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की दशा में वह तारीख 18 जुलाई, 1975 है । अतः, 1982 के केन्द्रीय अधिनियम को अधिनियमित करने का स्पष्ट आशय चिट फंडों के संचालन के कारबार के संबंध में एक पूर्ण संहिता बनाना तथा ऐसी चिट फंडों से संबंधित विधायी क्षेत्र को ग्रहण करना था । इसके अलावा, राज्य विधियों को अध्यारोही करने का आशय स्पष्ट रूप से केन्द्रीय अधिनियम, विशेषकर उसकी धारा 3 में प्रकट होता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी केन्द्रीय अधिनियम के उपबंध प्रभावी होंगे । इसी प्रकार, केन्द्रीय अधिनियम की धारा 90 में भी, जिसमें राज्य विधानों को निरसित करने का उपबंध है, संसद् की ओर से उस क्षेत्र को ग्रहण करने का आशय प्रकट होता है जो अब तक राज्य विधान द्वारा धारण किया हुआ है । चिटों के संचालन से संबंधित प्रत्येक पहलू पर, जो कि राज्य अधिनियम के अंतर्गत आता है, केन्द्रीय अधिनियम द्वारा अत्यधिक व्यापक रीति में विचार किया गया है । इस प्रकार, तारीख 19 अगस्त, 1982 को संसद् ने केन्द्रीय

विधि अधिनियमित करके न केवल विद्यमान राज्य विधियों को अध्यारोही करने बल्कि चिटों से संबंधित, जो कि सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अंतर्गत आने वाली एक विशेष संविदा है, संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण करने का अपना आशय प्रकट कर दिया है । परिणामस्वरूप, राज्य विधान-मंडल से 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा तारीख 29 जुलाई, 2002 को सिवाय संविधान के अनुच्छेद 254(2) के अधीन, धारा 4(1) अधिनियमित करने संबंधी उसकी विधायी शक्ति/प्राधिकार छीन लिया गया था । इस प्रकार, धारा 4(1) अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति की कमी के कारण शून्य हो गई थी । तथापि, अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक को ध्यान में रखते हुए संसद् 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 को प्रवर्तन में लाए जाने की प्रतीक्षा किए बिना इस प्रकार अनुमतिप्राप्त 2002 के वित्त अधिनियम 7 को अध्यारोही करने के लिए भी विधान ला सकती थी क्योंकि उक्त परन्तुक में यह कहा गया है कि अनुच्छेद 254(2) में की कोई बात संसद् को किसी भी समय उसी विषय के संबंध में कोई विधि अधिनियमित करने से नहीं रोकेगी जिसमें राज्य विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि में परिवर्धन, संशोधन, फेरफार या निरसन करना भी है । इस प्रकार, संसद् को ऐसी अध्यारोही विधि अधिनियमित करने के विषय में 2002 के पूर्ववर्ती राज्य वित्त अधिनियम सं. 7 के प्रवृत्त होने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है । इसलिए, परन्तुक के साथ पठित अनुच्छेद 254(2) का ऐसा अर्थान्वयन करना न्यायौचित्यपूर्ण नहीं है जो संसद् को किसी ऐसे राज्य विधान को, जिसे अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है, उस राज्य विधान को प्रवर्तन में लाए जाने तक उसका निरसन, संशोधन या परिवर्तन करने से रोकता हो । (पैरा 17)

अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक में यह उपबंध है कि राज्य द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति से बनाई गई विधि संसद् को उसी विषय के संबंध में कोई विधि, जिसके अंतर्गत ऐसी विधि है, जो राज्य विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, किसी भी समय बनाने से निवारित नहीं करेगी । इस प्रकार, संसद् को राज्य द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति से बनाई गई विधि को प्रवर्तन में लाए जाने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह राज्य की अनुमतिप्राप्त विधि का, जैसे ही वह बनाई जाती है या अधिनियमित की जाती है, निरसन, संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन कर सकती है । हमें संसद् को किसी ऐसे राज्य विधान का, जिसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो

गई है और जिसके द्वारा समवर्ती क्षेत्र में किसी पूर्ववर्ती संसदीय अधिनियमिति को राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर अध्यारोही किया गया है, उसके प्रवर्तन में लाए जाने से पूर्व निरसन, संशोधन या परिवर्तन करने से रोकने का कोई न्यायौचित्य प्रतीत नहीं होता है । संसद् ऐसी राज्य विधि का जैसे ही उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है, निरसन, संशोधन या परिवर्तन कर सकती है और उसे तब तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है जब तक ऐसी अनुमतिप्राप्त राज्य विधि को प्रवर्तन में नहीं लाया जाता है । केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को चिट फंड अधिनियम, 1982 बनाए जाने पर शून्य हो गया था (जब इसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई और इसे राजपत्र में प्रकाशित कराया गया) क्योंकि 1982 का केन्द्रीय अधिनियम चिटों के संचालन के संबंध में संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करने के लिए आशयित था और इसके अलावा, 2002 का राज्य वित्त अधिनियम सं. 7, जिसके द्वारा 1975 के राज्य अधिनियम में धारा 4(1क) पुरःस्थापित की गई थी, शून्य था क्योंकि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के संविधान के अनुच्छेद 254(1) में यथा-प्रकल्पित संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण कर लेने के पश्चात् राज्य विधान-मंडल, सिवाय अनुच्छेद 254(2) के अधीन, 2002 के उक्त वित्त अधिनियम सं. 7 को अधिनियमित करने संबंधी अपने प्राधिकार से वंचित हो गया था । इस प्रकार, विरोध केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के बनाए जाने से न कि उसके प्रारंभ से उद्भूत होता है । केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, तारीख 19 अगस्त, 1982 को साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 की सीमा तक के सिवाय अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहा था । (पैरा 19)

जब किसी राज्य विधि का किसी संघ विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से या विवक्षा द्वारा निरसन कर दिया जाता है तो साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 उन बातों के बारे में, जो इस प्रकार निरसित की गई राज्य अधिनियम के अधीन की गई हैं, जिससे कि निरसन से पूर्व राज्य विधि के अधीन किए गए संव्यवहारों को बचाया जा सके तथा केन्द्रीय अधिनियम के अधिनियमन से पूर्व राज्य अधिनियम के अधीन उद्भूत होने वाले किन्हीं अधिकारों और दायित्वों को लागू होती है । किसी अधिनियमिति का निरसन सारवान् विषय है । यह विधान-मंडल के आशय पर निर्भर करता है । यदि पश्चात्वर्ती अधिनियमिति के आधार पर विधान-मंडल का आशय पूर्ववर्ती अधिनियमिति को पूर्णतः या भागतः मिटाना या मुक्त करना है तो यह उस सीमा तक निरसन का मामला होगा । (पैरा 24)

केन्द्रीय अधिनियम को अधिनियमित करने में संसद् का आशय चिटों से संबंधित या उसकी बाबत संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना है । अतः, दोनों आधारों पर दोनों अधिनियमों में एकरूपता नहीं है । इस विरोध के परिणामस्वरूप, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को अनुच्छेद 254(1) के अधीन शून्य हो गया और इस प्रकार केरल चिट्टीज़ ऐक्ट विवक्षित रूप से निरसित हो गया था । तथापि, संविधान के अनुच्छेद 367 के आधार पर साधारण खंड अधिनियम उक्त निरसन को लागू होता है । साधारण खंड अधिनियम की धारा 6(ख) और (ग) के अधीन केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के पूर्ववर्ती प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही केरल के उक्त निरसित अधिनियम के अधीन अर्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । यह सांविधानिक स्थिति तब अभिभावी होगी यदि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90(1) विद्यमान न होती । दूसरे शब्दों में, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90(1) का कथन बहुत सावधानी से किया गया है । इस प्रकार, तारीख 19 अगस्त, 1982 के पश्चात्, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 के सीमित प्रयोजनों के सिवाय निरसित हो गया था । इसी प्रकार, चिटों के संबंध में चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90 में निर्दिष्ट अन्य विद्यमान छह राज्य विधियां भी, जो तारीख 19 अगस्त, 1982 को विद्यमान थीं, साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 के अधीन व्यावृत्ति के अधीन रहते हुए निरसित हो गई थीं । (पैरा 25)

केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 को किसी राज्य में प्रवर्तन में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार को धारा 1(3) के अधीन राजपत्र में एक अधिसूचना जारी करनी होती है । ऐसा कुछ राज्यों के लिए किया गया है किन्तु अन्य राज्यों, जैसे केरल के लिए ऐसा नहीं किया गया है । यह केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है कि वह जब भी उपयुक्त समझे, केरल में चिट फंड अधिनियम, 1982 प्रवृत्त करने के लिए अधिसूचना जारी करे, जैसा कि उसने कुछ राज्यों में किया है । जब तक ऐसी अधिसूचना जारी नहीं कर दी जाती तब तक केरल राज्य में न तो केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 अभिभावी रहता है क्योंकि वह शून्य हो गया है और अनुच्छेद 254(1) के अधीन निरसित हो गया है और न ही केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 अभिभावी होता है क्योंकि इसे आज तक अधिसूचित

नहीं किया गया है । जब भी केन्द्रीय सरकार धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना द्वारा चिट फंड अधिनियम, 1982 को केरल राज्य में प्रवर्तन में लाती है, धारा 90(2) प्रभावी हो जाएगी और इसके पश्चात् केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केवल उन चिटों को, जो केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के प्रारंभ होने की तारीख को केरल राज्य में प्रवर्तन में थीं, उसी रीति में लागू होता रहेगा जैसे केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 ऐसी चिटों को ऐसे प्रारंभ से पूर्व लागू होता था । इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 85(क) और 90(2) में केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के उपबंधों के तब तक लागू बने रहने का उपबंध है जब तक केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 का प्रारंभ नहीं होता है । ऐसा प्रारंभ धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना पर निर्भर करता है । इस प्रकार, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के ऐसे प्रारंभ पर, तारीख 19 अगस्त, 1982 और केन्द्रीय अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख के बीच किए गए संव्यवहार (चिट) धारा 90(2) के अधीन संरक्षित रहेंगे । अतः, कोई विधायी शून्यता पैदा नहीं होगी । (पैरा 26)

समय के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विरोध विधि के बनाए जाने से न कि उसके प्रारंभ से उद्भूत होता है । उपर्युक्त कसौटी लागू करते हुए, यह भी अभिनिर्धारित किया जाता है कि तारीख 19 अगस्त, 1982 को केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर, जिसके अंतर्गत संविधान की सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अधीन चिटों का संपूर्ण क्षेत्र आता था, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 अनुच्छेद 254(1) में यथा-प्रतिष्ठापित विरोध के कारण शून्य हो गया था और विवक्षित रूप से निरसित हो गया था । यह कि चिटों का संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण किए जाने के पश्चात् केरल विधान-मंडल 2002 का राज्य वित्त अधिनियम सं. 7 अधिनियमित नहीं कर सकता था जिसके द्वारा केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 में धारा 4(1क) अंतःस्थापित की गई थी, विशेषकर राज्य अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपतीय अनुमतिप्राप्त करने में असफल रहा था । यद्यपि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं किया गया है तथापि, वह बनाई गई एक ऐसी विधि है जो विद्यमान विधि के रूप में बनी हुई है । अतः, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6, विशेषकर धारा 6(ख) और 6(ग) सुसंगत है और परिणामस्वरूप, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के पूर्व प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं पड़ा है और न ही 1975 के निरसित राज्य अधिनियम के अधीन अर्जित या उपगत किसी अधिकार,

विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । अतः, तारीख 19 अगस्त, 1982 के पश्चात्, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के सीमित प्रयोजनों के सिवाय निरसित हो गया है । जब भी केन्द्रीय सरकार धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना द्वारा चिट फंड अधिनियम, 1982 को केरल राज्य में प्रवर्तन में लाती है, धारा 90(2) प्रभावी हो जाएगी और इसके पश्चात् केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केवल उन चिटों को, जो केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के प्रारंभ होने की तारीख को केरल राज्य में प्रवर्तन में थीं, उसी रीति में लागू होता रहेगा जैसे केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 ऐसी चिटों को ऐसे प्रारंभ से पूर्व लागू होता था । (पैरा 28)

## अनुसरित निर्णय

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [1985] | [1985] 4 उम. नि. प. 988 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 476 : **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **कर्नाटक राज्य** ; | 18 |
| [1983] | [1983] 2 उम. नि. प. 655 = (1983) 1 एस. सी. सी. 177 : **टी. बरई** बनाम **हैनरी आ हो** ; | 18 |
| [1980] | [1980] 1 उम. नि. प. 1121 = (1979) 3 एस. सी. सी. 431 : **एम. करुणानिधि** बनाम **भारत संघ** ; | 18 |
| [1969] | [1969] 3 उम. नि. प. 402 = [1969] 3 एस. सी. आर. 65 : **टी. एस. बलिया** बनाम **टी. एस. रंगाचारी** ; | 22 |
| [1964] | [1964] 4 एस. सी. आर. 461 : **उड़ीसा राज्य** बनाम **एम. ए. टुलक एंड कंपनी** ; | 18,19,20 |
| [1961] | [1961] 2 एस. सी. आर. 537 : **हिंगीर-रामपुर कोल कंपनी** बनाम **उड़ीसा राज्य** ; | 18 |
| [1955] | ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 25 : **एडवर्ड मिल्स कंपनी लिमिटेड, बीवर** बनाम **अजमेर राज्य** ; | 19 |

[1955] [1955] 1 एस. सी. आर. 893 :
**पंजाब राज्य** बनाम **मोहर सिंह** । 23

**पुष्ट किया गया निर्णय**

[1995] (1995) 4 एस. सी. सी. 718 :
**पंडित ऋषिकेश और एक अन्य** बनाम
**सलमा बेगम (श्रीमती)** । 1,3,4,5,15,28

**अवलंबित निर्णय**

[1993] (1993) सप्ली. 4 एस. सी. सी. 226 :
**श्रीराम चिट्स एंड इन्वेस्टमेंट (प्रा.) लिमिटेड** बनाम
**भारत संघ** ; 17

[1970] [1970] 1 एस. सी. आर. 443 :
**इंदू भूषण बोस** बनाम **रामा सुन्दरी देवी**
**और एक अन्य** ; 16

[1969] [1969] 1 एस. सी. आर. 430 :
**अमलगमेटेड इलैक्ट्रीसिटी कंपनी (बेलगाम) लिमिटेड**
बनाम **नगरपालिका समिति, अजमेर** ; 16

[1956] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 246 :
**ए. थंगल कुंजु मुसलियार** बनाम **एम. वेंकटचलम**
**पोट्टी** । 17,21

**निर्दिष्ट निर्णय**

[1979] (1979) इलाहाबाद ला जर्नल 401 :
**श्रीमती चन्द्रा रानी और अन्य** बनाम **विक्रम सिंह**
**और अन्य** ; 3

[1959] [1959] 2 एस. सी. आर. 8 :
**दीप चन्द** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 15

[1956] [1956] एस. सी. आर. 393 :
**टीका रामजी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 13,18

[1941] ए. आई. आर. 1941 एफ. सी. 47 :
**ए. एल. एस. पी. पी. एल. सुब्रमण्यम् चेट्टियार** ;
बनाम **मुतुस्वामी गौंडन** ; 16

[1926] [1926] 37 सी. एल. आर. 466 :
**क्लाइड इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **कोबर्न** । 18

**अपीली (सिविल) अधिकारिता** : **2005 की सिविल अपील सं. 6660, 6661, 6662, 6663, 6664, 6665, 6666, 6667, 6668, 6669, 6670, 6671. 6672, 6673, 6674, 6675, 6676, 6677, 6678, 6679, 6680, 6681, 2008 की सिविल अपील सं. 7204, 7329, 7330, 7333, 7334, 2009 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 25822 और 25823, 2005 की सिविल अपील सं. 7008, 7009, 7010, 7011, 7012, 7013, 7014, 7164, 7165, 7166, 7167, 7537, 7538, 2006 की सिविल अपील सं. 494, 495, 5031, 2008 की सिविल अपील सं. 7332, 7572 और 2006 की सिविल अपील सं. 5032.**

2004 की रिट अपील सं. 551 में एर्नाकुलम स्थित केरल उच्च न्यायालय के तारीख 31 मई, 2005 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

**उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से** सर्वश्री के. के. वेणुगोपाल, टी. आर. अंध्यारुजिना, वी. गिरी, चन्दर उदय सिंह, मथई एम. पैकेडे, वी. शेखर, श्याम दीवान, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) लिज़ मैथ्यु, अंकुर तलवार, श्याम मोहन, अश्वथी बलराज, रोहित भट्ट्, सलमान हाशमी (पी. वी. दिनेश की ओर से), रोमी चाको, सत्य मित्रा, धवल मेहरोत्रा, ए. रघुनाथ, के. एस. भरथान, मोहम्मद सिद्दकी, परमेश्वरन्, सी. मुकुंद, अशोक

कुमार जैन, पंकज जैन, पी. वी. श्रवणराजा, विजय कुमार जैन, पी. आई. जोज़, अनुपम मिश्रा, जेम्स पी. थॉमस, रोब्सन पॉल, शिशिर पिनाकी, संजय जैन, ए. रघुनाथ रजीथ, डेविस, अट्टथारा, विजेन्द्र कुमार, शेख चन्द साहिब, हरीकुमार जी, ए. वेन्यागम बालन, कोशी जैकब, तारा चन्द्र शर्मा, एस. डब्ल्यू. ए. कादरी, (सुश्री) सुनीता शर्मा, ज़ैद अली, अभिज्ञ, जतिन राजपूत, (सुश्री) दीपाक्षी जैन, विशाल सक्सेना, (सुश्री) श्वेता चौधरी, बी. के. प्रसाद, (सुश्री) सुषमा सूरी, निर्माण शर्मा, साजिथ पी. वारियर और आर. चन्द्रचूड़

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति एस. एच. कपाड़िया ने दिया ।

**मु. न्या. कपाड़िया** – इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की निर्देश न्यायपीठ ने केरल राज्य बनाम मैसर्स मार अप्परिम कुरी कंपनी लिमिटेड वाले मामले में 2005 की सिविल अपील सं. 6660 में तारीख 18 फरवरी, 2009 के आदेश द्वारा **पंडित ऋषिकेश और एक अन्य** बनाम **सलमा बेगम (श्रीमती)**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अपनाए गए मत की शुद्धता पर संदेह किया था । तदनुसार, यह मामला संविधान के अनुच्छेद 254(1) के अधीन सांविधानिक महत्व के निम्नलिखित प्रमुख विवाद्यकों पर निश्चितता के साथ विनिश्चय करने के लिए प्रस्तुत किया गया है ।

**निर्देश की परिधि – विरोध कब उद्भूत होता है ?**

2. प्रस्तुत मामले में, जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है वह यह है – क्या केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) बनाए जाने पर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 (1975 का 23) केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) (अर्थात् तारीख 19 अगस्त, 1982 को, जब राष्ट्रपति ने उसे अपनी अनुमति दी) विरुद्ध हो गया था या क्या केरल

---

[1] (1995) 4 एस. सी. सी. 718.

चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 (1975 का 23) तब केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) के विरुद्ध हो जाएगा जैसे ही केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) की धारा 1(3) के अधीन केन्द्रीय अधिनियम को केरल राज्य में प्रवृत्त करने संबंधी अधिसूचना जारी कर दी जाती है ।

3. **श्रीमती चन्द्रा रानी और अन्य** बनाम **विक्रम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के समक्ष निम्नलिखित परिस्थितियों में प्रश्न उद्भूत हुआ – उत्तर प्रदेश सिविल विधि (सुधार और संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 57), जो कि एक राज्य अधिनियम है, तारीख 13 दिसम्बर, 1976 को अधिनियमित हो गया; उसे राष्ट्रपति की अनुमति तारीख 30 दिसम्बर, 1976 को प्राप्त हुई; यह राजपत्र में तारीख 31 दिसम्बर, 1976 को प्रकाशित हुआ और तारीख 1 जनवरी, 1977 को प्रवर्तन में लाया गया जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 104), जो कि एक केन्द्रीय अधिनियम है, तारीख 9 सितम्बर, 1976 को अधिनियमित किया गया था; उसे राष्ट्रपति की अनुमति उसी दिन प्राप्त हो गई थी; यह तारीख 10 सितम्बर, 1976 को केन्द्रीय राजपत्र में प्रकाशित कराया गया था; और तारीख 1 फरवरी, 1977 को (अर्थात्, राज्य अधिनियम के प्रवर्तन में आने के पश्चात्) प्रवर्तन में लाया गया था । इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने **चन्द्रा रानी** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि 1976 का उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 57, 1976 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 104 के बाद वाला अधिनियम था । उक्त दो अधिनियमितियों की दशा में महत्वपूर्ण तारीख वे तारीखें होंगी जब उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई थी, जो कि केन्द्रीय अधिनियम की दशा में 9 सितम्बर, 1976 थी जबकि उत्तर प्रदेश अधिनियम की दशा में 30 दिसम्बर, 1976 थी । **चन्द्रा रानी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ का यह विनिश्चय इस न्यायालय के समक्ष **पंडित ऋषिकेश** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचारार्थ आया ।

4. **पंडित ऋषिकेश** (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि संबधी कथन निम्न प्रकार था : –

> "17. ..... संसद् द्वारा पारित विधि को जैसे ही राष्ट्रपति द्वारा

---

[1] (1979) इलाहाबाद ला जर्नल 401.

अनुमति प्रदान कर दी जाती है, वह विधि बन जाती है । अधिनियम का प्रारंभ होना स्वयं अधिनियम में अभिव्यक्त किया जा सकता है, अर्थात्, उस क्षण से जैसे ही उसे राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान कर दी जाती है और वह राजपत्र में प्रकाशित कर दिया जाता है वह प्रवर्तन में आ जाता है । कार्यपालिका या प्रत्यायोजित विधान को जब तक कि अन्यथा उपबंधित न हो, अधिनियम को किसी विशेष समय पर प्रवर्तन में लाने की शक्ति देकर, इसका प्रवर्तन मुल्तवी किया जा सकता है । केन्द्रीय अधिनियम उस तारीख को प्रवर्तन में आया जिसको उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई और वह राजपत्र में प्रकाशित किया गया और उसके प्रारंभ के ठीक पहले वाले दिन के अवसान पर वह प्रवृत्त हो गया । अतः, केन्द्रीय अधिनियम उस दिन की अर्धरात्रि से, जिसको वह भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया था, प्रवृत्त हो गया । स्वीकृततः, केन्द्रीय अधिनियम को राष्ट्रपति की अनुमति तारीख 9 सितम्बर, 1976 को प्राप्त हो गई थी और वह 10 सितम्बर, 1976 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित हो गया था । यह तब स्पष्ट हो जाएगा जब हम अनुच्छेद 107 से अनुच्छेद 109 में प्रकल्पित विधायी प्रक्रिया का और अनुच्छेद 111 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति का परिशीलन करते हैं जिसमें यह कहा गया है कि जब कोई विधेयक संसद् के सदनों द्वारा पारित कर दिया गया है तब वह राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा और राष्ट्रपति विधेयक को या अपनी अनुमति देगा या अनुमति रोक लेगा । इस मामले के प्रयोजन के लिए इसका परन्तुक तात्विक नहीं है । जब राष्ट्रपति अपनी अनुमति दे देता है तब वह विधि बन जाता है और जब इसे राजपत्र में प्रकाशित करा दिया जाता है तब यह प्रभावी हो जाता है । इस प्रकार विधि बनाना संविधान के अनुच्छेद 107 से 109 में विहित पूर्ण प्रक्रिया है । इसी प्रकार राज्य विधान-मंडल की प्रक्रिया है । अनुच्छेद 254 के खंड (1) और (2) के प्रवर्तन द्वारा समवर्ती विषय पर विधि की असंगति या परस्पर-विरोध संसद् और विधान-मंडल द्वारा बनाए गए अपने-अपने अधिनियमों के प्रारंभ होने पर निर्भर नहीं करता है । अतः, अधिनियम के प्रारंभ होने और उसके पश्चात् उसके प्रवर्तन में असंगति पर जोर देना तब सुसंगत नहीं रह जाता जब उसकी शून्यता अनुच्छेद 254(1) के आधार पर विनिश्चित की जानी होती है । इसके अलावा, विधि बनाने संबंधी विधायी कार्य को जिसमें मूल्यवान लोक समय और विशाल व्यय अंतर्वलित होता है, अधिनियम का प्रारंभ होना

अधिसूचित करने संबंधी कार्यपालिका की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं होने दिया जाएगा । असंगति या विरोध तब प्रकट होगा जब तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उनके प्रवर्तन के प्रभाव को स्पष्ट कर दिया जाता है ।"

5. **पंडित ऋषिकेश** (उपर्युक्त) वाले मामले में विधि के उपरोक्त कथन से निर्देश करने वाले न्यायाधीशों के मन में संदेह उत्पन्न हो गया और तदनुसार विधि संबंधी उक्त कथन इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष उसके आधिकारिक विनिश्चय के लिए आया है ।

**प्रस्तुत मामले के तथ्य**

6. प्रस्तुत मामले में मुकदमेबाजी निम्नलिखित परिस्थितियों में उद्भूत हुई । अनेक प्राइवेट चिट्टी फर्में स्वयं को केरल राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत कराकर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 में विहित विनियामक प्रणाली से बाहर हो गईं किन्तु वे केरल राज्य में कार्य करती रहीं । इस कारण निवेशकों का संरक्षण करना कठिन हो गया । परिणामस्वरूप, 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा 1975 के अधिनियम की धारा 4 में संशोधन किया गया था । उक्त संशोधन द्वारा धारा 4 में उपधारा (1क) अंतःस्थापित की गई थी । इस संशोधन का आशय राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत उन चिट्टियों को, जिनके 20 प्रतिशत या उसके अधिक अभिदाता सामान्य रूप से राज्य में निवास करते हैं, 1975 के उक्त अधिनियम की परिधि के भीतर लाना था । प्राइवेट चिट्टी फर्मों ने उक्त संशोधन से व्यथित होकर 1975 के अधिनियम की धारा 4(1क) की शक्तिमत्ता को अनुच्छेद 254(1) के अधीन केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के विरुद्ध होने के आधार पर चुनौती दी ।

**वे प्रश्न जिनका उत्तर दिया जाना है**

7. (i) क्या विधि का बनाना या उसका प्रारंभ होना संविधान के अनुच्छेद 254(1) में यथा-परिकल्पित विरोध या असंगति पैदा करता है ?

(ii) किसी निरसन का विधि की दृष्टि से प्रभाव ।

**केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तथा केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के उपबंधों में असंगतियां**

8. खंड न्यायपीठ के आक्षेपित निर्णय द्वारा प्राइवेट चिट्टी फर्मों की ओर से दी गई इस दलील को स्वीकार कर लिया गया है कि दोनों

अधिनियमों के उपबंधों के बीच असंगतियां हैं (आक्षेपित निर्णय का पैरा 13, 14 और 15 देखिए) । तथापि, एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 1(3) के अधीन ऐसी अधिसूचना के अभाव में, जिसके द्वारा 1982 का उक्त अधिनियम राज्य में प्रवृत्त किया गया था और 1982 के उक्त अधिनियम की धारा 89 के अधीन नियम विरचित किए जाने के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, 1982 के उक्त अधिनियम के, जो कि एक केन्द्रीय अधिनियम है, अधिनियमित हो जाने पर निरसित हो गया था ; जबकि खंड न्यायपीठ ने 1975 के अधिनियम की धारा 4(1क) को राज्यक्षेत्रातीत और परिणामस्वरूप असांविधानिक घोषित किया, अतः, केरल राज्य ने इस न्यायालय में अपील फाइल की ।

9. आक्षेपित निर्णय में उपदर्शित कुछ परस्पर-विरोधी उपबंधों को स्पष्ट करने की दृष्टि से उन्हें इसमें इसके नीचे उपवर्णित किया जाता है :–

| केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975<br>(राज्य अधिनियम) | चिट फंड अधिनियम, 1982<br>(केन्द्रीय अधिनियम) |
|---|---|
| धारा 1 – संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ<br><br>(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम केरल चिट्टीज़ ऐक्ट (केरल चिट्टी अधिनियम), 1975 है ।<br><br>(2) इसका विस्तार संपूर्ण केरल राज्य पर है ।<br><br>(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे । | धारा 1 – संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ<br><br>(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम चिट फंड अधिनियम, 1982 है ।<br><br>(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।<br><br>(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी । |
| धारा 2 – परिभाषाएं<br><br>इस अधिनियम में, जब तक कि | धारा 2 – परिभाषाएं<br><br>इस अधिनियम में, जब तक कि |

| | |
|---|---|
| संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –<br><br>(4) "बट्टा" से ऐसी धनराशि या अनाज या अन्य वस्तु की मात्रा अभिप्रेत है जो इनाम विजेता को वरियोला के निबंधनों के अधीन वीठापलीसा, प्रधान के कमीशन या ऐसे अन्य व्यय के लिए, जैसा कि विहित किया जाए, छोड़नी पड़ती है ; | संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –<br><br>(छ) "बट्टा" से ऐसी धनराशि या अनाज की मात्रा अभिप्रेत है जो इनामी अभिदाता को चिट करार के निबंधनों के अधीन छोड़नी पड़ती है और जो उक्त करार के अधीन चिट चलाने के व्यय को पूरा करने के लिए या अभिदाताओं के बीच वितरण के लिए या दोनों के लिए अलग रखी जाती है; |
| धारा 3 – इस अधिनियम के अधीन मंजूर या रजिस्ट्रीकृत न की गई चिट्टी का प्रतिषेध<br><br>(1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् कोई चिट्टी तब तक आरंभ नहीं की जाएगी और उसका संचालन नहीं किया जाएगा जब तक सरकार या ऐसे अधिकारी की, जो सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किया जाए, इसके लिए पूर्व मंजूरी प्राप्त नहीं कर ली जाती है और जब तक चिट्टी इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार रजिस्ट्रीकृत नहीं करा ली जाती है :<br><br>परन्तु इस उपधारा के अधीन पूर्व मंजूरी व्यपगत हो जाएगी जब तक चिट्टी ऐसी मंजूरी की तारीख से छह मास के अवसान से पूर्व रजिस्ट्रीकृत नहीं करा ली जाती है : | धारा 4 – अधिनियम के अधीन मंजूर या रजिस्ट्रीकृत न की गई चिटों का प्रतिषेध<br><br>(1) कोई चिट उस राज्य सरकार की, जिसकी अधिकारिता के भीतर चिट प्रारंभ की जानी है या उसका संचालन किया जाना है अथवा ऐसे अधिकारी की जो उस सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त किया जाए, पूर्व मंजूरी प्राप्त किए बिना और जब तक कि चिट उस राज्य में इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, रजिस्ट्रीकृत नहीं करा ली जाती है, प्रारंभ नहीं की जाएगी या उसका संचालन नहीं किया जाएगा :<br><br>परन्तु इस उपधारा के अधीन प्राप्त मंजूरी व्यपगत हो जाएगी यदि ऐसी मंजूरी की तारीख से छह मास के भीतर या ऐसी अतिरिक्त अवधि या अवधियों के भीतर, जो कुल मिलाकर छह मास से अधिक |

| | |
|---|---|
| परन्तु यह और कि –<br>(i) केरल सरकार के स्वामित्वाधीन किसी कंपनी ; या<br>(ii) तत्समय प्रवृत्त सहकारी सोसायटी अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत या रजिस्ट्रीकृत समझी जाने वाली किसी सहकारी सोसायटी ; या<br>(iii) भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 में यथा-परिभाषित किसी अनुसूचित बैंक ; या<br>(iv) बैंककारी कंपनी (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अधिनियम, 1970 (1970 का केन्द्रीय अधिनियम सं. 5) के अधीन गठित किसी तत्स्थानी नए बैंक<br>द्वारा कोई चिट्टी आरंभ करने और उसका संचालन करने के लिए ऐसी पूर्व मंजूरी आवश्यक नहीं होगी । | नहीं होगी, जैसी राज्य सरकार इस निमित्त उसे आवेदन किए जाने पर अनुज्ञात करे, चिट रजिस्ट्रीकृत नहीं करा ली जाती है । |
| धारा 4 – कतिपय दशाओं के सिवाय अभिदाय के लिए मांग किए जाने पर प्रतिषेध<br>(1) जहां चिट्टी आरंभ करने और उसका संचालन करने के लिए धारा 3 द्वारा पूर्व मंजूरी अपेक्षित है वहां कोई व्यक्ति जनता से ऐसी किसी चिट्टी में टिकटों के लिए अभिदाय करने की मांग करने वाली कोई सूचना, परिपत्र, | |

| | |
|---|---|
| विवरण-पुस्तिका, प्रस्ताव या अन्य दस्तावेज़ तब तक जारी या प्रकाशित नहीं करेगा जब तक कि ऐसी सूचना, परिपत्र, विवरण-पुस्तिका, प्रस्ताव या अन्य दस्तावेज़ में यह कथन कि धारा 3 द्वारा अपेक्षित पूर्व मंजूरी प्राप्त कर ली गई है और ऐसी मंजूरी की विशिष्टियां न हों ।<br><br>(1क) * जहां कोई चिट्टी राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत है और उसके बीस प्रतिशत या उससे अधिक अभिदाता ऐसे व्यक्ति हैं जो सामान्य रूप से राज्य में निवास करते हैं वहां चिट्टी का प्रधान राज्य में एक शाखा खोलेगा और इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन मंजूरी और रजिस्ट्रीकरण प्राप्त करेगा ।<br><br>(*) **2002 के वित्त अधिनियम द्वारा यथा-संशोधित**<br><br>(2) जो कोई उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन करता है, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो तीन सौ रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा । | |
| धारा 15 – प्रधान द्वारा दी जाने वाली प्रतिभूति<br><br>(1) प्रत्येक प्रधान, चिट्टी के | धारा 20 – प्रधान द्वारा दी जाने वाली प्रतिभूति<br><br>(1) चिट के उचित संचालन के लिए प्रत्येक प्रधान, धारा 4 के |

| | |
|---|---|
| प्रथम ड्रा से पूर्व, –<br><br>(क) चिट्टी के उचित संचालन के लिए, चिट्टी की रकम से दोगुनी रकम की वसूली के लिए रजिस्ट्रार के समाधानप्रद रूप में पर्याप्त स्थावर संपत्ति प्रभारित करते हुए, अन्य अभिदाताओं के पक्ष में या उनके न्यास में एक बंधपत्र निष्पादित करेगा ; या<br><br>(ख) चिट्टी की रकम के बराबर रकम किसी अनुमोदित बैंक में जमा करेगा या चिट्टी की रकम के कम से कम डेढ़ गुना अंकित मूल्य वाली सरकारी प्रतिभूतियों में विनिधान करेगा और इस प्रकार जमा की गई रकम या सरकारी प्रतिभूतियां रजिस्ट्रार को उसके द्वारा चिट्टी के सम्यक् संचालन के लिए प्रतिभूति के रूप में न्यास में धारण किए जाने के लिए अंतरित करेगा ।<br><br>(2) यदि कोई प्रधान उपधारा (1) की अपेक्षाओं का अनुपालन करने में व्यतिक्रम करता है तो वह जुर्माने से, जो पांच सौ रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।<br><br>(3) प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति या उपधारा (6) के अधीन प्रतिस्थापित कोई प्रतिभूति किसी डिक्री के निष्पादन में कुर्की के लिए या अन्यथा तब तक दायी नहीं होगी जब तक चिट | अधीन पूर्व मंजूरी के लिए आवेदन करने के पूर्व, –<br><br>(क) रजिस्ट्रार के नाम पर, –<br><br>(i) चिट रकम के पचास प्रतिशत के बराबर की रकम नकद रूप में किसी अनुमोदित बैंक में जमा करेगा ; और<br><br>(ii) चिट रकम के पचास प्रतिशत के बराबर की रकम किसी अनुमोदित बैंक से बैंक प्रत्याभूति के रूप में जमा करेगा; या<br><br>(ख) चिट रकम के कम से कम डेढ़ गुना अंकित मूल्य या बाजार मूल्य की (जो भी कम हो) सरकारी प्रतिभूति का रजिस्ट्रार के पक्ष में अंतरण करेगा; या<br><br>(ग) ऐसी अन्य प्रतिभूतियों का, जो ऐसी प्रतिभूतियां हों जिनमें भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 20 के अधीन कोई न्यासी विनिधान करे और जो ऐसे मूल्य की हो जो राज्य सरकार द्वारा समयसमय पर विहित किया जाए, रजिस्ट्रार के पक्ष में अंतरण करेगा :<br><br>परन्तु खंड (ग) में निर्दिष्ट प्रतिभूतियों का मूल्य, किसी भी दशा में, चिट की रकम के मूल्य के डेढ़ गुने से कम नहीं होगा ।<br><br>(2) जहां कोई प्रधान एक से अधिक चिटों का संचालन करता |

| | |
|---|---|
| समाप्त नहीं हो जाती है और सभी अभिदाताओं के दावों की पूर्ण रूप से तुष्टि नहीं हो जाती है । | है, वहां वह प्रत्येक चिट के संबंध में उपधारा (1) के उपबंधों के अनुसार प्रतिभूति देगा । |
| (4) रजिस्ट्रार, किसी चिट्टी के समाप्त हो जाने के पश्चात् और अपना यह समाधान कर लेने के पश्चात् कि सभी अभिदाताओं के दावों की पूर्ण रूप से तुष्टि हो गई है, यथास्थिति, प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति या उपधारा (6) के अधीन प्रतिस्थापित प्रतिभूति की निर्मुक्ति का आदेश करेगा और ऐसा करते समय, वह ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण करेगा, जो विहित की जाए । | (3) रजिस्ट्रार, चिट के चालू रहने के दौरान किसी भी समय प्रतिभूति के प्रतिस्थापन की अनुज्ञा दे सकेगा :<br><br>परन्तु प्रतिस्थापित प्रतिभूति का अंकित मूल्य या बाजार मूल्य (जो भी कम हो) प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति के मूल्य से कम नहीं होगा । |
| (5) उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति उपधारा (6) के उपबंधों के अधीन रहते हुए चिट्टी के चालू रहने के दौरान अविकल रखी जाएगी और प्रधान उसके संबंध में ऐसा कोई कार्य नहीं करेगा जिसकी गणना प्रतिभूति के स्वरूप या उसके मूल्य का तात्विक रूप से ह्रास करने के रूप में की जाती है । | (4) प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति या उपधारा (3) के अधीन प्रतिस्थापित कोई प्रतिभूति किसी डिक्री के निष्पादन में कुर्की के लिए या अन्यथा तब तक दायी नहीं होगी जब तक चिट समाप्त नहीं हो जाती है और सभी अभिदाताओं के दावों की पूर्ण रूप से तुष्टि नहीं हो जाती है । |
| (6) रजिस्ट्रार –<br><br>(क) चिट्टी के चालू रहने के दौरान किसी भी समय प्रतिभूति के प्रतिस्थापन की अनुज्ञा दे सकेगा :<br><br>परन्तु ऐसी प्रतिस्थापित प्रतिभूति प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति से कम नहीं | (5) जहां चिट समाप्त हो जाती है और स्वयं रजिस्ट्रार का समाधान हो जाता है कि सभी अभिदाताओं के दावे पूर्णतः तुष्ट हो गए हैं वहां वह, यथास्थिति, प्रधान द्वारा उपधारा (1) के अधीन दी गई प्रतिभूति या उपधारा (3) के अधीन प्रतिस्थापित प्रतिभूति की निर्मुक्ति का आदेश करेगा और ऐसा करते समय, वह ऐसी प्रक्रिया का |

| | |
|---|---|
| होगी ; या<br>(ख) चिट्टी के समाप्त होने पर, प्रतिभूति के एक भाग की निर्मुक्ति करेगा :<br>परन्तु उस भाग की निर्मुक्ति के पश्चात् बची प्रतिभूति सभी अभिदाताओं के बकाया दावों की तुष्टि करने के लिए पर्याप्त है । | अनुसरण करेगा जो विहित की जाए ।<br>(6) उस समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन दी गई प्रतिभूति के संबंध में उस चिट के चालू रहने के दौरान, जिससे वह संबंधित है, प्रधान द्वारा कार्यवाही नहीं की जाएगी और उसके संबंध में अंतरण या अन्य विल्लंगम के तौर पर प्रधान द्वारा की गई कोई कार्यवाही अकृत और शून्य होगी ।" |

10. आक्षेपित निर्णय द्वारा इसमें इसके ऊपर उल्लिखित परस्पर-विरोधी उपबंधों के अतिरिक्त राज्य अधिनियम और केन्द्रीय अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के बीच निम्नलिखित निबंधनों में विभिन्न असंगतियां प्रस्तुत की गई हैं :–

> "13. जब हम दोनों विधानों के विभिन्न उपबंधों का परिशीलन करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उन विधानों के कुछ उपबंधों के बीच विरोध है । चिट फंड अधिनियम की धारा 2(छ) में "बट्टा" अभिव्यक्ति केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 2 की उपधारा (4) की तुलना में भिन्न परिभाषा देती है । इसी प्रकार, चिट फंड अधिनियम की धारा 4(1) भी चिटों के रजिस्ट्रीकरण, प्रारंभ और चिट कारबार के संचालन के संबंध में है । केरल चिट्टीज़ ऐक्ट की धारा 3(1) के उपबंध भी संदर्भ की दृष्टि से भिन्न हैं । केन्द्रीय अधिनियम की धारा 6(3) में यह कहा गया है कि उपधारा (1) के खंड (च) में निर्दिष्ट बट्टे की रकम चिट की रकम के तीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी । चिट फंड अधिनियम की धारा 7(3) के अनुसार किसी चिट का रजिस्ट्रीकरण व्यपगत हो जाएगा यदि प्रधान द्वारा धारा 9 की उपधारा (1) के अधीन घोषणा ऐसे पृष्ठांकन की तारीख से तीन मास के भीतर या कुल मिलाकर तीन मास से अनधिक ऐसी अतिरिक्त अवधि या अवधियों के भीतर, जो रजिस्ट्रार अपने को इस निमित्त

आवेदन किए जाने पर अनुज्ञात करे, फाइल नहीं की जाती है । चिट फंड अधिनियम की धारा 8 कंपनी द्वारा चिट प्रारंभ आदि करने और आरक्षित निधि का सृजन करने के लिए न्यूनतम पूंजी की अपेक्षाओं के संबंध में है और केरल चिट्टीज़ ऐक्ट में ऐसा कोई तदनुरूपी उपबंध नहीं है ।

14. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि जब अधिनियम की धारा 20 के अधीन प्रतिभूति देने संबंधी अपेक्षा पूरी कर दी जाती है तब केरल में प्राधिकारियों के लिए उसकी चिट्टी के लिए मात्र इस कारण एक अन्य प्रतिभूति पर जोर देना मनमाना होगा कि 20 प्रतिशत या उससे अधिक अभिदाता राज्य में निवास कर रहे हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इसके आगे यह अभिनिर्धारित किया कि केरल में रजिस्ट्रार प्रधान द्वारा केन्द्रीय अधिनियम की धारा 20 के अधीन किसी अन्य राज्य में कराए गए रजिस्ट्रीकरण और दी गई प्रतिभूति के ब्यौरे मंगाने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र है और उस राज्य में के रजिस्ट्रार से पुष्टि करने के पश्चात् वह उसे लेखबद्ध करेगा और उसी प्रधान से उसी चिट्टी के लिए केरल अधिनियम की धारा 15 के अधीन दी जाने वाली और प्रतिभूति की मांग नहीं करेगा । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि यदि कोई प्रधान केरल से बाहर किसी राज्य में केन्द्रीय अधिनियम के अधीन रजिस्ट्रीकृत है और उसके अभिदाता केरल में हैं तो प्रधान को उसके उस कारबार के संबंध में भी, जो उसका केरल में है, इस बात के होते हुए भी कि केन्द्रीय अधिनियम केरल में अधिसूचित नहीं किया गया है, केन्द्रीय अधिनियम लागू होता है और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह राय व्यक्त की कि ऐसे मामलों में राज्य अधिनियम के उपबंध उस सीमा तक जहां तक वे केन्द्रीय अधिनियम से असंगत हैं, समर्पण कर देंगे । अतः, विद्वान् एकल न्यायाधीश ने स्वयं राज्य अधिनियम और केन्द्रीय अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के बीच असंगतियां पाईं ।

15. चिट फंड अधिनियम और केरल चिट्टीज़ ऐक्ट के विभिन्न उपबंधों की तुलना करने पर हमारे सामने ऐसी अनेक असंगतियां और प्रतिकूल उपबंध आए हैं जो कि एक दूसरे के विरोधी हैं । यह कहना पर्याप्त होगा कि यदि धारा 4 की उपधारा 1(क) को प्रभावी किया जाता है तो ऐसा प्रधान, जिसने केन्द्रीय अधिनियम के अधीन पहले ही

रजिस्ट्रीकरण प्राप्त कर लिया है और जो उस अधिनियम के उपबंधों द्वारा शासित होता है, केरल अधिनियम के ऐसे विभिन्न उपबंधों के अध्यधीन होगा जो कि केन्द्रीय अधिनियम से असंगत और उसके विरुद्ध हैं । अतः, यदि उक्त धारा 4(1क) को प्रभावी किया जाता है तो यह राज्यक्षेत्रातीत प्रवर्तन होगा ।"

**(i) विरोध के अवधारण के लिए समय बिन्दु**

11. मुख्य प्रश्न जो विचारार्थ उद्भूत होता है वह यह है कि राज्य अधिनियम का विरुद्ध होना कब प्रभावी होगा ? क्या 1982 का केन्द्रीय अधिनियम बनाए जाने पर विरोध उद्भूत होगा या वह तब उद्भूत होगा जब केन्द्रीय अधिनियम केरल राज्य में प्रवर्तन में लाया जाता है ?

12. हमारे समक्ष काउन्सेलों द्वारा दी गई अपनी-अपनी दलीलों पर विचार करने से पूर्व हमारे लिए संविधान के अनुच्छेद 245(1), 246(1), (2) और (3), 249(1) और (3), 250(1) और (2), 251 और 254 को उद्धृत करना आवश्यक है, जो कि निम्नलिखित रूप में हैं :–

**"भाग 11**

**संघ और राज्यों के बीच संबंध**

**अध्याय 1 – विधायी संबंध**

विधायी शक्तियों का वितरण

245. **संसद् द्वारा और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों का विस्तार** – (1) इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संसद् भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी और किसी राज्य का विधान-मंडल संपूर्ण राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगा ।

246. **संसद् द्वारा और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों की विषय-वस्तु** – (1) खंड (2) और खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को सातवीं अनुसूची की सूची 1 में (जिसे इस संविधान में 'संघ सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की अनन्य शक्ति है ।

(2) खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को और खंड (1) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मंडल को भी,

सातवीं अनुसूची की सूची 3 में (जिसे इस संविधान में 'समवर्ती सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में विधि बनाने की शक्ति है ।

(3) खंड (1) और खंड (2) के अधीन रहते हुए, किसी राज्य के विधान-मंडल को, सातवीं अनुसूची की सूची 2 में (जिसे इस संविधान में 'राज्य सूची' कहा गया है) प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में उस राज्य या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की अनन्य शक्ति है ।

249. **राज्य सूची में के विषय के संबंध में राष्ट्रीय हित में विधि बनाने की संसद् की शक्ति** – (1) इस अध्याय के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सभा में उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद् राज्य सूची में प्रगणित ऐसे विषय के संबंध में, जो उस संकल्प में विनिर्दिष्ट है, विधि बनाए तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है, संसद् के लिए उस विषय के संबंध में भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधिपूर्ण होगा ।

(2) * * * * *

(3) संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि, जिसे संसद् खंड (1) के अधीन संकल्प के पारित होने के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होती, संकल्प के प्रवृत्त न रहने के पश्चात् छह मास की अवधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के सिवाय प्रभावी नहीं रहेगी जिन्हें उक्त अवधि की समाप्ति से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है ।

250. **यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो तो राज्य सूची में के विषय के संबंध में विधि बनाने की संसद् की शक्ति** – (1) इस अध्याय में किसी बात के होते हुए भी, संसद् को, जब तक आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में है, राज्य सूची में प्रगणित किसी भी विषय के संबंध में भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाने की शक्ति होगी ।

(2) संसद् द्वारा बनाई गई कोई विधि, जिसे संसद् आपात की उद्घोषणा के अभाव में बनाने के लिए सक्षम नहीं होती, उद्घोषणा

के प्रवर्तन में न रहने के पश्चात् छह मास की अवधि की समाप्ति पर अक्षमता की मात्रा तक उन बातों के सिवाय प्रभावी नहीं रहेगी जिन्हें उक्त अवधि की समाप्ति से पहले किया गया है या करने का लोप किया गया है ।

251. **संसद् द्वारा अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 के अधीन बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति** – अनुच्छेद 249 और अनुच्छेद 250 की कोई बात किसी राज्य के विधान-मंडल की ऐसी विधि बनाने की शक्ति को, जिसे इस संविधान के अधीन बनाने की शक्ति उसको है, निर्बंधित नहीं करेगी किंतु यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद् द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे उक्त अनुच्छेदों में से किसी अनुच्छेद के अधीन बनाने की शक्ति संसद् को है, किसी उपबंध के विरुद्ध है तो संसद् द्वारा बनाई गई विधि अभिभावी होगी चाहे वह राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बाद में पारित की गई हो और राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक अप्रवर्तनीय होगी किंतु ऐसा तभी तक होगा जब तक संसद् द्वारा बनाई गई विधि प्रभावी रहती है ।

254. **संसद् द्वारा बनाई गई विधियों और राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों में असंगति** – (1) यदि किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपबंध संसद् द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है, किसी उपबंध के या समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के संबंध में विद्यमान विधि के किसी उपबंध के विरुद्ध है तो खंड (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, यथास्थिति, संसद् द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बाद में पारित की गई हो, या विद्यमान विधि, अभिभावी होगी और उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी ।

(2) जहां राज्य के विधान-मंडल द्वारा समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के संबंध में बनाई गई विधि में कोई ऐसा उपबंध अंतर्विष्ट है जो संसद् द्वारा पहले बनाई गई विधि के या उस विषय के संबंध में किसी विद्यमान विधि के उपबंधों के विरुद्ध है तो यदि

ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर उसकी अनुमति मिल गई है तो वह विधि उस राज्य में अभिभावी होगी :

परंतु इस खंड की कोई बात संसद् को उसी विषय के संबंध में कोई विधि, जिसके अंतर्गत ऐसी विधि है, जो राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, किसी भी समय अधिनियमित करने से निवारित नहीं करेगी ।" (जोर देने के लिए रेखांकित)

**दलीलें**

13. केरल राज्य की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री के. के. वेणुगोपाल और भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री वी. शेखर ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 254 में "बनाई गई" शब्द विधि, अर्थात् संसदीय विधि या राज्य विधि की पहचान करने के लिए ही सुसंगत हैं और उनका विरोध के अवधारण के लिए समय बिन्दु से कोई संबंध नहीं है । विद्वान् काउन्सेलों के अनुसार, इस प्रश्न के संबंध में विनिश्चय कि कोई राज्य अधिनियम किसी केन्द्रीय अधिनियम के विरुद्ध है अथवा नहीं, किसी न्यायालय द्वारा मात्र इस कारण दोनों विधियों को प्रवर्तन में लाए जाने के पश्चात् ही किया जा सकता है कि किसी न्यायालय द्वारा दो विधियों के बीच विरोध का अवधारण करने का उद्देश्य ही यह विनिश्चित और घोषित करना है कि दोनों विधियों में से किस विधि का पालन किया जाना है या अनुच्छेद 254 की भाषा में कहे तो दोनों विधियों में से कौनसी विधि "अभिभावी होगी"। अतः, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, अनुच्छेद 254 के पाठ से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी न्यायालय द्वारा विरोध की घोषणा किए जाने से यह पूर्वकल्पित है कि दोनों विधियां वास्तव में प्रवर्तन में हैं । यह कि यद्यपि अनुच्छेद 254(2) में प्रयुक्त पद "किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि" है, तथापि, वह वास्तव में ऐसे प्रक्रम के प्रति निर्देश करता है जब कि विधि अब भी विधान-मंडल द्वारा पारित एक विधेयक होता है जिसे अनुच्छेद 200 के अधीन राज्यपाल को उसकी अनुमति के लिए दिया जाता है । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, "बनाई गई विधि" वाक्यांश के अंतर्गत ऐसी विधि भी आएगी जो कि प्रवर्तन में लाई जाती है । इस संबंध में, यह दलील दी गई थी कि यदि किसी न्यायालय के समक्ष किसी राज्य विधि को ऐसी संसदीय

विधि के विरुद्ध होने के आधार पर, जिसे प्रवृत्त नहीं किया गया है, शून्य घोषित करने के लिए याचिका फाइल की जाती है तो न्यायालय उस याचिका को समयपूर्व मानकर खारिज कर देगा क्योंकि विरोध तब उद्भूत नहीं हो सकता है जब संसदीय विधि को प्रवृत्त ही नहीं किया गया है । इस संबंध में, विद्वान् काउन्सेल ने **टीका रामजी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया जिसमें इस आशय की एक मताभिव्यक्ति की गई थी कि विरोध वस्तुतः विद्यमान होना चाहिए न कि मात्र संभावना पर आधारित होना चाहिए । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, प्राइवेट चिट फर्मों की ओर से दी गई इस दलील में कोई सार नहीं है कि संसद् द्वारा सूची 3 में के किसी विषय से संबंधित किसी विधि के मात्र अधिनियमन से उस विषय पर सभी राज्य अधिनियमितियां तुरंत विरुद्ध मानते हुए शून्य हो जाती हैं । इसके अलावा, विद्वान् काउन्सेल ने अनुच्छेद 254 (1) में "विरोध की सीमा तक" शब्दों पर जोर दिया । उसने यह दलील दी कि उक्त शब्दों का एक अर्थ दिया जाना है । विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि उक्त शब्दों से यह उपदर्शित होता है कि अनुच्छेद 254(1) के अधीन संपूर्ण राज्य अधिनियम किसी केन्द्रीय अधिनियम के मात्र अधिनियमन द्वारा शून्य नहीं बन जाता है । इस संबंध में, यह दलील दी गई थी कि अनुच्छेद 254(1) में प्रयुक्त "यदि किसी विधि का कोई उपबंध" शब्द और "विरोध की सीमा तक" शब्द ऐसे निवर्चन का विरोध करते हैं कि संपूर्ण राज्य अधिनियम संसद् द्वारा उसी विषय पर किसी विधि के मात्र अधिनियमन के कारण प्रतिकूल मानकर शून्य बनाया जाता है । अंततः, विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि अनुच्छेद 254 का सप्रयोजन निर्वचन अवश्य ही अंगीकार किया जाना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप विधायी शून्यता उत्पन्न नहीं होती है । इस संबंध में, विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि राज्य विधि केरल राजपत्र सं. 480 में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा तारीख 25 अगस्त, 1975 को प्रवृत्त हुई जबकि चिट फंड अधिनियम, 1982 तारीख 19 अगस्त, 1982 को प्रवृत्त हुआ । उस अधिनियम की धारा 1(3) के अधीन, केन्द्रीय सरकार को उक्त अधिनियम ऐसी तारीख को, जो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे, प्रवृत्त करने की शक्ति दी गई है और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकती हैं । आजतक उक्त 1982 के अधिनियम का विस्तार केरल राज्य तक नहीं किया गया है । विद्वान्

---

[1] [1956] एस. सी. आर. 393.

काउन्सेल के अनुसार, यदि किसी को प्राइवेट चिट फर्मों की ओर से दी गई इस दलील को स्वीकार किया जाना था कि "जब संविधान के अनुच्छेद 254 में यथा-परिकल्पित कोई केन्द्रीय विधि बनाई जाती है तो सभी प्रतिकूल राज्य विधियां 1982 के अधिनियम की धारा 1(3) के अधीन किसी अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय अधिनियम को प्रवर्तन में लाए बिना भी तुरंत विवक्षित रूप से निरसित हो जाएगी" तो उस दशा में पूर्ण विधायी शून्यता उत्पन्न हो जाएगी विशेषकर तब जब कि केरल राज्य में तारीख 19 अगस्त, 1982 से उस तारीख तक और अधिसूचना की तारीख तक, जो कि धारा 1(3) के अधीन आजतक जारी नहीं की गई है, संव्यवहार हो चुके हैं । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, अधिनियम की धारा 1(3), 4, 89 और 90 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए और राज्य सरकार द्वारा धारा 89 के निबंधनानुसार नियम विरचित न किए जाने के आधार पर केन्द्रीय विधि का बनाया जाना विरोध अवधारित करने की कसौटी नहीं हो सकता है ।

14. प्राइवेट चिट्टी फर्मों की ओर से श्री टी. आर. अंध्यारुजिना, श्री श्याम दीवान, श्री मथई एम. पैकेडे और श्री सी. यू. सिंह द्वारा यह दलील दी गई थी कि अनुच्छेद 254(1) के अधीन विरोध पर विचार करते समय केन्द्रीय अधिनियम का प्रवर्तन में लाया जाना या प्रारंभ किया जाना असंगत था और विरोध तब उद्भूत हो गया था जब राज्य विधि का केन्द्रीय विधि के अधिनियमन से विरोध हुआ था, भले ही केन्द्रीय विधि केरल राज्य में प्रवर्तन में नहीं लाई गई थी । अनुच्छेद 254(1) के अधीन राज्य विधि की संसद् द्वारा बनाई गई विधि से प्रतिकूलता पर, बनाई गई विधि के प्रति निर्देश से विचार किया जाना चाहिए । "बनाई गई विधि" शब्द विधि के अधिनियमन के प्रति निर्देश करते हैं । इस संबंध में, यह इंगित किया गया था कि अनुच्छेद 254 में "बनाई गई विधि" शब्दों का प्रयोग सात स्थानों पर किया गया है किन्तु उसमें किसी विधि के प्रारंभ होने का कोई उल्लेख नहीं है । इस प्रकार, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, विरोध तब उद्भूत हो गया था जब केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई थी और वह राजपत्र में प्रकाशित किया गया था न कि उसके प्रारंभ से, जो कि आज तक केरल राज्य में नहीं हुआ है । परिणामस्वरूप, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट तारीख 19 अगस्त, 1982 को तब शून्य हो गया था जब केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने के पश्चात् बनाया गया था । इस प्रश्न के संबंध में कि क्या केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के प्रतिकूल है और क्या

2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा अंतःस्थापित धारा 4(1क) शून्य थी, विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी कि केन्द्रीय अधिनियम, 1982 का उद्देश्य समवर्ती सूची की प्रविष्टि 7 में की संविदाओं के संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना था; यह कि दोनों विधान समवर्ती सूची की प्रविष्टि 7 के अधीन बनाए गए हैं और इसलिए ऐसी स्थिति में केन्द्रीय अधिनियम, 1982 के अधिनियमन के समय विद्यमान राज्य विधान के बीच विरोध होगा । इन कसौटियों को लागू करते हुए यह दलील दी गई थी कि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर अनुच्छेद 254(1) के अधीन शून्य हो गया था । यह कि उक्त प्रतिकूलता के परिणामस्वरूप, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को अनुच्छेद 254(1) के अधीन शून्य हो गया था और केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 विवक्षित रूप से निरसित हो गया था । तथापि, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के पूर्व प्रवर्तन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है न ही केरल चिट्टीज़ ऐक्ट के अधीन अर्जित किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर संविधान के अनुच्छेद 367 के कारण कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । अनुच्छेद 367 के आधार पर, साधारण खंड अधिनियम, 1897 उक्त निरसन को लागू होगा । इस प्रकार, तारीख 19 अगस्त, 1982 के पश्चात् केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के सीमित प्रयोजनों के सिवाय निरसित हो गया था । प्राइवेट चिट्टियों की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 को किसी राज्य में प्रवर्तन में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार को धारा 1(3) के अधीन राजपत्र में अधिसूचना जारी करनी होती है । ऐसा अनेक राज्यों के लिए किया गया है किन्तु केरल, गुजरात आदि राज्यों के लिए नहीं किया गया है । यह कि, जब तक ऐसी अधिसूचना जारी नहीं कर दी जाती, तब तक न तो केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 क्योंकि वह शून्य हो गया है और अनुच्छेद 254(1) के अधीन निरसित हो गया है और न ही केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 केरल राज्य में अभिभावी रहता है क्योंकि इसे अधिसूचित नहीं किया गया है । इस प्रकार, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, जैसे ही केन्द्रीय सरकार धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना जारी करके चिट फंड अधिनियम, 1982 को केरल राज्य में प्रवर्तन में लाती है, तभी 1982 के अधिनियम की धारा 90(2) प्रभावी हो जाएगी और इसके द्वारा केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केवल उन चिटों को जो केन्द्रीय अधिनियम, 1982 के प्रारंभ की तारीख को केरल राज्य में प्रवर्तन में हैं उसी रीति में लागू

बना रहेगा जैसे कि ऐसी चिटों को ऐसे अधिनियमन से पूर्व केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 लागू होता था । तथापि, चूंकि केरल ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर निरसित हो गया था, इसलिए 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा केरल अधिनियम, 1975 में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता था । इन परिस्थितियों में, यह दलील दी गई थी कि 2002 के केरल वित्त अधिनियमन सं. 7 द्वारा धारा 4 में अंतःस्थापित धारा 4(1क) शून्य थी और विधि की दृष्टि से अप्रवर्तनशील थी क्योंकि अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त नहीं की गई है ।

15. एक प्राइवेट चिट्टी फर्म की ओर से विद्वान् काउन्सेल श्री वी. गिरी के अनुसार, **पंडित ऋषिकेश** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय सही रूप से विनिश्चित किया गया है । इस संबंध में, यह दलील दी गई थी कि विरोध का पहलू प्रमुख रूप से विधान-मंडल के मन में उद्भूत होता है । यह कि **दीप चन्द** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में किसी राज्य विधि और किसी केन्द्रीय विधि के बीच विरोध के सूचक के रूप में तीन सिद्धांत अधिकथित किए गए थे जिन्हें राज्य विधान-मंडल को तब ध्यान में रखना होगा जब कभी वह समवर्ती सूची में की किसी प्रविष्टि के अधीन कोई विधि अधिनियमित करने की ईप्सा करता है । इस प्रकार, जहां ऐसी कोई केन्द्रीय विधि है जिसका आशय किसी राज्य विधि को अध्यारोही करना है या जहां ऐसी कोई केन्द्रीय विधि है जिसका आशय उस क्षेत्र को ग्रहण करना है जो अब तक राज्य विधि धारण किए हुए थी या जहां केन्द्रीय विधि का राज्य विधि से वास्तविक रूप में टकराव है वहां राज्य विधान-मंडल को संविधान के अनुच्छेद 254 के अर्थान्तर्गत विरोध की संभावना को ध्यान में रखना होगा । इस संबंध में, यह दलील दी गई थी कि **दीप चन्द** (उपर्युक्त) वाले मामले में प्रगणित कसौटी 1 और 2 यह अपेक्षा नहीं करती कि संविधान के अनुच्छेद 254 के संदर्भ में दो प्रतिस्पर्धी विधानों के बीच विरोध उद्भूत होने के लिए केन्द्रीय विधि को वास्तव में प्रवर्तन में लाया जाए । यह दलील दी गई थी कि प्रस्तुत मामले में, राज्य विधि को अध्यारोही करने का आशय स्पष्ट रूप से केन्द्रीय विधि में, विशेषकर केन्द्रीय अधिनियम की धारा 3 में स्पष्ट है जो यह स्पष्ट करती है कि 1982 के अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे । इसी प्रकार,

---

[1] [1959] 2 एस. सी. आर. 8.

केन्द्रीय अधिनियम की धारा 90 से, जिसमें राज्य विधानों के निरसन का उपबंध है, संसद् का यह आशय भी प्रकट होता है कि वह ऐसे संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करेगा जो अब तक राज्य विधान-मंडल द्वारा धारित था । इसके अलावा, किसी चिट के संचालन से संबंधित ऐसे प्रत्येक पहलू पर केन्द्रीय अधिनियम द्वारा विचार किया गया है जिसे राज्य अधिनियम के अंतर्गत लाने की ईप्सा की गई है । इस प्रकार, संसद् ने केन्द्रीय विधि अधिनियमित करके न केवल विद्यमान राज्य विधियों को अध्यारोही करने बल्कि चिटों से संबंधित, जो कि सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अधीन विशेष संविदाएं हैं, संपूर्ण क्षेत्र को स्वयं ग्रहण करने संबंधी अपने आशय को प्रकट कर दिया है । इस प्रकार, जहां तक राज्य विधान-मंडल के विधायी कार्यों का संबंध है, केन्द्रीय अधिनियम को वास्तव में प्रवर्तन में लाना कोई सुसंगत परिस्थिति नहीं है । जब केरल राज्य धारा 4(1क) के अंतःस्थापन द्वारा 2002 में राज्य अधिनियम में संशोधन करना चाहता था तब वह इस तथ्य को ध्यान में रखने के लिए बाध्य था कि तारीख 19 अगस्त, 1982 से चिटों को शासित करने वाली केन्द्रीय विधि पहले से विद्यमान है यद्यपि वह केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं है, जिसके द्वारा राज्य अधिनियम का उस सीमा तक निरसन हो गया है । अतः, राज्य विधान-मंडल को विधि को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रख के अनुच्छेद 254(2) में की प्रक्रिया का अनुसरण करना चाहिए था और राष्ट्रपतीय अनुमति प्राप्त करनी चाहिए थी । इसलिए, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, राज्य की इस दलील में कोई सार नहीं है कि यदि प्राइवेट चिट फर्मों की ओर से दी गई प्रतिपादनाओं को स्वीकार किया जाता है तो केरल राज्य में विधायी शून्यता उत्पन्न हो जाएगी । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 85(क) और धारा 90(2) में अन्य बातों के साथ-साथ केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के उपबंधों के तब तक लागू बने रहने का उपबंध है जब तक केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना जारी करके केन्द्रीय अधिनियम प्रारंभ नहीं कर दिया जाता । उस अधिनियम के प्रारंभ होने पर केन्द्रीय अधिनियम की धारा 90 द्वारा राज्य अधिनियम उस सीमा तक निरसित हो गया है । तथापि, विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, जैसे ही विधान-मंडल ने 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा संशोधन के लिए केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 पर कार्यवाही आरंभ की, दो प्रतिस्पर्धी विधानों के बीच विरोध उद्भूत हो गया । ऐसा विरोध विधान-मंडल के ध्यान में आना चाहिए था और राज्य विधान-मंडल 1982 के केन्द्रीय अधिनियम को ध्यान में रखने के लिए बाध्य था । मामले पर इस प्रकार दृष्टिपात करने

पर, जैसा कि केरल राज्य की ओर से दलील दी गई है, किसी भी समय कोई विधायी शून्यता नहीं है । इसके प्रतिकूल अभिनिर्धारित करने का अभिप्राय संसद् की उस विधायी इच्छा की अवज्ञा करना होगा जो 1982 के अधिनियम को पारित करके अभिव्यक्त की गई है ।

**प्रश्न सं. (i) के संबंध में हमारा उत्तर :- विरोध का अवधारण करने के लिए समय-बिन्दु**

16. अनुच्छेद 254 संसद् द्वारा बनाई गई विधियों और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के बीच असंगति के संबंध में है । यह संविधान के भाग 11 में है । भाग 11 संघ और राज्यों के बीच संबंधों के बारे में है । भाग 11 के दो अध्याय हैं । अध्याय 1 विधायी शक्तियों के वितरण के संबंध में है । अनुच्छेद 245 से अनुच्छेद 255 भाग 11 के अध्याय 1 में हैं । अनुच्छेद 245 संसद् द्वारा और राज्य के विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के विस्तार के संबंध में है । भूतकाल में "बनाई गई" क्रिया अनुच्छेद 245 के शीर्ष टिप्पण में विद्यमान है । "बनाई गई" क्रिया, वर्तमान अर्थ में अनुच्छेद 245(1) में विद्यमान है जबकि "बनाई गई" क्रिया भूतकाल में अनुच्छेद 245(2) में विद्यमान है । जबकि विधायी शक्ति अनुच्छेद 245 से व्युत्पन्न होती है किन्तु संविधान की सातवीं अनुसूची में की प्रविष्टियां केवल संबंधित विधान-मंडलों के विधायी क्षेत्रों को सीमांकित करती हैं और ऐसी कोई विधायी शक्ति प्रदान नहीं करती हैं । जबकि संसद् को भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र या किसी भाग के लिए विधियां बनाने की शक्ति प्राप्त है किन्तु किसी राज्य का विधान-मंडल उस राज्य या उसके भाग के लिए ही विधियां बना सकता है । इस प्रकार, अनुच्छेद 245 में अन्य बातों के साथ-साथ संसद् और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों के विस्तार को उपदर्शित करता है । अनुच्छेद 246 संसद् द्वारा और राज्य विधान-मंडलों द्वारा बनाई गई विधियों की विषयवस्तु के संबंध में है । "बनाई गई" क्रिया का पुनः अनुच्छेद 246 के शीर्ष टिप्पण में प्रयोग किया गया है । यह अनुच्छेद संघ और राज्य विधान-मंडलों के बीच सातवीं अनुसूची में की विभिन्न सूचियों के संबंध में विधायी शक्तियों के वितरण के बारे में है । संक्षेप में, संसद् को सूची 1 में के विषयों की बाबत विधान बनाने की पूर्ण और अनन्य शक्तियां हैं और सूची 3 में के विषयों की बाबत विधान बनाने की शक्ति भी है जबकि दूसरी ओर, राज्य विधान-मंडलों को सूची 1 और सूची 3 के अंतर्गत आने वाले विषयों को छोड़कर सूची 2 में के विषयों की बाबत विधान बनाने की अनन्य शक्ति है और सूची 3 में के विषयों के संबंध में समवर्ती शक्ति प्राप्त है (देखिए : **ए. एल. एस. पी.**

**पी. एल. सुब्रमण्यम् चेट्टियार** बनाम **मुतुस्वामी गौंडन**[1] वाला मामला) । इस प्रकार, अनुच्छेद 246 में संघ और राज्यों के बीच उन विधायी शक्तियों के वितरण के लिए उपबंध किया गया है जो अनुच्छेद 245 द्वारा प्रदत्त हैं । अनुच्छेद 245 "इस संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए" अभिव्यक्ति से आरंभ होता है । अतः अनुच्छेद 246 को "संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए" के रूप में पढ़ा जाना चाहिए । इस विनिश्चय के प्रयोजनों के लिए जिस मुद्दे पर जोर देने की आवश्यकता है वह यह है कि अनुच्छेद 245 विधायी शक्तियों के प्रदान किए जाने के संबंध में है जबकि अनुच्छेद 246 में विधायी शक्तियों के वितरण के लिए उपबंध हैं । अनुच्छेद 245 विधियों के विस्तार के संबंध में है जबकि अनुच्छेद 246 विधायी शक्तियों के वितरण के संबंध में है । इन अनुच्छेदों में, संविधान निर्माताओं ने "बनाने" शब्द का प्रयोग किया है न कि "प्रारंभ" शब्द का, जिसका एक विनिर्दिष्ट विधिक अर्थ है [साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 2(13) देखिए] । एक और पहलू पर प्रकाश डालने की आवश्यकता है । अनुच्छेद 246(1) "खंड (2) और खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी" सर्वोपरि खंड से आरंभ होता है । इन शब्दों से संघीय सर्वोच्चता उपदर्शित होती है, अर्थात्, संघ और राज्य की शक्तियों के बीच अपरिहार्य टकराव की दशा में सूची 1 में प्रगणित संघ की शक्तियां सूची 2 और सूची 3 में प्रगणित राज्य की शक्तियों पर अभिभावी होंगी और सूची 3 और सूची 2 के बीच अधिव्यापन की दशा में पूर्ववर्ती अभिभावी होगी (**इंदू भूषण बोस** बनाम **रामा सुन्दरी देवी और एक अन्य**[2] वाला मामला देखिए) । तथापि, अनुच्छेद 246(1) में दर्शित संघीय सर्वोच्चता के सिद्धांत का तब तक अवलंब लिया जा सकता है जब तक कि संघ और राज्य सूचियों में की प्रविष्टियों के बीच "असमाध्येय" टकराव न हो । यह टकराव वास्तविक टकराव होना चाहिए । अनुच्छेद 246(1) का सर्वोपरि खंड केवल तभी प्रवर्तित होता है यदि समाधान असंभव हो । जैसा कि कथन किया गया है, संसदीय विधान को अनुच्छेद 246(1) और (2) में किए गए उपबंधों के अनुसार सर्वोच्चता प्राप्त है । यह तब सुसंगत होता है जब विधान का क्षेत्र समवर्ती सूची में आता है । सूची 3 में प्रगणित विषयों के संबंध में संघ और राज्य विधान-मंडलों को समवर्ती शक्ति प्राप्त है [अनुच्छेद 246(2) देखिए] । अतः, राज्य विधान-मंडल को अनुच्छेद 254(2) के अधीन रहते हुए, अर्थात् बशर्ते राज्य अधिनियम के उपबंधों का उस विषय पर केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों से

---

[1] ए. आई. आर. 1941 एफ. सी. 47.

[2] [1970] 1 एस. सी. आर. 443.

टकराव न हो, समवर्ती सूची में के विषयों के संबंध में विधान बनाने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है [**अमलगमेटेड इलैक्ट्रीसिटी कंपनी (बेलगाम) लिमिटेड** बनाम **नगरपालिका समिति, अजमेर**[1] वाला मामला देखिए] । इस प्रकार, अनुच्छेद 246 के खंड (2) और खंड (3) में "के अधीन रहते हुए" अभिव्यक्ति संसद् की सर्वोच्चता द्योतित करती है । इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 246(1) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "के संबंध में" है । "के संबंध में" विधि और किसी विषयवस्तु पर "प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली" विधि के बीच विभेद है । अनुच्छेद 245 के आरंभिक शब्द "संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए" अनुच्छेद 245 और अनुच्छेद 246 तथा विधायी सूचियों द्वारा प्रदत्त विधायी शक्ति को "संविधान के उपबंधों के अध्यधीन" बना देते हैं । परिणामस्वरूप, विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधियां न केवल विषयवस्तु की बाबत विधायी शक्तियों की कमी के कारण बल्कि सांविधानिक परिसीमाओं का अतिलंघन करने के कारण भी शून्य बनाई जा सकती हैं (एच. एम. सीरवई कृत द कांस्टिट्यूशनल ला आफ इंडिया, चतुर्थ संस्करण के खंड 3 के पृष्ठ 2305 का पैरा 22.6 देखिए) । यह पहलू इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि "शून्य" शब्द संविधान के अनुच्छेद 254(1) में पाया जाता है । अतः, संघ और राज्य विधान-मंडल को सूची 3 में प्रगणित विषयों के संबंध में समवर्ती शक्ति प्राप्त है । अतः, राज्य विधान-मंडल को सूची 3 में के विषयों के संबंध में, अनुच्छेद 254(2) में के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अर्थात्, बशर्ते राज्य अधिनियम के उपबंधों का उस विषय पर केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों से टकराव न हो, विधान बनाने की पूरी शक्ति है । जहां संसद् ने सूची 3 के क्षेत्र के अंतर्गत आने वाली कोई विधि नहीं बनाई है वहां राज्य विधान-मंडल उस क्षेत्र में विधान बनाने के लिए सक्षम है । जैसा कि कथन किया गया है, अनुच्छेद 246 के खंड (2) और खंड (3) में "के अधीन रहते हुए" अभिव्यक्ति संसद् की सर्वोच्चता द्योतित करती है । इस प्रकार, संसद् और राज्य विधान-मंडल सूची 1 और सूची 2 में के किसी विषय पर विधान बनाने की शक्ति अनुच्छेद 246 के क्रमशः खंड (1) और (3) से व्युत्पन्न करते हैं । संसद् और राज्य विधान-मंडल दोनों, सूची 3 में के किसी विषय पर संविधान के अनुच्छेद 254 के अधीन रहते हुए विधान बनाने की अपनी शक्ति अनुच्छेद 246(2) से व्युत्पन्न करते हैं । संबंधित सूचियां विधायी क्षेत्रों या विधायी शीर्षों को मात्र सीमांकित करती हैं । इसके अलावा, अनुच्छेद 250 और अनुच्छेद 251 में भी "बनाने" शब्द न कि "प्रारंभ" शब्द का प्रयोग किया

---

[1] [1969] 1 एस. सी. आर. 430.

गया है । यदि हम अनुच्छेद 250 के शीर्ष टिप्पण को पढ़ें तो उसमें राज्य सूची में के किसी विषय के संबंध में विधि बनाने की संसद् की शक्ति के प्रति निर्देश किया गया है, यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो । "बनाई गई" शब्द अनुच्छेद 250(2) में भी पाए जाते हैं । दूसरे शब्दों में, "बनाने" क्रिया या "बनाई गई" क्रिया "विधान बनाने" अभिव्यक्ति के समतुल्य है । इस प्रकार, विधि बनाना राज्य सूची में के किसी विषय के संबंध में तब विधि बनाना है यदि आपात की उद्घोषणा प्रवर्तन में हो । इस विचार-विमर्श का महत्व यह दर्शाना है कि संविधान निर्माताओं ने जानबूझकर उपरोक्त अनुच्छेदों में "बनाई गई" या "बनाने" शब्द का प्रयोग किया है । हमारे संविधान में संसद् को विधियां बनाने या तीन सूचियों में अंकित विषयों के संबंध में विधान बनाने के विषय में सर्वोच्चता दी गई है । संसद् की सर्वोच्चता के सिद्धांत, विधायी शक्तियों के वितरण, तीन सूचियों में विषयों के आत्यांतिक वर्णन को विधियां बनाने के संदर्भ में न कि विधियों के प्रारंभ के संदर्भ में देखा जाना है ।

17. अनुच्छेद 254 के खंड (1) के अधीन एक साधारण नियम अधिकथित किया गया है जिसका अभिप्राय यह है कि जहां राज्य विधि का संघ विधि से विरोध हो वहां संघ विधि अभिभावी होगी । विरोध का प्रश्न केवल समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों के संबंध में ही उद्भूत होता है क्योंकि संसद् और राज्य विधान-मंडल दोनों को उस सूची में की विषयवस्तु के संबंध में विधान बनाने की शक्तियां प्राप्त हैं । ऐसे मामलों में, अनेक बार टकराव उत्पन्न होता है । अनुच्छेद 254 के खंड (1) में यह कहा गया है कि यदि किसी समवर्ती विषय से संबंधित कोई राज्य विधि उस विषय से संबंधित संघ विधि के "विरुद्ध" है तो चाहे संघ विधि उससे पहले या बाद में बनाई गई हो, संघ विधि अभिभावी होगी और राज्य विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी । इस प्रकार, अनुच्छेद 254(1) में भी संसद् द्वारा बनाई गई उस विधि को सर्वोच्चता प्रदान की गई है जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है । विरोध की दशा में, राज्य विधान विरोध की सीमा तक ही शून्य होगा । यदि दोनों विधियों के बीच कोई विरोध नहीं है तो अनुच्छेद 254(1) के लागू होने का कोई प्रश्न नहीं है और दोनों अधिनियम अभिभावी होंगे । इस प्रकार, अनुच्छेद 254 केवल तभी लागू होता है जब संघ द्वारा और राज्य द्वारा सूची 3 में के एक ही विषय के अंतर्गत आने वाले विधान उस विषय पर प्रवर्तित होते हैं क्योंकि सूची 3 में के विषयों के संबंध में उनमें से दोनों (संसद् और राज्य विधान-मंडल) विधियां अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं । प्रस्तुत मामले में,

सातवीं अनुसूची में की सूची 3 की प्रविष्टि 7 "संविदाओं" के विषय के संबंध में है । इसके अंतर्गत विशेष संविदाएं भी आती हैं । चिट्टीज़ विशेष संविदाएं हैं । अतः, संसद् और राज्य विधान-मंडल ऐसी संविदाओं के संबंध में विधि अधिनियमित करने के लिए सक्षम हैं । संसदीय विधान और राज्य विधान के बीच विरोध का प्रश्न दो तरीके से उद्भूत होता है । प्रथमतः, जहां विधान यद्यपि अपने-अपने आबंटित क्षेत्रों में के विषयों के संबंध में अधिनियमित किए गए हैं किन्तु उनमें अतिव्याप्ति और टकराव है । द्वितीयतः, जहां दोनों विधान समवर्ती सूची में के विषयों के संबंध में हैं किन्तु उनमें परस्पर-विरोध है । दोनों स्थितियों में, संसदीय विधान को प्रथमतः अनुच्छेद 246(1) में सर्वोपरि खंड के आधार पर और द्वितीयतः, अनुच्छेद 254(1) के कारण प्रधानता मिलेगी । अनुच्छेद 254(2) ऐसी स्थिति के संबंध में है जहां राज्य विधान आरक्षित रखे जाने और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त किए जाने के पश्चात् उस राज्य में अभिभावी होता है; यह पुनः इस परन्तुक के अध्यधीन है कि संसद् ऐसे राज्य विधान को अध्यारोही करने के लिए भी विधान ला सकती है । अनुच्छेद 254 के खंड (1) में प्रयुक्त महत्वपूर्ण शब्द "किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई किसी विधि का कोई उपबंध", "संसद् द्वारा बनाई गई विधि के, जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् सक्षम है, किसी उपबंध" संसद् द्वारा बनाई गई विधि, "चाहे वह ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बीच में पारित की गई हो", और "राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी" हैं । पुनः, अनुच्छेद 254 के खंड (2) में "राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि", "संसद् द्वारा पहले बनाई गई विधि" और "ऐसे राज्य के विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि" के बारे में कहा गया है । इस प्रकार यह अवेक्षणीय है कि अनुच्छेद 254 में आरंभ से संबंधित विधान-मंडलों द्वारा विधि बनाने पर जोर दिया गया है । व्यापक रूप से, विधि बनाना अनन्य रूप से विधान-मंडलों का कृत्य है (देखिए अनुच्छेद 79 और 68) । राष्ट्रपति और राज्यपाल संघ या राज्यों के विधान-मंडलों के भाग हैं । जहां तक संसद् का संबंध है, विधायी प्रक्रिया तब पूरी हो जाती है जैसे ही संविधान के अनुच्छेद 107 द्वारा विहित प्रक्रिया और संबद्ध उपबंधों का अनुसरण कर लिया जाता है और संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक को अनुच्छेद 111 के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाती है । इसी प्रकार, कोई राज्य विधान तब अधिनियम बन जाता है जैसे ही कोई विधेयक राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित कर दिया जाता है और उसे

अनुच्छेद 200 के अनुसार राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो जाती है । केवल अनुच्छेद 254(2) में अनुध्यात स्थिति में ही किसी राज्य विधान को राष्ट्रपति के विचारार्थ और अनुमति के लिए आरक्षित रखना होता है । इस प्रकार, संसदीय या राज्य अधिनियमिति के प्रवर्तन की तारीख को ध्यान में रखे बिना कोई विधेयक अधिनियम बन जाता है और यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल की अनुमति प्राप्त करने के ठीक पश्चात्, जो अनुमति राजपत्र में प्रकाशित की जानी होती है, कानून की पुस्तक में आ जाता है । विधान-मंडल अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए, किसी अधिनियम को, जो पारित हो गया है और जिसे यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल की अनुमति प्राप्त हो गई है, किसी विनिर्दिष्ट तारीख से प्रवृत्त कर सकता है या उसके प्रवर्तन की तारीख नियत करने का कार्य किसी पदाभिहित प्राधिकारी पर छोड़ सकता है । ऐसे विधान सशर्त विधान होते हैं क्योंकि ऐसे मामलों में विधायी कृत्य का कोई भाग अप्रयुक्त नहीं छोड़ा जाता है । ऐसे विधानों में, मात्र इस कारण कि विधान-मंडल ने अधिनियम का प्रवर्तन मुल्तवी कर दिया है, इसका अर्थ यह नहीं होता है कि विधि बनाई नहीं गई है । प्रस्तुत मामले में, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 एक बनाई गई विधि है । चिट फंड विधेयक संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया था और उसे तारीख 19 अगस्त, 1982 को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई थी । यह चिट फंड अधिनियम, 1982 (1982 का 40) के रूप में कानून की पुस्तक में आया । उक्त अधिनियम की धारा 1(2) में यह कहा गया है कि इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है जबकि धारा 1(3) में यह कहा गया है कि यह ऐसी तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकती हैं । उल्लेखनीय बात यह है कि विधि बनाने की प्रक्रिया तारीख 19 अगस्त, 1982 को समाप्त हो गई थी । धारा 1(3) सशर्त विधान का एक भाग है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, ऐसी प्रकृति के विधानों में, मात्र इस कारण कि विधान-मंडल ने अधिनियम के प्रवर्तन को मुल्तवी कर दिया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि विधि बनाई नहीं गई है । प्रस्तुत मामले में, तारीख 19 अगस्त, 1982 को चिट फंड अधिनियम, 1982 अधिनियमित किए जाने के पश्चात् उक्त अधिनियम धारा 1(3) के अधीन समय-समय पर जारी की गई अधिसूचनाओं द्वारा 17 राज्यों में लागू किया गया है । धारा 1(3) उक्त अधिनियम को तारीख 2 अप्रैल, 1984 और 15 सितम्बर, 2008 के बीच 17 राज्यों में प्रवर्तित और/या कतिपय अन्य राज्यों के लिए, जिनमें केरल,

गुजरात, हरियाणा इत्यादि राज्य भी हैं, अधिनियम के प्रारंभ को मुल्तवी कैसे कर सकती थी यदि वह धारा स्वयं प्रवर्तन में नहीं होती ? मामले पर अन्य दृष्टिकोण से विचार करने पर, यदि संपूर्ण अधिनियम, जिसमें धारा 1(3) भी है, तारीख 19 अगस्त, 1982 को प्रवर्तन में नहीं था तो केन्द्रीय सरकार 17 राज्यों की बाबत उसी धारा के अधीन कोई अधिसूचना कैसे जारी कर सकती थी ? अधिनियम को प्रवर्तन में लाने के लिए सरकार को प्राधिकृत करने वाली कोई विधि अवश्य होनी चाहिए । इस प्रकार, धारा 1(3) अधिनियम के पारित हो जाने के ठीक पश्चात् प्रवर्तन में आ गई (**ए. थंगल कुंजु मुसलियार** बनाम **एम. वेंकटचलम पोट्टी**[1] वाले मामले देखिए) । इस प्रकार, हमारी राय में, तात्विक तारीखें वे तारीखें हैं जब दोनों अधिनियमितियों को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई जो कि केन्द्रीय अधिनियम की दशा में तारीख 19 अगस्त, 1982 है जबकि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की दशा में वह तारीख 18 जुलाई, 1975 है । एक और तरीका भी है, जिसके द्वारा इस समस्या पर विचार किया जा सकता है । दोनों निचले न्यायालयों ने इस आधार पर कार्यवाही की है कि केन्द्रीय अधिनियम, 1982 तथा राज्य अधिनियम, 1975 में परस्पर-विरोधी उपबंध हैं (आक्षेपित निर्णय के पैरा 13, 14 और 15 देखिए) । हमारी राय में, संसद् का आशय स्पष्ट रूप से सूची 3 की प्रविष्टि 7 में आने वाले क्षेत्र को ग्रहण करना था । 1982 का अधिनियम "संपूर्ण देश में चिट फंड संस्थाओं को लागू उपबंधों में एकरूपता सुनिश्चित करने के लिए केन्द्रीय विधान के रूप में अधिनियमित किया गया था क्योंकि ऐसा केन्द्रीय विधान ऐसी संस्थाओं को या तो किसी राज्य में चिट फंडों को शासित करने वाली किसी विधि के अभाव का फायदा लेने या ऐसे राज्यों में अपनी गतिविधियों का विस्तार करके किसी राज्य विधि में किसी कमी या शिथिलता के फायदे का दोहन करने से निवारित करेगा" । केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम को अधिनियमित करने की पृष्ठभूमि पर, जिसमें बैंकिंग आयोग की रिपोर्ट के प्रति निर्देश किया गया है, **श्रीराम चिट्स एंड इन्वेस्टमेंट (प्रा.) लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में तथा 1982 के अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में भी विस्तारपूर्वक विचार किया गया है । अतः, 1982 के केन्द्रीय अधिनियम को अधिनियमित करने का स्पष्ट आशय चिट फंडों के संचालन के कारबार के संबंध में एक पूर्ण संहिता बनाना तथा ऐसी चिट फंडों से संबंधित विधायी क्षेत्र को ग्रहण करना था । इसके अलावा, राज्य

---

[1] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 246.

[2] (1993) सप्ली. 4 एस. सी. सी. 226.

विधियों को अध्यारोही करने का आशय स्पष्ट रूप से केन्द्रीय अधिनियम, विशेषकर उसकी धारा 3 में प्रकट होता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी केन्द्रीय अधिनियम के उपबंध प्रभावी होंगे । इसी प्रकार, केन्द्रीय अधिनियम की धारा 90 में भी, जिसमें राज्य विधानों को निरसित करने का उपबंध है, संसद् की ओर से उस क्षेत्र को ग्रहण करने का आशय प्रकट होता है जो अब तक राज्य विधान द्वारा धारण किया हुआ है । चिटों के संचालन से संबंधित प्रत्येक पहलू पर, जो कि राज्य अधिनियम के अंतर्गत आता है, केन्द्रीय अधिनियम द्वारा अत्यधिक व्यापक रीति में विचार किया गया है । इस प्रकार, तारीख 19 अगस्त, 1982 को संसद् ने केन्द्रीय विधि अधिनियमित करके न केवल विद्यमान राज्य विधियों को अध्यारोही करने बल्कि चिटों से संबंधित, जो कि सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अंतर्गत आने वाली एक विशेष संविदा है, संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण करने का अपना आशय प्रकट कर दिया है । परिणामस्वरूप, राज्य विधान-मंडल से 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा तारीख 29 जुलाई, 2002 को सिवाय संविधान के अनुच्छेद 254(2) के अधीन, धारा 4(1) अधिनियमित करने संबंधी उसकी विधायी शक्ति/प्राधिकार छीन लिया गया था । इस प्रकार, धारा 4(1) अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति की कमी के कारण शून्य हो गई थी । हम तर्क की दृष्टि से यह मान लेते हैं कि केरल राज्य को 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा धारा 4(1क) के अंतःस्थापन की बाबत संविधान के अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करनी थी । अनुच्छेद 254(2) ऐसी स्थिति के संबंध में है जहां राज्य विधान आरक्षित रखा जाता है और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने के पश्चात् राज्य में केन्द्रीय विधि पर अभिभावी होता है । तथापि, अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक को ध्यान में रखते हुए संसद् 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 को प्रवर्तन में लाए जाने की प्रतीक्षा किए बिना इस प्रकार अनुमति प्राप्त 2002 के वित्त अधिनियम 7 को अध्यारोही करने के लिए भी विधान ला सकती थी क्योंकि उक्त परन्तुक में यह कहा गया है कि अनुच्छेद 254(2) में की कोई बात संसद् को किसी भी समय उसी विषय के संबंध में कोई विधि अधिनियमित करने से नहीं रोकेगी जिसमें राज्य विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि में परिवर्धन, संशोधन, फेरफार या निरसन करना भी है । (जोर देने के लिए रेखांकित) । इस प्रकार, संसद् को ऐसी अध्यारोही विधि अधिनियमित करने के विषय में 2002 के पूर्ववर्ती राज्य वित्त अधिनियम सं. 7 के प्रवृत्त होने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है ।

दूसरे शब्दों में, संसद् को उक्त परन्तुक के अधीन 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 के प्रवर्तन में लाए जाने से पूर्व भी उसे अध्यारोही करने की शक्ति प्राप्त है । इसलिए, हम परन्तुक के साथ पठित अनुच्छेद 254(2) का ऐसा अर्थान्वयन करना न्यायोचित्यपूर्ण नहीं पाते हैं जो संसद् को किसी ऐसे राज्य विधान को, जिसे अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है, उस राज्य विधान को प्रवर्तन में लाए जाने तक उसका निरसन, संशोधन या परिवर्तन करने से रोकता हो । हमें अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक में "बनाई गई" शब्दों का पठन संगत रीति में करना होगा । अनुच्छेद 245, 246, 250, 251 के संबंध में की गई संपूर्ण उक्त चर्चा से केवल यह उपदर्शित होता है कि "बनाई गई" शब्दों का पठन विधि बनाने की प्रक्रिया के संदर्भ में करना होगा और यदि इस प्रकार पठन किया जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विरोध की परीक्षा करने के लिए विधि बनाने और न कि उसके प्रारंभ के आधार पर कार्यवाही करनी होगी ।

**निर्णयज विधि**

18. (i) **टी. बरई** बनाम **हैनरी आ हो**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने विरोध के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत अधिकथित किए हैं :–

> "15. इस संबंध में कोई भी संदेह या कठिनाई नहीं है कि कौन सी विधि लागू होगी । संविधान का अनुच्छेद 254 प्रथमतः इसके संबंध में कि केन्द्रीय और राज्य विधि के बीच समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों के संबंध में टकराव होने की दशा में क्या होगा और ऐसे टकराव को हल करने के लिए क्या होगा, उपबंध करता है । अनुच्छेद 254(1) में यह प्रसामान्य नियम प्रतिपादित किया गया है कि संघ और राज्य विधि के बीच समवर्ती क्षेत्र में टकराव होने की स्थिति में पूर्ववर्ती, पश्चात्वर्ती पर अभिभावी होता है । खंड (1) में यह अधिकथित किया गया है कि यदि समवर्ती विषय से संबंधित राज्य विधि उस विषय से संबंधित संघ की विधि के प्रतिकूल है, तो चाहे संघ की विधि समय की दृष्टि से पूर्ववर्ती हो या पश्चात्वर्ती, संघ की विधि, अभिभावी होगी और राज्य की विधि उस सीमा तक जिस सीमा तक उसकी प्रतिकूलता इस प्रकार है, शून्य होगी । खंड (1) में अधिकथित साधारण नियम के खंड (2) के द्वारा यह अपवाद अंतःस्थापित किया गया है अर्थात् यह कि यदि राष्ट्रपति राज्य की

[1] [1983] 2 उम. नि. प. 655 = (1983) 1 एस. सी. सी. 177.

ऐसी विधि के लिए अनुमति देता है जिस पर उसे विचार करना चाहिए तो वह इस बात के होते हुए भी अभिभावी होगी कि वह संघ की पहले वाली विधि के प्रतिकूल है । जबकि दोनों ही विधियां समवर्ती विषय से संबंध है, ऐसी दशा में केन्द्रीय अधिनियम अभिभावी न होकर राज्य अधिनियम अभिभावी होगा किन्तु वह उस सीमा तक अभिभावी होगा जिस सीमा तक कि दोनों के बीच असंगति हो किन्तु उससे अधिक नहीं । संक्षेप में राज्य अधिनियम का, जो कि समवर्ती विषय से संबंधित पूर्ववर्ती संघ सूची से असंगत है, राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होने का परिणाम यह होगा कि राज्य का अधिनियम उस राज्य में अभिभावी होगा और जहां तक कि राज्य में उसके लागू होने का संबंध है, वह केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों को अध्यारोही करेगा तथापि, यदि संसद् खंड (2) के परन्तुक के अधीन विधान बनाती है, तो राज्य की विधि का इस प्रकार अभिभावी होना समाप्त हो जाएगा । अनुच्छेद 254(2) का परन्तुक संसद् को इस बात के लिए सशक्त करता है कि वह राज्य की प्रतिकूल विधि को या तो निरसित कर दे या उसमें संशोधन कर दे भले ही वह राष्ट्रपति की अनुमति के बल पर विधिमान्य ही क्यों न हो गई हो । संसद् उसी विषय के संबंध में राज्य की विधि के प्रतिकूल विधि को या तो प्रत्यक्षतः या स्वयं ही अधिनियमित करके राज्य की प्रतिकूल विधि को निरसित कर सकेगी या संशोधित कर सकेगी । यद्यपि संसद् द्वारा बनाई गई पश्चात्वर्ती विधि अभिव्यक्त रूप से राज्य की विधि को निरसित नहीं करती है फिर भी राज्य की विधि उसी समय शून्य हो जाएगी जैसे ही प्रतिकूल बनाने वाले संसद् की पश्चात्वर्ती विधि बनाई जाती है । संघ विधि के प्रतिकूल राज्य विधि उस दशा में होगी यदि उन दोनों विधियों के बीच प्रत्यक्ष टकराव हो । ऐसी प्रतिकूलता वहां ही उत्पन्न हो सकती है जहां कि दोनों ही विधियां एक ही क्षेत्र में प्रवर्तित होती हैं और दोनों ही विधियां कदाचित अस्तित्व में रह सकती हैं, उदाहरण के लिए जहां दोनों विधियां एक ही अपराध के लिए दंड विहित करती है किन्तु दंड सीमा या प्रकार की दृष्टि से या विहित प्रक्रिया की दृष्टि से, भिन्न-भिन्न हो । ऐसे सभी मामलों में, संसद् द्वारा बनाई गई विधि अनुच्छेद 254(1) के अधीन राज्य की विधि पर अभिभावी होगी ।"

(ii) **आई. टी. सी. लिमिटेड** बनाम **कर्नाटक राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 18 में निम्न प्रकार कथन किया :–

> "18. इस प्रकार मेरी यह राय है कि पांचों सिद्धांतों को एक साथ पढ़ते हुए उनका अर्थान्वयन करना होगा न कि पृथक्तः किन्तु जहां केन्द्रीय और राज्य विधान-मंडल एक ही क्षेत्र के बारे में विधान बनाते हैं तो केन्द्रीय विधान अभिभावी होगा । यह भी सुस्थिर है कि जहां दो अधिनियमों में, एक संसद् द्वारा पारित और दूसरे राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित, विरोध हो तो उनमें सामंजस्य करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता तब केन्द्रीय विधान ही अभिभावी होना चाहिए ।"

(iii) **एम. करुणानिधि** बनाम **भारत संघ**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिकूलता अवधारित करने के लिए कसौटी निम्न प्रकार अधिकथित की गई है : –

> "8. यह देखा जाएगा कि जहां तक अनुच्छेद 254 के खंड (1) का संबंध है, उसमें स्पष्ट रूप से यह अधिकथित किया गया है कि जहां पर राज्य द्वारा बनाई गई तथा संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंधों के बीच समवर्ती सूची में प्रगणित विषयों में से किसी एक के बारे में कोई प्रत्यक्ष विरोध हो, वहां खंड (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य की विधि विरोध की मात्रा तक शून्य होगी । स्वाभाविक है कि इससे यह अभिप्रेत है कि जहां राज्य तथा संसद् दोनों का ही समवर्ती सूची में अनुध्यात किसी विषय पर क्षेत्राधिकार हो, वहां समय की दृष्टि से पूर्ववर्ती होने के कारण संसद् द्वारा पारित अधिनियम अभिभावी होगा और इसके परिणामस्वरूप राज्य के अधिनियम को केन्द्रीय अधिनियम के समक्ष झुकना होगा । वस्तुतः संविधान की स्कीम वैज्ञानिक है और संसद् तथा विधान-मंडलों के बीच विधायी शक्तियों का साम्यापूर्ण वितरण किया गया है । प्रथमतः, सप्तम अनुसूची की प्रथम सूची, अर्थात्, संघ सूची में अंतर्विष्ट विषयों की बाबत केवल संसद् ही विधान बनाने के लिए सशक्त है और राज्य विधान-मंडलों को अनुसूची 1 में अंतर्विष्ट प्रविष्टियों की बाबत कोई विधि बनाने का प्राधिकार नहीं है । दूसरे, जहां तक समवर्ती सूची का

---

[1] [1985] 4 उम. नि. प. 988 = (1985) सप्ली. एस. सी. सी. 476.

[2] [1980] 1 उम. नि. प. 1121 = (1979) 3 एस. सी. सी. 431.

संबंध है, संसद् तथा राज्य विधान-मंडल दोनों ही उसमें की प्रविष्टियों की बाबत विधान बनाने के हकदार हैं किन्तु यह बात ऊपर वर्णित अनुच्छेद 254(1) में अधिकथित शर्त के अध्यधीन है । तीसरे, जहां तक कि सूची 2 अर्थात्, राज्य सूची का संबंध है, केवल राज्य विधान-मंडल ही उनके बारे में विधान बनाने के लिए सक्षम है और केवल कुछ विशेष परिस्थितियों में ही संसद् ऐसा कर सकती है । अतः यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में निम्नलिखित परिस्थितियों के परिणामस्वरूप विरोध उत्पन्न हो सकता है –

1. जहां समवर्ती सूची में किसी केन्द्रीय अधिनियम या राज्य अधिनियम के उपबंध पूर्णतया परस्पर विरोधी हैं और उनमें सामंजस्य कदापि स्थापित नहीं किया जा सकता है वहां केन्द्रीय अधिनियम अभिभावी होगा और विरोध की दृष्टि से राज्य अधिनियम शून्य हो जाएगा ।

2. तथापि, जहां राज्य द्वारा पारित किसी विधि का समवर्ती सूची में की किसी प्रविष्टि के बारे में संसद् द्वारा पारित किसी विधि में विरोध हो वहां विरोध की मात्रा तक राज्य अधिनियम अभिभावी होगा और केन्द्रीय अधिनियम के उपबंध शून्य हो जाएंगे, बशर्ते कि राज्य अधिनियम अनुच्छेद 254 के खंड (2) के अनुसार पारित किया गया हो ।

3. जहां राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित कोई विधि सारतः राज्य सूची की प्रविष्टियों के प्रविषय के भीतर होते हुए केन्द्रीय सूची की किसी प्रविष्टि का अतिक्रमण करती है वहां उस विधि की सांविधानिकता की पुष्टि उस दशा में सार और तत्व का सिद्धांत लागू करके की जा सकती है जब कि अधिनियम के उपबंधों का विश्लेषण करने पर यह प्रतीत हो कि मोटे तौर पर विधि राज्य सूची के भीतर हो जाती है और अतिक्रमण यदि कोई हो, पूर्णतया आनुषंगिक या महत्वहीन हो ।

4. तथापि, जहां समवर्ती सूची के अंतर्गत आने वाले किसी विषय पर राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई कोई विधि संसद् द्वारा पहले ही बनाई गई किसी विधि से असंगत हो, वहां ऐसी विधि का संरक्षण संविधान के अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति अभिप्राप्त करके किया जा सकता है ।

राष्ट्रपति की अनुमति अभिप्राप्त करने का परिणाम यह होगा कि जहां तक राज्य अधिनियम का संबंध है, वह राज्य में अभिभावी होगा तथा केवल उस राज्य में ही केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों के लागू होने का खंडन करेगा । ऐसी वस्तुस्थिति केवल तब तक ही प्रवृत्त रहेगी जब तक कि राज्य विधान-मंडल द्वारा बनाई गई विधि में संसद् किसी समय परिवर्धन या संशोधन या परिवर्तन या निरसन करके अनुच्छेद 254 के परन्तुक के अधीन कोई विरोध न बना दे ।

जहां तक प्रस्तुत अधिनियम का संबंध है, हमें संविधान के अनुच्छेद 254(2) के अधीन उसकी सांविधानिक विधिमान्यता के विभिन्न पहलुओं पर विचार करना है ।

*** *** ***

24. यह सुस्थापित है कि उपधारणा सदैव ही किसी कानून की सांविधानिकता के पक्ष में होती है और किसी अधिनियम पर आक्षेप करने वाले व्यक्ति पर ही यह साबित करने का भार होता है कि कानून असांविधानिक है । प्रथमदृष्ट्या हमें राज्य अधिनियम तथा केन्द्रीय अधिनियमों के बीच कोई असंगति प्रतीत नहीं होती है । किसी विरोध के उत्पन्न होने के पूर्व निम्नलिखित शर्तें अवश्य ही पूरी होनी चाहिएं –

1. केन्द्रीय अधिनियम तथा राज्य अधिनियम के बीच स्पष्ट असंगति हो ।

2. ऐसी असंगति पूर्णतः परस्पर-विरोधी हो ।

3. दोनों अधिनियमों के उपबंधों के बीच असंगति ऐसी हो जिससे कि दोनों अधिनियमों में एक दूसरे से प्रत्यक्ष संघर्ष हो और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए जिसमें कि एक की अवज्ञा किए बिना दूसरे का पालन करना असंभव बन जाए ।

25. कालिन हावर्ड कृत आस्ट्रेलियन फैडरल कांस्टिट्यूशनल ला, द्वितीय संस्करण में लेखक ने, दो अधिनियमितियों के बीच असंगति के स्वरूप का वर्णन करते हुए निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की थी –

"प्रत्यक्ष असंगति उस दशा में उत्पन्न होती है जब कि

एक जैसे तथ्यों को ही लागू किए जाने पर दोनों अधिनियमितियां दो भिन्न-भिन्न परिणाम उत्पन्न करें ।"

*** *** ***

35. अतः, ऊपर निर्दिष्ट नजीरों पर ध्यानपूर्वक विचार करने से निम्नलिखित प्रतिपादनाएं प्रतिपादित होती हैं –

1. विरोध विषयक प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए यह अवश्य दर्शित किया जाना चाहिए कि दो अधिनियमितियों में असंगत और परस्पर-विरोधी उपबंध अंतर्विष्ट हैं, जिससे कि वे एक ही क्षेत्र में एक साथ विद्यमान नहीं रह सकती हैं या प्रवृत्त नहीं हो सकती हैं ।

2. विवक्षा से तब तक कोई निरसन नहीं होता है जब तक दोनों कानूनों को देखने से ही असंगति प्रकट न हो ।

3. जहां दोनों कानून किसी विशिष्ट क्षेत्र के संबंध में हों, किन्तु एक दूसरे से टकराव के बिना ही एक ही क्षेत्र में दोनों कानूनों के एक साथ प्रवृत्त होने की गुंजाइश या संभाव्यता हो वहां उनके परिणामस्वरूप कोई विरोध नहीं होता है ।

4. जहां कोई असंगति न हो, किन्तु एक ही क्षेत्र में आने वाला कानून कोई सुभिन्न तथा पृथक् अपराध सृजित करना चाहता हो, वहां विरोध का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और एक ही क्षेत्र में दोनों कानून प्रवृत्त बने रहते हैं ।"

प्रस्तुत मामले के तथ्यों को उपरोक्त कसौटियां लागू करने पर, तारीख 19 अगस्त, 1982 को केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमित हो जाने पर, जिसका आशय सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अधीन चिटों के संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना था, राज्य विधान-मंडल से 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 को अधिनियमित करने की उसकी शक्ति छीन ली गई थी । तथापि, जैसा कि इस न्यायालय के अनेक विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, राज्य विधान-मंडल द्वारा समवर्ती सूची में के किसी विषय के संबंध में अधिनियमित किसी ऐसी विधि को, जो संसद् द्वारा बनाई गई विधि से असंगत और उसके विरोध में है, अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करके संरक्षित किया जा सकता है और यह कि उक्त अनुमति राज्य विधि को उस राज्य में अभिभावी होने और केन्द्रीय अधिनियम के उपबंधों को केवल उस राज्य में उनके लागू

होने के संबंध में अध्यारोही करने में समर्थ बनाएगी । इस प्रकार, जब केरल राज्य वर्ष 2002 में राज्य अधिनियम में संशोधन करना चाहता था तो उसका इस तथ्य को ध्यान में रखना आबद्धकर था कि उस विषय पर वर्ष 1982 में संसद् द्वारा बनाई गई केन्द्रीय विधि पहले से विद्यमान है हालांकि वह केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं है, जिसके द्वारा राज्य अधिनियम का उस सीमा तक निरसन हो जाता है । अतः, राज्य विधान-मंडल को अनुच्छेद 254(2) में की प्रक्रिया का अनुसरण अवश्य करना चाहिए था और राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करनी चाहिए थी ।

(iv) **टीका रामजी** (उपर्युक्त) वाले मामले में तथ्य निम्न प्रकार थे – राज्य विधान-मंडल ने यू. पी. शुगरकेन (रेग्युलेशन ऑफ सप्लाई एंड परचेज) ऐक्ट, 1953 अधिनियमित किया था जिसके द्वारा राज्य सरकार को गन्ने के प्रदाय और क्रय को विनियमित करने हेतु अधिसूचनाएं जारी करने के लिए सशक्त किया गया था, जो कि वास्तव में तारीख 27 सितम्बर, 1954 और 9 नवम्बर, 1955 को जारी की गई थी । अन्य बातों के साथ-साथ यह दलील दी गई थी कि चूंकि यू. पी. शुगरकेन (रेग्युलेशन ऑफ सप्लाई एंड परचेज) ऐक्ट, 1953 राज्य अधिनियम था इसलिए वह संसद् द्वारा अधिनियमित 1951 के अधिनियम सं. 65 के विरुद्ध था जिसके द्वारा केन्द्रीय सरकार को धारा 18छ के अधीन अनुसूचित उद्योग से संबंधित उचित कीमत पर तैयार वस्तुओं के वितरण को विनियमित करने के लिए आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त थी । जो प्रश्न अवधारणार्थ उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या चीनी एक ऐसी मद है जो 1951 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 65 के अंतर्गत आती है और यदि ऐसा है तो राज्य अधिनियम केन्द्रीय अधिनियम के विरुद्ध होने के कारण शून्य था अथवा नहीं । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि केन्द्रीय अधिनियम (1951 का 65) का संपूर्ण उद्देश्य विनिर्मित/तैयार वस्तुओं का उचित कीमतों पर वितरण विनियमित करना था न कि कच्ची सामग्री (गन्ने) के संबंध में विधान बनाना था । इस न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि 1951 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 65 की धारा 18छ के अंतर्गत "गन्ना" नहीं आता था; 1951 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 65 की धारा 18छ केवल अनुसूचित उद्योगों द्वारा विनिर्मित तैयार उत्पादों के संबंध में है और इसलिए उनमें कोई विरोध नहीं था । इस न्यायालय ने उक्त निर्णय में निकोलस द्वारा आस्ट्रेलियन कांस्टिट्यूशन, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 303 पर अपनी टीका-टिप्पणी में प्रगणित असंगति या प्रतिकूलता की तीन कसौटियों के प्रति भी निर्देश किया । उक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने **क्लाइड**

**इंजीनियरिंग कंपनी लिमिटेड** बनाम **कोबर्न**[1] वाले मामले में के निर्णय के विनिश्चयाधार का भी अवलंब लिया जिसमें न्यायमूर्ति इज़ाक्स ने असंगति की एक कसौटी को निश्चायक के रूप में अधिकथित किया : "यदि कोई सक्षम विधान-मंडल अभिव्यक्त या विवक्षित रूप से संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करने संबंधी अपना आशय प्रदर्शित करता है तब जहां कोई अन्य विधान-मंडल उसी क्षेत्र को किसी सीमा तक ग्रहण करने की कल्पना करता है तो वह असंगति की निश्चायक कसौटी है ।" इस न्यायालय ने इन कसौटियों को लागू करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि कोई विरोध नहीं था क्योंकि आक्षेपित राज्य अधिनियम द्वारा "गन्ने" के संबंध में कार्यवाही की गई थी जबकि केन्द्रीय अधिनियम उचित कीमतों पर विनिर्मित वस्तुओं के प्रदाय और वितरण के संबंध में था और इसलिए संसद् और राज्य द्वारा अधिनियमित अधिनियमितियों के वास्तविक निबंधनों में किसी प्रकार की असंगति होने का कोई प्रश्न नहीं था । जो एकमात्र प्रश्न उद्भूत हुआ था वह यह था कि क्या संसद् और राज्य विधान-मंडल ने एक ही विषयवस्तु के संबंध में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने की ईप्सा की थी या क्या संसद् द्वारा अधिनियमित विधियों का आशय संपूर्ण निःशेष संहिता बनाना था या क्या ऐसे अधिनियमों द्वारा संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करने का आशय प्रदर्शित किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि "गन्ना" केन्द्रीय अधिनियम की विषयवस्तु नहीं था इसलिए संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करने का कोई आशय नहीं था और परिणामस्वरूप दोनों अधिनियम विरोध के बिना एक साथ विद्यमान रह सकते हैं । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि उनमें कोई विरोध नहीं था, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "यह मान लेने पर भी कि गन्ना एक ऐसी वस्तु है जिसका संबंध 1951 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 65 की धारा 18छ के अर्थान्तर्गत अंतिम उत्पाद के रूप में चीनी उद्योग से है, यह उल्लेखनीय है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा उस धारा के अधीन उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए कोई आदेश जारी नहीं किया गया था और विरोध का कोई प्रश्न उद्भूत नहीं हो सकता था क्योंकि विरोध वास्तव में विद्यमान होना चाहिए न कि मात्र संभावना पर आधारित होना चाहिए । धारा 18छ के अधीन किसी आदेश की केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए जाने की संभावना पर्याप्त नहीं होगी । ऐसे आदेश की विद्यमानता विरोध उद्भूत होने से पूर्व एक आवश्यक पूर्वापेक्षा थी ।" प्रस्तुत मामले में इस वाक्य का अवलंब केरल राज्य की ओर से विद्वान् काउन्सेल द्वारा अपनी इस दलील

---

[1] [1926] 37 सी. एल. आर. 466.

के समर्थन में लिया गया है कि विरोध वस्तुतः विद्यमान होना चाहिए और वह मात्र संभावना पर आधारित नहीं होना चाहिए । विद्वान् काउन्सेल के अनुसार, प्रस्तुत मामले में **टीका रामजी** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के विनिश्चयाधार को लागू करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समक्ष वाले प्रस्तुत मामले में मात्र इस कारण विरोध उद्भूत नहीं हुआ है कि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 केरल राज्य में प्रवर्तन में नहीं आया है । केन्द्रीय अधिनियम के भविष्य में केरल राज्य में प्रवर्तन में आने की मात्र संभावना से विरोध उद्भूत नहीं होगा ।

(v) **उड़ीसा राज्य** बनाम **एम. ए. टुलक एंड कंपनी**[1] वाले मामले में तथ्य निम्न प्रकार थे : – उड़ीसा राज्य द्वारा खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1948 (केन्द्रीय अधिनियम) के अधीन पट्टा अनुदत्त किए जाने पर टुलक एंड कंपनी ने मैगनीज़ खान का कार्य आरंभ किया था । उड़ीसा राज्य ने उड़ीसा खनन क्षेत्र विकास निधि अधिनियम (उड़ीसा माइनिंग एरियाज़ डेवेलपमेंट फंड ऐक्ट), 1952 पारित किया जिसके अधीन राज्य सरकार को राज्य में "खनन क्षेत्रों" के विकास के लिए फीस उद्गृहीत करने के लिए प्राधिकृत किया गया था । उड़ीसा राज्य ने इन उपबंधों को प्रवर्तन में लाए जाने के पश्चात् टुलक एंड कंपनी से तारीख 1 अगस्त, 1960 को जुलाई, 1957 से मार्च, 1958 तक की अवधि के लिए फीस की मांग की । टुलक एंड कंपनी ने इस मांग की वैधता को संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी । वह रिट याचिका इस आधार पर मंजूर कर ली गई थी कि खान और खनिज (विनियमन और विकास) अधिनियम, 1957 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1957 का केन्द्रीय अधिनियम" कहा गया है) के प्रवर्तन में आने पर, जो कि तारीख 1 जून, 1953 को प्रवर्तन में लाया गया था, उड़ीसा खनन क्षेत्र विकास निधि अधिनियम, 1952 अविद्यमान समझा जाना चाहिए । यही संविवाद इस न्यायालय के समक्ष किया गया । जो मुद्दे विचारार्थ उद्भूत हुए थे उनमें एक मुद्दा विरोध के संबंध में था । यह दलील दी गई थी कि उड़ीसा खनन क्षेत्र विकास निधि अधिनियम, 1952 का उद्देश्य और प्रयोजन 1957 के केन्द्रीय अधिनियम के उद्देश्य और प्रयोजन से सुभिन्न और पृथक् था और इसके परिणामस्वरूप दोनों अधिनियमितियां विधिमान्य रूप से सह-विद्यमान रह सकती थीं चूंकि वे एक ही क्षेत्र को ग्रहण नहीं करती थीं । इस न्यायालय द्वारा यह तर्क अस्वीकार कर दिया

---

[1] [1964] 4 एस. सी. आर. 461.

गया । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 18(1) के निबंधनों को ध्यान में रखते हुए संसद् का आशय संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना था । संसद् द्वारा उक्त धारा के अधीन घोषणा किए जाने के कारण खनिजों के संरक्षण और विकास की संपूर्ण विषयवस्तु संसद् द्वारा कार्यवाही करने के लिए ग्रहण की जा रही थी, इस प्रकार राज्य को उस शक्ति से वंचित किया जा रहा था जो अब तक वह धारण किए हुए था । **हिंगीर-रामपुर कोल कंपनी** बनाम **उड़ीसा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का अवलंब लेते हुए **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि घोषणा के प्रभावी होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि नियम बनाए जाने चाहिएं या प्रवर्तित किए जाने चाहिएं : केवल संसद् द्वारा इस आशय की घोषणा करना ही अपेक्षित था कि लोक हित में खानों का विनियमन और विकास संघ सरकार के नियंत्रणाधीन होना चाहिए । ऐसी दशा में, कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या विधायी घोषणा के अंतर्गत वह क्षेत्र आता है अथवा नहीं । **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में उक्त कसौटी लागू करते हुए संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि 1957 के केन्द्रीय अधिनियम का आशय खानों के विनियमन और विकास से संबंधित संपूर्ण क्षेत्र को केन्द्रीय सरकार के नियंत्रणाधीन लाना था । **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में, **टीका रामजी** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के उपरोक्त रेखांकित भाग का अवलंब लिया गया था जो कि, जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस उपधारणा पर किया गया था कि गन्ना 1951 के केन्द्रीय अधिनियम सं. 65 की धारा 18छ के अधीन चीनी उद्योग से संबंधित एक वस्तु था । **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में उड़ीसा राज्य की ओर से यह दलील दी गई थी कि 1957 के केन्द्रीय अधिनियम की धारा 18(1) केन्द्रीय सरकार पर खनिज संसाधनों का संरक्षण और विकास सुनिश्चित करने के लिए केवल कदम उठाने का कर्तव्य अधिरोपित करती है । चूंकि केन्द्रीय सरकार ने अधिनियम के अधीन खनन क्षेत्रों के विकास के लिए नियम विरचित नहीं किए थे इसलिए जब तक ऐसे नियम विरचित नहीं किए गए थे तब तक 1957 के केन्द्रीय अधिनियम के अधीन संपूर्ण क्षेत्र नहीं आता था और इस प्रकार उड़ीसा खनन क्षेत्र विकास निधि अधिनियम, 1952 तब पूर्ण बल से प्रवर्तित बना रहा जब तक केन्द्रीय सरकार ने 1957 के अधिनियम की धारा 18 के अधीन नियम अधिनियमित नहीं किए । उड़ीसा राज्य की उक्त दलील इस

---

[1] [1961] 2 एस. सी. आर. 537.

न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में **हिंगीर-रामपुर** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए निम्नलिखित शब्दों में खारिज कर दी गई थी :–

> "हम यह समझते हैं कि हमारे समक्ष अधिनियम के संबंध में दी गई यह दलील सही विधिक स्थिति के मिथ्या बोध पर आधारित होने के अलावा इसमें कोई बल नहीं है । प्रथमतः, यह प्रश्न हिंगीर रामपुर कोल कंपनी लिमिटेड **बनाम** उड़ीसा राज्य वाले मामले में इस न्यायालय के पूर्ववर्ती विनिश्चय द्वारा विनिश्चित किया जा चुका है जिसमें इस न्यायालय ने निम्न प्रकार कथन किया –
>
> > 'इस दृष्टि से कि घोषणा प्रभावी होनी चाहिए यह आवश्यक नहीं है कि नियम बनाए जाने चाहिए या प्रवर्तित किए जाने चाहिएं । इसके लिए केवल संसद् द्वारा यह घोषणा करना ही अपेक्षित है कि खानों का विनियमन और विकास संघ सरकार के नियंत्रणाधीन लाना लोक हित में समीचीन था । ऐसी दशा में, कसौटी यह होनी चाहिए कि क्या विधायी घोषणा के अंतर्गत वह क्षेत्र आता है अथवा नहीं ।'
>
> किन्तु भले ही यह अनिर्णीत विषय रहा हो तो भी यह तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता है । विरोध तब उद्भूत होता है जब दोनों अधिनियमितियों में, जो दोनों ही विधान-मंडलों की सक्षमता के भीतर आती हैं, टकराव हो और जब संविधान में अभिव्यक्त रूप से अथवा आवश्यक विवक्षा द्वारा यह उपबंध किया गया हो कि एक विधान-मंडल की अधिनियमिति को अन्य विधान-मंडल की अधिनियमिति पर वरिष्ठता प्राप्त है तब विरोध की सीमा तक उसमें से एक दूसरे को अतिष्ठित करती है । किन्तु दो अधिनियमितियां एक दूसरे के विरुद्ध हो सकती हैं किन्तु किसी एक की अवज्ञा किए बिना दोनों का पालन संभव हो । तथापि, विरोधी उपबंध अंतर्विष्ट करने वाले दो विधानों की कसौटी ही विरोध विषयक एकमात्र कसौटी नहीं है क्योंकि यदि अधिक प्रभावकारिता वाला कोई सक्षम विधान-मंडल अभिव्यक्ततः या विवक्षित रूप से अपने विधान द्वारा संपूर्ण क्षेत्र के बारे में विधान बनाने का आशय प्रकट करता है तो अन्य विधान-मंडल की अधिनियमितियां चाहे वे उससे पहले अथवा बाद में पारित की गई हों, विरोध के आधार पर महत्वहीन हो जाएंगी । जहां ऐसी स्थिति हो, वहां असंगति दोनों कानूनों के उपबंधों की विस्तृत तुलना द्वारा ही

दर्शित नहीं की जाती है बल्कि दो विधानों के विद्यमान होने मात्र से ही दर्शित हो जाती है । प्रस्तुत मामले में, धारा 18(1) के निबंधनों को ध्यान में रखते हुए हमें यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसद् का आशय संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना था और इस प्रकार इस तर्क की कोई गुंजाइश छोड़ना नहीं था कि जब तक नियम विरचित नहीं किए जाते हैं तब तक राज्य अधिनियम के बीच कोई असंगति नहीं है और कोई अधिक्रमण नहीं है ।"

19. संक्षेप में, अनुच्छेद 246(1), (2) और 254(1) में यह उपबंध है कि उस सीमा तक, जिस तक किसी राज्य विधि का उस केन्द्रीय विधि से, जिसे बनाने के लिए संसद् सक्षम है, टकराव है या उसके विरोध में है तो केन्द्रीय विधि अभिभावी होगी और राज्य विधि उसके विरोध की सीमा तक शून्य होगी । विरोध विषयक यह सामान्य नियम अनुच्छेद 254(2) के अधीन है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध किया गया है कि यदि राज्य विधान-मंडल द्वारा समवर्ती सूची में के विषयों की बाबत बनाई गई कोई विधि राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखी जाती है और उसे उसकी अनुमति प्राप्त हो जाती है तो राज्य विधि उसके विरोध के होते हुए भी उस राज्य में किसी विद्यमान विधि या संसद् द्वारा बनाई गई विधि पर अभिभावी होगी । अनुच्छेद 254(2) के परन्तुक में यह उपबंध है कि राज्य द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति से बनाई गई विधि संसद् को उसी विषय के संबंध में कोई विधि, जिसके अंतर्गत ऐसी विधि है, जो राज्य विधान-मंडल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवर्धन, संशोधन, परिवर्तन या निरसन करती है, किसी भी समय बनाने से निवारित नहीं करेगी । इस प्रकार, संसद् को राज्य द्वारा राष्ट्रपति की अनुमति से बनाई गई विधि को प्रवर्तन में लाए जाने की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह राज्य की अनुमतिप्राप्त विधि का, जैसे ही वह बनाई जाती है या अधिनियमित की जाती है, निरसन, संशोधन, परिवर्तन या परिवर्धन कर सकती है । हमें संसद् को किसी ऐसे राज्य विधान का, जिसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो गई है और जिसके द्वारा समवर्ती क्षेत्र में किसी पूर्ववर्ती संसदीय अधिनियमिति को राज्य के राज्यक्षेत्र के भीतर अध्यारोही किया गया है, उसके प्रवर्तन में लाए जाने से पूर्व निरसन, संशोधन या परिवर्तन करने से रोकने का कोई न्यायौचित्य प्रतीत नहीं होता है । संसद् ऐसी राज्य विधि का जैसे ही उसे राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है, निरसन, संशोधन या परिवर्तन कर सकती है और उसे तब तक प्रतीक्षा करने की

आवश्यकता नहीं है जब तक ऐसी अनुमतिप्राप्त राज्य विधि को प्रवर्तन में नहीं लाया जाता है । इस दृष्टिकोण को **टुलक** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय से समर्थन मिलता है । अंततः, अनुच्छेद 13(3)(ख) और अनुच्छेद 372(3), स्पष्टीकरण I में "प्रवृत्त विधि" और अनुच्छेद 366(10) में "विद्यमान विधि" अभिव्यक्तियों की परिभाषा से यह दर्शित होता है कि प्रवृत्त विधियों में, इस बात के होते हुए भी कि ऐसी कोई विधि बिल्कुल भी प्रवर्तन में नहीं है, संविधान के प्रारंभ से पूर्व पारित या बनाई गई और निरसित न की गई विधियां आती हैं । इस प्रकार, अनुच्छेद 13(3)(ख) और अनुच्छेद 372(3), स्पष्टीकरण I में "प्रवृत्त विधि" अभिव्यक्ति की परिभाषा और अनुच्छेद 366(10) में "विद्यमान विधि" अभिव्यक्ति की परिभाषा केरल राज्य के इस तर्क को समाप्त कर देती है कि कोई विधि तब तक अनुच्छेद 254 के प्रयोजनों के लिए नहीं बनाई गई है जब तक उसे प्रवृत्त नहीं किया जाता है । "विद्यमान विधि" अभिव्यक्ति अनुच्छेद 254 में पाई जाती है । **एडवर्ड मिल्स कंपनी लिमिटेड, बीवर** बनाम **अजमेर राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "विद्यमान विधि" और "प्रवृत्त विधि" के बीच कोई अंतर नहीं है । इसमें इसके ऊपर प्रगणित कसौटियों को लागू करते हुए हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को चिट फंड अधिनियम, 1982 बनाए जाने पर शून्य हो गया था (जब इसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हुई और इसे राजपत्र में प्रकाशित कराया गया) क्योंकि 1982 का केन्द्रीय अधिनियम चिटों के संचालन के संबंध में संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करने के लिए आशयित था और इसके अलावा, 2002 का राज्य वित्त अधिनियम सं. 7, जिसके द्वारा 1975 के राज्य अधिनियम में धारा 4(1क) पुरःस्थापित की गई थी, शून्य था क्योंकि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के संविधान के अनुच्छेद 254(1) में यथा-प्रकल्पित संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण कर लेने के पश्चात् राज्य विधान-मंडल, सिवाय अनुच्छेद 254(2) के अधीन, 2002 के उक्त वित्त अधिनियम सं. 7 को अधिनियमित करने संबंधी अपने प्राधिकार से वंचित हो गया था । इस प्रकार, विरोध केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के बनाए जाने से न कि उसके प्रारंभ से उद्भूत होता है । केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, तारीख 19 अगस्त, 1982 को साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 की सीमा तक के सिवाय अन्यथा प्रवर्तन में नहीं रहा था ।

---

[1] ए. आई. आर. 1955 एस. सी. 25.

**(ii) प्रश्न सं. (ii) के संबंध में हमारा उत्तर – निरसन का विधि की दृष्टि से प्रभाव**

20. **उड़ीसा राज्य** बनाम **एम. ए. टुलक एंड कंपनी** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि संसद् द्वारा घोषणा किए जाने के आधार पर "खनिजों के संरक्षण और विकास" की संपूर्ण विषयवस्तु संसद् द्वारा कार्यवाही किए जाने के लिए अपने हाथ में ले ली गई थी और इस प्रकार राज्य को अब तक उसके द्वारा धारित शक्ति से वंचित किया गया था और परिणामस्वरूप केन्द्रीय अधिनियम द्वारा राज्य विधि का अधिक्रमण कर दिया गया था जिससे निरसन हुआ । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् कि राज्य विधि का निरसन हो गया है, इस न्यायालय को **टुलक एंड कंपनी** की ओर से किए गए निवेदन पर विचार करना था । यह दलील दी गई थी कि साधारण खंड अधिनियम, 1897 केवल अभिव्यक्त निरसनों को लागू होता है न कि वरिष्ठ सांविधानिक प्रभावकारिता वाली किसी विधि द्वारा राज्य अधिनियम के अधिक्रमण के परिणामस्वरूप होने वाले निरसनों को लागू होता है । यह दलील दी गई थी कि अनुच्छेद 254(1) के अधीन राज्य अधिनियम का मात्र विलोपन या अधिक्रमण अधिक से अधिक विवक्षित निरसन का न कि अभिव्यक्त निरसन का मामला था । साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 केवल अभिव्यक्त निरसनों को न कि विवक्षित निरसनों को लागू होती है । यह दलील निम्नलिखित निबंधनों में खारिज कर दी गई थी :–

> "विवक्षित निरसनों में अंतर्निहित संपूर्ण सिद्धांत यह है कि पश्चात्वर्ती अधिनियमिति के लिए किसी विशेष शब्द-समूह या प्रारूपण के ढंग का प्रयोग करके अभिव्यक्त निबंधनों में यह कथन करना आवश्यक नहीं है कि पूर्ववर्ती अधिनियमिति निरसित हो गई है किन्तु यदि पूर्ववर्ती विधि को अधिक्रांत करने संबंधी विधायी आशय ऐसा अधिक्रमण करने वाले उपबंधों के अधिनियमन से प्रकट होता है तो इस बात के होते हुए भी कि पश्चात्वर्ती कानून में 'निरसन' शब्द का अभाव है, विधि की दृष्टि से यह निरसन है । अब, यदि पूर्ववर्ती विधि को अधिक्रांत करने संबंधी विधायी आशय ही वह आधार है जिस पर विवक्षित निरसन का सिद्धांत आधारित है तो क्या पश्चात्वर्ती विधान का वही आशय माने जा सकने के संबंध में कोई असंगति हो सकती है जो धारा 6 में उपधारित है जिसमें 'निरसन' शब्द का अभिव्यक्त रूप से प्रयोग किया गया है । जहां तक कानूनी अर्थान्वयन

का संबंध है, विधि का यह मूलभूत सिद्धांत है कि किसी अभिव्यक्त उपबंध और ऐसे उपबंध के बीच, जो आवश्यक रूप से विवक्षित है, कोई विभेद या अंतर नहीं है क्योंकि दोनों दशाओं में केवल ढंग का अंतर होता है और आशय या सार में कोई अंतर नहीं होता है । प्रतिकूल विधान द्वारा निरसित किए जाने के लिए आशयित अधिनियम के प्रति कोई उल्लेख किए बिना भी निरसन किया जा सकता है क्योंकि जब कोई निरसन करने के लिए विधायी सक्षमता मान ली जाती है तो इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता कि क्या ऐसा अभिव्यक्त रूप से या उपलक्षित रूप से या प्रतिकूल विधान के अधिनियमन द्वारा किया गया है । यदि यही वह आधार है जिस पर निरसन और विवक्षित निरसन होते हैं तो हमें दोनों तर्कसम्मत तथा उन सिद्धांतों के अनुसार प्रतीत होते हैं जिन पर यह माना जा सकने वाला विवक्षित निरसन का नियम आधारित है कि विधान-मंडल जो आवश्यक विवक्षा द्वारा निरसन करता है उसका वही आशय होता है जो अभिव्यक्त निरसन की दशा में होगा । जहां निरसन करने का आशय किसी विधान-मंडल का माना जाता है वहां हमारी राय में, धारा 6 में पाई जाने वाली व्यावृत्ति की घटना लागू होगी क्योंकि साधारण खंड अधिनियम में सन्निविष्ट अर्थान्वयन के नियम एक प्रकार से वे मूल उपधारणाएं हैं जिन पर कानून तैयार किए जाते हैं ।"

21. **ए. थंगल कुंजु मुसलियार** बनाम **एम. वेंकटचलम् पोट्टी और एक अन्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में त्रावनकोर राज्य विधान-मंडल ने तारीख 7 मार्च, 1949 को 1124 का अधिनियम सं. 14 अधिनियमित किया जिसमें कर अपवंचन के मामलों का अन्वेषण करने के लिए उपबंध थे । यह अधिनियम धारा 1(3) द्वारा राज्य सरकार द्वारा नियत तारीख को प्रवृत्त होना था । त्रावणकोर और कोचीन राज्यों का तारीख 1 जुलाई, 1949 को विलयन हो गया । 1124 के अध्यादेश सं. 1 द्वारा सभी विद्यमान विधियां त्रावणकोर और कोचीन संयुक्त राज्य में प्रवृत्त बने रहने थे । 1124 के अधिनियम सं. 14 के अधीन कार्रवाई किए जाने के पश्चात् यह संविवाद उठाया गया था कि चूंकि 1124 का उक्त अधिनियम सं. 14 प्रवर्तन में नहीं था इसलिए 1124 के त्रावणकोर अधिनियम सं. 14 के अधीन सभी कार्यवाहियां व्यपगत हो गई थीं । इस न्यायालय द्वारा यह दलील निम्नलिखित निबंधनों में खारिज कर दी गई थी :–

"किसी कानून के प्रारंभ होने की तारीख के बारे में वर्ष 1797 से आंग्ल विधि का सामान्य नियम यह है कि जब कानून द्वारा उसके प्रवर्तन में आने के लिए कोई अन्य तारीख नियत नहीं की जाती है तब वह उस तारीख से प्रवृत्त होता है जब उसे राजकीय अनुमति प्राप्त की जाती है (33 जियो. 3, खंड 13) । यही नियम हमारे साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 5 में अपनाया गया है । हमारे समक्ष ऐसी किसी त्रावणकोर विधि का उल्लेख नहीं किया गया है जिसमें अन्यथा उपबंध किया गया है । अतः, यदि यही सिद्धांत उस राज्य में अभिभावी था तो 1124 का त्रावणकोर अधिनियम सं. 14 तारीख 7 मार्च, 1949 को प्रवृत्त हो गया होगा जब इसे त्रावणकोर विधान-मंडल द्वारा पारित किया गया था । इस परिणाम से किसने रोका था ? इसका उत्तर निश्चित रूप से धारा 1(3) की ओर संकेत करता है जिसमें सरकार को अधिसूचना जारी करके अधिनियम को किसी पश्चात्वर्ती तारीख को प्रवर्तन में लाने के लिए प्राधिकृत किया गया है । अधिनियम का प्रारंभ होना मुल्तवी करने के लिए धारा 1(3) कैसे प्रवर्तित हो सकती है जब तक वह धारा स्वयं प्रवर्तन में न हो ? अतः, हमें यह मानना चाहिए कि धारा 1(3) अधिनियम के पारित होने के ठीक पश्चात् प्रवर्तन में आ गई क्योंकि अन्यथा वह अधिनियम का प्रवर्तन में आना मुल्तवी नहीं कर सकती थी । इसी तर्क पर एक दूसरे तरीके से विचार करने पर, यदि संपूर्ण अधिनियम, जिसमें धारा 1(3) भी है, उसके पारित किए जाने की तारीख को प्रवर्तन में नहीं था तो सरकार उसी धारा के अधीन कोई अधिसूचना कैसे जारी कर सकती थी ? अधिनियम को प्रवर्तन में लाने के लिए सरकार को प्राधिकृत करने वाली कोई विधि अवश्य होनी चाहिए । यदि धारा 1(3) प्रवृत्त नहीं थी तो उस विधि को कहां पाया जाना है ? इसके उत्तर में श्री नाम्बियार ने हमारा ध्यान इंगलिश इंटरप्रेटेशन ऐक्ट की धारा 17 में सन्निविष्ट सिद्धांत की ओर दिलाया जो कि साधारण खंड अधिनियम की धारा 22 के तद्नुरूप है । उस धारा से याची को बिल्कुल भी कोई सहायता नहीं मिलती है । इसमें अधिनियमिति पारित किए जाने और उसके प्रारंभ होने के बीच नियम या उप-विधियां बनाने तथा आदेश जारी करने के लिए ही प्राधिकृत किया गया है किन्तु इस धारा के अंतिम वाक्य में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि 'इस प्रकार बनाए गए या जारी किए गए नियम, उप-विधियां या आदेश अधिनियम या विनियम के प्रारंभ होने तक प्रभावी नहीं होंग'। मान

लीजिए, श्री नाम्बियार का यह कहना सही है कि सरकार साधारण खंड अधिनियम की धारा 22 में सन्निविष्ट सिद्धांत के आधार पर धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना जारी कर सकती थी, तो भी उसका तर्क किंचित भी अग्रसर नहीं होगा क्योंकि वह अधिसूचना, धारा 22 के ऊपर उद्धृत अंतिम वाक्य के आधार पर अधिनियम के प्रारंभ होने तक प्रभावी नहीं होगी । इससे गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा । अतः, यह स्पष्ट है कि किसी अधिनियम को प्रवर्तन में लाने संबंधी कोई अधिसूचना साधारण खंड अधिनियम की धारा 22 द्वारा अनुध्यात नहीं है । अतः, यह देखते हुए कि धारा 1(3) ही अधिनियम के प्रारंभ को तब तक निवारित करने के लिए प्रवर्तित होती है जब तक सरकार द्वारा उसके अधीन कोई अधिसूचना जारी नहीं कर दी जाती और यह कि धारा 1(3) ही सरकार को उसके अधीन अधिसूचना जारी करने के लिए प्राधिकृत करने के संबंध में प्रवर्तित होती है, इसलिए यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि धारा 1(3) अधिनियम के पारित होने के ठीक पश्चात् प्रवृत्त हो गई थी । इसलिए, इस सच्चाई को झुठलाया नहीं जा सकता है कि यह अधिनियम उसके पारित किए जाने की तारीख से तारीख 1 जुलाई, 1949 तक एक विद्यमान विधि था और परिणामस्वरूप 1124 के अध्यादेश 1 द्वारा प्रवृत्त बना रहा । इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए, धारा 1(3) के अधीन तारीख 26 जुलाई, 1949 को जारी की गई अधिसूचना की विधिमान्यता, याची के मामले के प्रति निर्देश, प्रत्यर्थी सं. 1 की प्राधिकृत पदाधिकारी के रूप में नियुक्ति और 1124 के त्रावणकोर अधिनियम सं. 14 के अधीन सभी कार्यवाहियों को इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है कि अधिनियम व्यपगत हो गया था और 1124 के अध्यादेश सं. 1 द्वारा जारी नहीं बना रहा था ।"

22. **टी. एस. बलिया** बनाम **टी. एस. रंगाचारी**[1] वाले मामले में साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 में अंतर्निहित सिद्धांत निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया गया है :–

"प्रश्न यह नहीं है कि नया अधिनियम पुराने अधिकारों और दायित्वों को अभिव्यक्त रूप से बनाए रखता है अथवा नहीं किन्तु प्रश्न यह है कि उससे उन्हें नष्ट करने का आशय प्रकट होता है अथवा

[1] [1969] 3 उम. नि. प. 402 = [1969] 3 एस. सी. आर. 65.

नहीं । अतः, जब कभी किसी अधिनियमिति का निरसन होता है, साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 लागू होगी । ऐसे मामलों में, जब तक, जैसा कि स्वयं धारा में कहा गया है, निरसनकारी कानून में कोई पृथक् आशय प्रकट नहीं होता है, धारा 6 में अधिकथित परिणाम निकलेंगे ।"

23. **पंजाब राज्य** बनाम **मोहर सिंह**[1] वाले मामले में मोहर सिंह के विरुद्ध ईस्ट पंजाब रिफ्यूजीज़ (रजिस्ट्रेशन ऑफ लैंड क्लेम्स) ऐक्ट, 1948 की धारा 7 के अधीन अभियोजन प्रारंभ किया गया था । यह अपराध उस समय कारित किया गया था जब उक्त अधिनियम प्रवृत्त नहीं था । अपराध तब कारित किया गया था जब ईस्ट पंजाब रिफ्यूजीज़ (रजिस्ट्रेशन ऑफ लैंड क्लेम्स) आर्डिनेंस, 1948 प्रवृत्त था । वह अध्यादेश अस्थायी अवधि के लिए था । यह अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था । यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि अध्यादेश एक अस्थायी विधि थी और समय बीत जाने के कारण उसका अवसान होने के पूर्व उसे निरसित कर दिया गया था । उपर्युक्त परिस्थितियों में, इस न्यायालय के समक्ष साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के निर्वचन से संबंधित प्रश्न उद्भूत हुआ । यह अभिनिर्धारित किया गया था :–

"हम इस व्यापक प्रतिपादना का समर्थन नहीं कर सकते हैं कि जब किसी अधिनियमिति के निरसन के पश्चात् एक नया विधान लाया जाता है तब धारा 6 नियमविरुद्ध हो जाती है । धारा 6 ऐसे मामलों में तब लागू होगी जब नए विधान से कोई प्रतिकूल आशय या असंगतता प्रकट नहीं होती । ऐसी असंगतता नई विधि के सभी सुसंगत उपबंधों पर विचार करके अभिनिश्चित की जानी होगी और मात्र व्यावृत्ति खंड का अभाव अपने आप में तात्विक नहीं है ।"

24. इस न्यायालय के उपर्युक्त निर्णयों में अधिकथित कसौटियां लागू करने पर, जब किसी राज्य विधि का किसी संघ विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से या विवक्षा द्वारा निरसन कर दिया जाता है तो साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 उन बातों के बारे में, जो इस प्रकार निरसित की गई राज्य अधिनियम के अधीन की गई हैं, जिससे कि निरसन से पूर्व राज्य विधि के अधीन किए गए संव्यवहारों को बचाया जा सके तथा केन्द्रीय अधिनियम के

---

[1] [1955] 1 एस. सी. आर. 893.

अधिनियमन से पूर्व राज्य अधिनियम के अधीन उद्भूत होने वाले किन्हीं अधिकारों और दायित्वों को लागू होती है । किसी अधिनियमिति का निरसन सारवान् विषय है । यह विधान-मंडल के आशय पर निर्भर करता है । यदि पश्चात्वर्ती अधिनियमिति के आधार पर विधान-मंडल का आशय पूर्ववर्ती अधिनियमिति को पूर्णतः या भागतः मिटाना या मुक्त करना है तो यह उस सीमा तक निरसन का मामला होगा ।

25. प्रस्तुत मामले में, दोनों कसौटियों द्वारा विरोध साबित हो गया है । जैसा कि आक्षेपित निर्णय से दृष्टव्य है (पैरा 13-15 देखिए), केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, जो कि राज्य अधिनियम है और चिट फंड अधिनियम, 1982, जो कि केन्द्रीय अधिनियम है, के उपबंधों की तुलना करने पर असंगतियां वास्तव में प्रत्यक्षतः विद्यमान हैं । इसके अलावा, जैसा कि ऊपर कथन किया गया है, केन्द्रीय अधिनियम को अधिनियमित करने में संसद् का आशय चिटों से संबंधित या उसकी बाबत संपूर्ण क्षेत्र को ग्रहण करना है । अतः, दोनों आधारों पर दोनों अधिनियमों में एकरूपता नहीं है । इस विरोध के परिणामस्वरूप, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 तारीख 19 अगस्त, 1982 को अनुच्छेद 254(1) के अधीन शून्य हो गया और इस प्रकार केरल चिट्टीज़ ऐक्ट विवक्षित रूप से निरसित हो गया था । तथापि, संविधान के अनुच्छेद 367 के आधार पर साधारण खंड अधिनियम उक्त निरसन को लागू होता है । साधारण खंड अधिनियम की धारा 6(ख) और (ग) के अधीन केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के पूर्ववर्ती प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं पड़ता है और न ही केरल के उक्त निरसित अधिनियम के अधीन अर्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । यह सांविधानिक स्थिति तब अभिभावी होगी यदि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90(1) विद्यमान न होती । दूसरे शब्दों में, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90(1) का कथन बहुत सावधानी से किया गया है । इस प्रकार, तारीख 19 अगस्त, 1982 के पश्चात्, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 के सीमित प्रयोजनों के सिवाय निरसित हो गया था । इसी प्रकार, चिटों के संबंध में चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 90 में निर्दिष्ट अन्य विद्यमान छह राज्य विधियां भी, जो तारीख 19 अगस्त, 1982 को विद्यमान थीं, साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 के अधीन व्यावृत्ति के अधीन रहते हुए निरसित हो गई थीं ।

26. केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 को किसी राज्य में प्रवर्तन में लाने के लिए केन्द्रीय सरकार को धारा 1(3) के अधीन राजपत्र में एक अधिसूचना जारी करनी होती है । ऐसा कुछ राज्यों के लिए किया गया है किन्तु अन्य राज्यों, जैसे केरल के लिए ऐसा नहीं किया गया है । यह केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है कि वह जब भी उपयुक्त समझे, केरल में चिट फंड अधिनियम, 1982 प्रवृत्त करने के लिए अधिसूचना जारी करे, जैसा कि उसने कुछ राज्यों में किया है । जब तक ऐसी अधिसूचना जारी नहीं कर दी जाती तब तक केरल राज्य में न तो केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 अभिभावी रहता है क्योंकि वह शून्य हो गया है और अनुच्छेद 254(1) के अधीन निरसित हो गया है और न ही केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 अभिभावी होता है क्योंकि इसे आज तक अधिसूचित नहीं किया गया है । जब भी केन्द्रीय सरकार धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना द्वारा चिट फंड अधिनियम, 1982 को केरल राज्य में प्रवर्तन में लाती है, धारा 90(2) प्रभावी हो जाएगी और इसके पश्चात् केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केवल उन चिटों को, जो केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के प्रारंभ होने की तारीख को केरल राज्य में प्रवर्तन में थीं, उसी रीति में लागू होता रहेगा जैसे केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 ऐसी चिटों को ऐसे प्रारंभ से पूर्व लागू होता था । इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 85(क) और 90(2) में केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के उपबंधों के तब तक लागू बने रहने का उपबंध है जब तक केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 का प्रारंभ नहीं होता है । ऐसा प्रारंभ धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना पर निर्भर करता है । इस प्रकार, केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के ऐसे प्रारंभ पर, तारीख 19 अगस्त, 1982 और केन्द्रीय अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख के बीच किए गए संव्यवहार (चिट) धारा 90(2) के अधीन संरक्षित रहेंगे । अतः, कोई विधायी शून्यता पैदा नहीं होगी ।

27. मामले को समाप्त करने से पूर्व, एक पहलू पर दृष्टिपात करने की आवश्यकता है । धारा 4(1) में धारा 4(1क) 2002 के राज्य वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा पुरःस्थापित की गई थी । धारा 4(1क) के अधीन, ऐसे मामलों में, जहां कोई चिट्टी राज्य से बाहर, जैसे जम्मू-कश्मीर में रजिस्ट्रीकृत है किन्तु उसके बीस प्रतिशत या उससे अधिक अभिदाता सामान्य रूप से केरल राज्य में निवास करते हैं वहां प्रधान को केरल राज्य में एक शाखा खोलनी होती है और केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के अधीन

रजिस्ट्रीकरण प्राप्त करना होता है । यह उपधारा एक कमी को पूरा करने के लिए अंतःस्थापित की गई थी । कई मामलों में, चिटें केरल राज्य से बाहर रजिस्ट्रीकृत थीं जबकि अनेक अभिदाता केरल राज्य में निवास कर रहे थे । यह सही है कि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 बनाए जाने के पश्चात्, राज्य विधान-मंडल अनुच्छेद 254(2) के अधीन यथा-प्रकल्पित राष्ट्रपति की अनुमति के बिना 2002 का वित्त अधिनियम सं. 7 अधिनियमित नहीं कर सकता था, जिसके द्वारा राज्य अधिनियम में धारा 4(1क) अंतःस्थापित की गई थी क्योंकि संपूर्ण क्षेत्र केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम द्वारा धारित था, तथापि, हम यह पाते हैं कि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 4(1) 2002 के वित्त अधिनियम सं. 7 द्वारा यथा-संशोधित केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 की धारा 4(1क) के मुकाबले अधिक व्यापक और अधिक कठोर है चूंकि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 की धारा 4(1) के अधीन कोई चिट उस राज्य सरकार की, जिसकी अधिकारिता के भीतर चिट प्रारंभ की जानी है या उसका संचालन किया जाना है, पूर्व मंजूरी प्राप्त किए बिना और जब तक कि चिट उस राज्य में केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के उपबंधों के अनुसार, रजिस्ट्रीकृत नहीं करा ली जाती है, प्रारंभ नहीं की जाएगी या उसका संचालन नहीं किया जाएगा ।

**निष्कर्ष**

28. संक्षेप में, हमारे निष्कर्ष निम्नलिखित रूप में हैं :–

(i) समय के संबंध में, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विरोध विधि के बनाए जाने से न कि उसके प्रारंभ से उद्भूत होता है, जैसा कि **पंडित ऋषिकेश और एक अन्य** बनाम **सलमा बेगम (श्रीमती)** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय में ठीक तौर पर अभिनिर्धारित किया गया है ।

(ii) उपर्युक्त कसौटी लागू करते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि तारीख 19 अगस्त, 1982 को केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के अधिनियमन पर, जिसके अंतर्गत संविधान की सूची 3 की प्रविष्टि 7 के अधीन चिटों का संपूर्ण क्षेत्र आता था, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 अनुच्छेद 254(1) में यथा-प्रतिष्ठापित विरोध के कारण शून्य हो गया था और विवक्षित रूप से निरसित हो गया था । यह कि चिटों का संपूर्ण क्षेत्र ग्रहण किए जाने के पश्चात् केरल विधान-मंडल 2002 के राज्य वित्त अधिनियम सं. 7 अधिनियमित नहीं कर सकता था जिसके द्वारा केरल

चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 में धारा 4(1क) अंतःस्थापित की गई थी, विशेषकर राज्य अनुच्छेद 254(2) के अधीन राष्ट्रपतीय अनुमति प्राप्त करने में असफल रहा ।

(iii) यह कि यद्यपि केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 केरल राज्य में प्रवृत्त नहीं किया गया है तथापि, वह बनाई गई एक ऐसी विधि है जो विद्यमान विधि के रूप में बनी हुई है । संविधान के अनुच्छेद 367 के आधार पर साधारण खंड अधिनियम, 1897 निरसन के संबंध में लागू होता है । अतः, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6, विशेषकर धारा 6(ख) और 6(ग) सुसंगत है और परिणामस्वरूप, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 के पूर्व प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं पड़ा है और न ही 1975 के निरसित राज्य अधिनियम के अधीन अर्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, बाध्यता या दायित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । अतः, तारीख 19 अगस्त, 1982 के पश्चात्, केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975, साधारण खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के सीमित प्रयोजनों के सिवाय निरसित हो गया है । जब भी केन्द्रीय सरकार धारा 1(3) के अधीन अधिसूचना द्वारा चिट फंड अधिनियम, 1982 को केरल राज्य में प्रवर्तन में लाती है, धारा 90(2) प्रभावी हो जाएगी और इसके पश्चात् केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 केवल उन चिटों को, जो केन्द्रीय चिट फंड अधिनियम, 1982 के प्रारंभ होने की तारीख को केरल राज्य में प्रवर्तन में थीं, उसी रीति में लागू होता रहेगा जैसे केरल चिट्टीज़ ऐक्ट, 1975 ऐसी चिटों को ऐसे प्रारंभ से पूर्व लागू होता था ।

29. निर्देश का तदनुसार उत्तर दिया जाता है ।

निर्देश का तदनुसार उत्तर दिया गया ।

ग्रो./अनू.

**दीपक** उर्फ **वायरलैस**

बनाम

**महाराष्ट्र राज्य**

4 सितंबर, 2012

**न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला**

**दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 395, 396 और 397 – हत्या सहित डकैती – अभियुक्त अपीलार्थी का धारा 395, 396 और 397 के अधीन विचारण और दोषसिद्ध किया गया दो अन्य अभियुक्त घटना कारित किए जाने के समय किशोर थे तथा दो अन्य अभियुक्त फरार रहे – उच्च न्यायालय में अपील किए जाने पर अभियुक्त अपीलार्थी की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई ।**

प्रस्तुत मामले में यह अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 403 को खारिज करने वाले तारीख 25 अप्रैल, 2007 के मुंबई उच्च न्यायालय, औरंगाबाद के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है और दंडादेश अधिरोपित किया गया है । दंड संहिता की धारा 395 के अधीन अपीलार्थी पर 500/- रुपए जुर्माने के साथ पांच वर्ष के कठोर कारावास का दंड अधिरोपित किया गया है और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है, दंड संहिता की धारा 396 के अधीन आजीवन कारावास और 500/- रुपए के जुर्माने, दंड संहिता की धारा 397 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्ष के कठोर कारावास और 500/-रुपए के जुर्माने का संदाय करने, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है । अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – वर्तमान मामले में, जैसा कि निचले न्यायालयों द्वारा मत व्यक्त किया गया है, केवल अपीलार्थी के मामले पर ही कार्यवाही की गई

है, यद्यपि पांच में से तीन व्यक्तियों को अभिरक्षा में लिया गया बताया गया है । उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार तीन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है और चूंकि अपीलार्थी के अतिरिक्त अन्य दो व्यक्ति किशोर थे, इसलिए यह बताया गया है कि उनका विचारण अलग से किया गया है । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है कि अन्य दो अभियुक्त अर्थात् बालाजी और एक अन्य अभियुक्त जो अज्ञात है, पूर्व विचारण के दौरान फरार रहे हैं । पांच व्यक्तियों ने अपराध में भाग लिया है, इसे साबित करने के लिए, अभि. सा. 9 अर्थात् आहत के अभिसाक्ष्य का एकमात्र अवलंब लिया गया है और अभि. सा. 9 को अभियुक्त द्वारा अनेक गंभीर क्षतियां कारित की गई हैं । अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह कथन किया है कि घटना के दिन चार-पांच चोर उनके मकान में घुसे, अपने देवर के चिल्लाने की आवाज सुनकर वह बराबर वाले कमरे में गई और उसने उन व्यक्तियों को देखा कि वे चाकू, सरिए और लकड़ी के डंडों से उसके देवर पर हमला कर रहे हैं । इस साक्षी ने यह भी बताया है कि उन व्यक्तियों कि आयु 18 से 25 वर्ष के बीच थी और वे कमीज और पैंट पहने हुए थे, उनकी लंबाई औसत थी और उनका रंग सांवला था । इस साक्षी के अनुसार, अपने देवर शरद के शरीर पर किए गए हमलों को देखने के पश्चात् वह चिल्लाने लगी, तब अभियुक्त व्यक्ति उसकी ओर मुड़े और उन्होंने उसकी आंख, सिर, पीठ आदि पर क्षतियां पहुंचाते हुए हमला किया । तारीख 14 जून, 2004 को प्रातःकाल पुलिस दल के पहुंचने के पश्चात् और जब उसे अभि. सा. 10 द्वारा पुलिस यान से अस्पताल ले जाया जा रहा था, इस साक्षी ने अभि. सा. 10 को यह बताया कि चार-पांच व्यक्ति उक्त अपराध में आलिप्त हैं । तथापि, प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने अत्यंत स्पष्ट उत्तर दिया है कि इस अपराध में आलिप्त हुए व्यक्तियों की संख्या पांच है । जहां तक अपीलार्थी का संबंध है, अभि. सा. 9 ने बिना किसी संकोच के न्यायालय में उसकी शनाख्त की है और यह बताया है कि हमलावरों में से एक हमलावर वह भी है । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तीन अभियुक्तों में से दो अभियुक्तों को गिरफ्तार करने के पश्चात्, जो मोटरसाइकिल से भाग रहे थे, उन्हें पुलिस थाने लाया गया जिन्होंने अपने नाम दीपक और राहुल भोंसले बताए और तीसरे व्यक्ति का नाम रवि शिंदे था, जो बचकर भाग गया था । राहुल भोंसले और रवि शिंदे को किशोर बताया गया है, उनका अलग से विचारण किया गया है । पंच साक्षी (अभि. सा. 4) ने अपीलार्थी द्वारा पहनी गई पैंट और कमीज, मोटरसाइकिल की चाबी, चाकू और

150/- रुपए की नकदी की पुष्टि की है जो अपीलार्थी के पास से बरामद हुई हैं और इन वस्तुओं को प्रदर्श 19 के रूप में चिन्हांकित किया गया है । उक्त साक्षी द्वारा यह बताया गया है कि तारीख 14 जून, 2004 को प्रातःकाल अर्थात् 9.00 बजे से 10.00 बजे के बीच उसकी मौजूदगी में अभियुक्त से वस्तुओं के अभिग्रहण की कार्यवाही की गई है । तथापि, इस साक्षी ने यह कथन किया है कि पुलिस ने उसकी मौजूदगी में अभियुक्त से लकड़ी का कोई सामान अभिरक्षा में नहीं लिया था, अतः यह दलील दी गई है कि इस साक्षी के वृत्तांत पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । अन्वेषण किए जाने के पश्चात्, अभि. सा. 10 ने न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र फाइल किया जिसमें यह अभिकथन किया गया है कि राहुल पुत्र रामभउ और रवि पुत्र लक्ष्मण (दोनों किशोर हैं) और अन्य दो अभियुक्त अर्थात् बालाजी और एक अन्य अज्ञात व्यक्ति (अंत के दो अभियुक्त फरार बताए गए हैं) के साथ अपीलार्थी 13/14 जून, 2004 की मध्य रात्रि में अपराध में आलिप्त था । विचार के लिए यह प्रश्न रह जाता है कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर निचले न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष स्वीकार्य है कि अपराधी दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों का दोषी है । (पैरा 6 और 7)

आहत महिला (अभि. सा. 9) ने प्राथमिक रूप से अपने वृत्तांत में यह उल्लेख किया है कि 14 जून, 2004 की रात्रि में चार-पांच चोर उनके मकान में घुस आए और अपराध कारित किया । तथापि, प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि उन व्यक्तियों की संख्या पांच थी । इस बात का कोई कारण नहीं है कि अभि. सा. 9 के वृत्तांत पर विश्वास क्यों नहीं किया जाना चाहिए । अपराध के संबंध में सबसे पहली सूचना इस महिला के पास थी जिसको अभियुक्तों द्वारा गंभीर क्षतियां पहुंची थीं । न्यायालय के समक्ष दिए गए उसके कथन में कोई विचलन नहीं है । यह सत्य है कि इस साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा के आरंभ में ही यह कथन किया था कि इस अपराध में चार या पांच व्यक्ति आलिप्त थे किन्तु अपराध में आलिप्त व्यक्तियों की संख्या के संबंध में किसी भी प्रकार का कोई भी संदेह, यदि कोई था, स्वयं अपीलार्थी के कहने पर स्पष्ट हो गया है क्योंकि उसने इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा में एक निश्चित प्रश्न पूछा था कि व्यक्तियों की संख्या कुल मिलाकर पांच थी । प्रतिपरीक्षा में ऐसा सटीक उत्तर अपीलार्थी पर बाध्य हो जाना चाहिए, अतः अभि. सा. 9 के उक्त वृत्तांत को त्यक्त करने का कोई कारण नहीं है । यह दलील दी गई है कि जब पुलिस ने तीन अभियुक्तों को गिरफ्तार किया था और चौथे अभियुक्त का

नाम बालाजी सुनिश्चित किया था ; तब पांचवें अभियुक्त के नाम का पता लगाने में पुलिस की असफलता से अभियोजन पक्षकथन में गंभीर खामी पैदा हुई है । प्रथमदृष्ट्या, विद्वान् काउंसेल की दलील यद्यपि ठोस प्रतीत होती है, परंतु अभि. सा. 9 जिसे अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा क्षतियां पहुंचाई गई हैं और जिसने संपूर्ण घटना देखी है अर्थात् जिसने अपने देवर पर आरंभ में किया गया हमला देखा है जिससे मृतक की मृत्यु हुई और उसके पश्चात् स्वयं उस पर हमला किया गया था, के स्पष्ट कथन पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अपराध में आलिप्त व्यक्तियों की संख्या पांच थी, इसलिए हमारा यह मत है कि निचले न्यायालयों द्वारा इस साक्षी के कथन पर लिया गया अवलंब अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए कार्यवाही किए जाने हेतु पूर्णतया न्यायोचित है । अतः, न्यायालय अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की इस दलील से सहमत नहीं हो सकते कि दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए कम से कम पांच व्यक्तियों के आलिप्त होने के मूल संघटक का इस मामले में अभाव है । जब एक बार हम इस अड़चन से मुक्त हो जाते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलार्थी के विरुद्ध किया गया अभियोजन पक्षकथन चलने योग्य है, तब विचार के लिए अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या अभियुक्तों द्वारा कोई लूट कारित की गई है या नहीं । इस संबंध में, अभि. सा. 9 के पति अर्थात् अभि. सा. 2 का साक्ष्य महत्वपूर्ण है । अभि. सा. 2 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि हमलावर 4,000/- से 5,000/- रुपए की नकदी तथा अभि. सा. 9 द्वारा उसके गले और हाथों में पहने गए आभूषण लूट कर ले गए थे । यह सत्य है कि अभि. सा. 9 ने अपने शरीर से न तो नकदी और न ही आभूषण छीनने का निर्देश किया है । अभि. सा. 2 उस समय मौजूद नहीं था जब घटना घटित हुई थी । एक सुसंगत तथ्य जिस पर विचार किया जाना चाहिए, यह है कि अभि. सा. 9 को गंभीर रूप से क्षतियां पहुंची थीं । वास्तव में, विचारण न्यायालय के निर्णय से यह प्रकट होता है कि प्रदर्श 28 से जो कि अभि. सा. 2 की मौजूदगी में अभिलिखित पंचनामा है, यह प्रकट होता है कि कमरे में सभी जगह रक्त फैला हुआ था और कपबोर्ड खुला हुआ पाया गया था तथा परदे इधर-उधर बिखरे हुए थे और घरेलू सामान फैला हुआ पड़ा था और खिड़की बलपूर्वक खोली गई थी जो कि टूटी हुई पाई गई और इस तथ्य पर निचले न्यायालय द्वारा विश्वास भी किया गया है जिसने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी और

अन्य अभियुक्तों ने आहत से नकदी और आभूषण मृतक शरद की हत्या कारित करने के दौरान छीने थे । अभि. सा. 9 इतने गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुई थी कि उसे घटना के दो से तीन मास तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा । वास्तव में, अभि. सा. 9 की शारीरिक दशा को देखते हुए, एक प्रक्रम पर इस साक्षी का कथन अभिलिखित किए जाने के लिए कमीशन नियुक्त किया गया था यद्यपि बाद में ऐसा नहीं किया गया । अतः, अपीलार्थी द्वारा गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त साक्षी की परीक्षा की गई और चोरी किए गए सामान को हटाने से संबंधित पर्ची और अभि. सा. 2 के स्पष्ट साक्ष्य के होने पर जो कि कोई और नहीं अपितु उसका पति है, उसने (अभि. सा. 2) स्पष्ट रूप से उस सामान के संबंध में कथन किया है जो अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा चोरी किया गया था, अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा में चोरी किए गए सामान से संबंधित किसी भी साक्ष्य के अभाव में, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, निचले न्यायालयों के लिए यह अभिनिर्धारित करने के लिए उक्त साक्ष्य पर्याप्त था कि अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा वास्तव में चोरी कारित की गई है । अपराध में आलिप्त अभियुक्तों की संख्या के संबंध में उक्त अपराध और शरद की हत्या कारित किए जाने और अभि. सा. 9 को गंभीर क्षतियां पहुंचने से दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से गठित होता है । (पैरा 8 और 9)

यदि हम मृतक की मृत्यु और अभि. सा. 9 को पहुंची गंभीर क्षतियों के प्रश्न पर विचार करें, और शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सक (अभि. सा. 1) जिसने अभि. सा. 9 की भी चिकित्सा परीक्षा की है के साक्ष्य पर विचार करें जिसमें उसने यह उल्लेख किया है कि मृतक के शरीर पर 11 क्षतियां कारित की गई थीं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मृत्यु का कारण निचले जबड़े में अस्थि भंग के परिणामस्वरूप मसूड़ों में श्लेषमा का विदीर्ण होकर रक्त निकलना, सिर में क्षति कारित होना, हृदयगति रुक जाना और श्वासावरोध है । अभि. सा. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी कथन किया है कि अभि. सा. 9 के शरीर पर पाई गई क्षतियों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षतियां गंभीर प्रकृति की हैं । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा के दौरान यह बात कही गई थी कि मृतक के शरीर पर पाई गई क्षतियां जिनका उल्लेख प्रदर्श-11 के अधीन किया गया है, गंभीर मोटरयान दुर्घटना में कारित हो सकती हैं और अभि. सा. 1 द्वारा सम्यक् रूप से इस बात से इनकार किया गया है । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा में यह भी उल्लेख किया गया है कि जब अभि. सा. 9 को उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया

था, तब वह बोलने की स्थिति में नहीं थी और उसकी हालत नाजुक थी । अभि. सा. 1 ने यहां भी इस बात से इनकार किया है कि अभि. सा. 9 को कारित क्षतियां धातु की चादर के टकराने से भी कारित हो सकती हैं । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा से कुछ भी प्रकट नहीं हो पाया है । न्यायालय के समक्ष की गई अपनी प्रतिपरीक्षा में अभि. सा. 9 ने न्यायालय को अपने चेहरे पर आई क्षति का निशान दिखाया जिसे विचारण न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से देखा गया । उक्त परिस्थिति में, अन्य किसी भी प्रतिकूल साक्ष्य के अभाव में मृतक शरद की हत्या तथा अभि. सा. 9 को पहुंचीं गंभीर क्षतियां किसी भी संविवाद के परे हैं । उक्त परिस्थितियों में अभि. सा. 9 के पति अर्थात् अभि. सा. 2 के साक्ष्य का लिया गया अवलंब पूर्णतया न्यायोचित है जिसने अभियुक्तों द्वारा कारित किए गए अपराध में संपत्ति की हानि के संबंध में भी ब्यौरे दिए हैं । अतः अपीलार्थी के विरुद्ध अन्य 4 अभियुक्तों के साथ अभिकथित अपराध में आलिप्त होने के लिए दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन दोषसिद्धि साबित पाई जाती है और चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा इस दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है इसलिए इसमें किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 10 और 11)

वर्तमान मामले में, हमने यह मत विस्तारपूर्वक व्यक्त किया है कि किस प्रकार अपीलार्थी ने जो अभि. सा. 9 अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा आहत हुई है जिन्होंने उसे ऐसी गंभीर क्षतियां कारित की हैं जिनसे लंबे समय तक वह अपना शरीर हिला भी नहीं सकती थी और जिसने अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों को अपराध कारित करते हुए देखा था कि उन्होंने उसके देवर की बुरी तरह पिटाई करके हत्या की है और उसकी पीट-पीटकर हत्या करने के पश्चात् उन्होंने अभि. सा. 9 पर भी गंभीर रूप से हमला किया जिससे, अभि. सा. 1 के अनुसार, अभि. सा. 9 काफी समय तक अपने शरीर को हिला भी नहीं सकती थी । वास्तव में, विचारण न्यायालय ने गहराई से यह विचार किया है कि अभि. सा. 9 ऐसी स्थिति में आ गई थी जहां से उसने अपीलार्थियों और अन्य अभियुक्तों के आचरण को अति निकट से देखा था इसलिए इस पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि अभि. सा. 9 ने विचारण के दौरान न्यायालय में अपीलार्थी की बिना संकोच शनाख्त की है । अभि. सा. 9 ने अपने साक्ष्य में सभी अभियुक्तों के हुलिये और उनके पहने हुए कपड़ों का उल्लेख किया है तथा उनकी कद-काठी का भी वर्णन किया है । अतः, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय से अपीलार्थी को इस संबंध में

कोई सहायता नहीं मिल सकती है जबकि उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय से अभियोजन पक्षकथन का पूर्ण रूप से समर्थन होता है । हमारे उपरोक्त मत पर विचार करते हुए, न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि इस अपील में कोई सार नहीं है, अपील असफल होती है । (पैरा 13 और 14)

## निर्दिष्ट निर्णय

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2011] | (2011) 8 एस. सी. सी. 300 :<br>**रफीक अहमद** उर्फ **रफी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; | 4 |
| [2004] | (2004) 2 एस. सी. सी. 694 :<br>**साइमन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य** ; | 12 |
| [2002] | (2002) 7 एस. सी. सी. 295 :<br>**दाना यादव** उर्फ **दाहू और अन्य** बनाम **बिहार राज्य** ; | 12 |
| [2001] | ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1188 :<br>**दया सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ; | 12 |
| [1995] | (1995) 2 एस. सी. सी. 64 :<br>**सूरज पाल** बनाम **हरियाणा राज्य** ; | 3 |
| [1983] | (1983) 1 एस. सी. सी. 143 :<br>**मोहम्मद अब्दुल हफीज़** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** । | 3 |

**अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 438.**

2005 की दांडिक अपील सं. 403 में मुंबई उच्च न्यायालय, औरंगाबाद के तारीख 25 अप्रैल, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** श्री राजीव नंदा

**प्रत्यर्थी की ओर से** सुश्री अपराजिता सिन्हा और सुश्री आशा गोपालन नायर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहीम कलीफुल्ला ने दिया ।

**न्या. कलीफुल्ला** – यह अपील 2005 की दांडिक अपील सं. 403 को खारिज करने वाले तारीख 25 अप्रैल, 2007 के मुंबई उच्च न्यायालय, औरंगाबाद के उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए अपीलार्थियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है और दंडादेश अधिरोपित किया गया है । दंड संहिता की धारा 395 के अधीन अपीलार्थी पर 500/- रुपए जुर्माने के साथ पांच वर्ष के कठोर कारावास का दंड अधिरोपित किया गया है और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने पर अतिरिक्त तीन वर्ष का कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है, दंड संहिता की धारा 396 के अधीन आजीवन कारावास और 500/- रुपए के जुर्माने, दंड संहिता की धारा 397 के अधीन अपराध के लिए तीन वर्ष के कठोर कारावास और 500/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने, जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया गया है ।

2. मामला इस प्रकार घटित हुआ है कि घटना के दिन अर्थात् तारीख 13/14 जून, 2004 को पुलिस थाना पचोड में तैनात सहायक पुलिस अधिकारी (अभि. सा. 10) ने पुलिस उपनिरीक्षक ढाकने से, जो गश्त कर रहा था, एक वायरलेस संदेश इस संबंध में प्राप्त किया कि कुछ चोर उस इलाके में घुस आए हैं । अतः अभि. सा. 10 पुलिस थाने की ओर चल दिया और रास्ते में वह पुलिस उपनिरीक्षक ढाकने और अन्य व्यक्तियों से मिला तथा पूछताछ पर यह पता चला कि चोर उस इलाके से साथ लगे इलाके में चले गए हैं । उन्होंने उस इलाके में छानबीन आरंभ कर दी और जब वे औरंगाबाद की ओर जा रहे थे तब उन्होंने तीन व्यक्तियों को तीव्र गति से मोटरसाइकिल पर जाते हुए देखा । अभि. सा. 10 पुलिस दल का नेतृत्व कर रहा था जिसने उन व्यक्तियों का पीछा किया और थोड़ी दूर जा कर चोरों ने मोटरसाइकिल को सड़क पार जामखेड़ में लावारिस छोड़ दिया और वे खुले मैदान में भागने लगे । पुलिस दल ने उनका पीछा किया और तीन में से दो चोरों को पकड़ लिया । पकड़े गए दो व्यक्तियों में से एक अपीलार्थी है । अभियुक्तों को पुलिस थाने लाया गया और इसी दौरान अभि. सा. 10 ने टेलीफोन द्वारा यह सूचना प्राप्त की कि वसंत भूमरे के मकान में चोरी हो गई है । वसंत भूमरे के मकान पर पहुंचने पर, अभि. सा. 10 ने देखा कि वसंत भूमरे की पत्नी खून से लथपथ कमरे के बीचो बीच पड़ी हुई है और उसका भाई शरद निकट ही रास्ते में मृत पड़ा हुआ है । अभि. सा. 10 ने वसंत भूमरे (अभि. सा. 10) की आहत पत्नी

को पुलिस यान से अस्पताल भेजने का प्रबंध किया और अस्पताल जाते समय मीराबाई (अभि. सा. 9) ने अभि. सा. 10 को यह सूचना दी कि कमीज-पैंट पहने हुए पांच हमलावरों ने उसे तथा मृतक शदर को क्षतियां पहुंचाई हैं और वे मोटरसाइकिल से घटनास्थल से भाग गए हैं । अभि. सा. 9 को अस्पताल में दाखिल कराने के पश्चात, अभि. सा. 10 घटनास्थल पर वापस आया और उसने मृत्यु-समीक्षा करने के पश्चात् शव को शवपरीक्षण के लिए भेज दिया । यह कथन किया गया है कि अन्वेषण के आधार पर, अभि. सा. 1 को यह पता चला है कि अपीलार्थी और उसके सह-अपराधी अर्थात् राहुल भोंसले, रवि शिन्दे, बालाजी और एक अन्य अज्ञात व्यक्ति (अंतिम दो व्यक्ति फरार हैं) तारीख 13/14 जून, 2004 की मध्यरात्रि में अभि. सा. 2 के मकान में की गई डकैती में आलिप्त हैं । केवल अपीलार्थी का ही दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए विचारण किया गया क्योंकि अन्य दो अभियुक्त किशोर थे जिनका विचारण अलग से किया गया । अभियोजन पक्ष ने अपनी ओर से अपने पक्षकथन के समर्थन में तात्विक वस्तुओं और रासायनिक विश्लेषण के साक्ष्य के साथ कुल मिलाकर दस साक्षियों की परीक्षा की है । विचारण न्यायालय ने तारीख 9 मई, 2005 के अपने निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया और उपरोक्त रूप में दंड अधिरोपित किया जिसकी पुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है और उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर, अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष आवेदन किया है ।

3. निचले न्यायालयों के निर्णयों का विरोध करते हुए, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव नंदा ने यह प्रतिवाद किया है कि डकैती का अपराध बनता ही नहीं है क्योंकि हत्या के साथ डकैती का अपराध गठित करने के लिए पांच व्यक्तियों का संयुक्त होकर अपराध कारित करना एक मूल संघटक है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि जहां तक घटना में लूटे गए सामान का संबंध है, न तो अपीलार्थी से और न ही अन्य किसी व्यक्ति से कोई भी बरामदगी नहीं की गई है, अतः न तो लूट का और न ही डकैती का आरोप लगाया जा सकता है । उक्त दलीलों के समर्थन में, विद्वान् काउंसेल ने यह भी तर्क दिया है कि यद्यपि रासायनिक विश्लेषण की रिपोर्ट से अपीलार्थी के कपड़ों में लगे रक्त के नमूने का रक्त-ग्रुप 'बी' पाया गया है, परंतु अपीलार्थी के रक्त-ग्रुप की तुलना मृतक के रक्त के साथ कभी भी नहीं की गई है, अतः अपीलार्थी के कपड़ों पर लगे मात्र रक्त के धब्बों के आधार पर अपीलार्थी को धारा 396

के अधीन डकैती और हत्या के अपराध से संबद्ध करने की कोई गुंजाइश नहीं है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार पुलिस ने अपीलार्थी के विरुद्ध उसे उसके निवास से गिरफ्तार करके मिथ्या मामला बनाया है और यह कि अपीलार्थी इस अपराध में शामिल नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभि. सा. 9 जो कि तथाकथित प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है, यह अभिसाक्ष्य कभी नहीं दिया है कि घटना के दिन किसी भी प्रकार के आभूषण या अन्य संपत्ति चोरी की गई थी और शनाख्त परेड न कराए जाने की स्थिति में, प्रत्यक्षदर्शी साक्षी द्वारा न्यायालय में की गई अपीलार्थी की शनाख्त के आधार पर अपीलार्थी को डकैती और हत्या के गंभीर अपराध के लिए दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क देते हुए अपनी दलीलों का समापन किया कि कोई भी शनाख्त परेड नहीं कराई गई है, पैंट या चोरी किए गए सामान की कोई भी बरामदगी नहीं की गई है और अपराध में पांच व्यक्तियों का संयुक्त होकर शामिल न होना अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक साबित होता है । विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन **सूरज पाल** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] और **मोहम्मद अब्दुल हफीज़** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2] वाले मामलों में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चयों का भी अवलंब लिया है ।

4. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उस घटनाक्रम पर पुनर्विचार करते हुए जिसके परिणामस्वरूप अभियुक्त व्यक्तियों की गिरफ्तारी की गई है, यह दलील दी है कि अभि. सा. 9 घटना की प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है जिसने तारीख 13/14 जून, 2004 को लगभग 2.00 से 2.30 बजे (रात्रि) अपने देवर अर्थात् मृतक शरद यादव की चीख-पुकार सुनने के पश्चात् यह देखा कि अपीलार्थी और अन्य अभियुक्त चाकू, लोहे के सरिए और लकड़ी के डंडों से मृतक को बुरी तरह पीट रहे हैं और जब वह सहायता के लिए चिल्लाने लगी तब अभियुक्त व्यक्ति इस साक्षी की ओर दौड़े और उन्होंने उसके चेहरे और शरीर के अन्य अंगों पर चाकू तथा अन्य हथियारों से क्षतियां कारित कीं । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि अभि. सा. 9 ने क्षतिग्रस्त होने के पूर्व अपने देवर पर अभियुक्तों द्वारा किए गए पाश्विक हमले को देख लिया था, अतः इन्हीं व्यक्तियों ने उस पर हमला किया था, उसने न्यायालय में बिना किसी संकोच के अपीलार्थियों की शनाख्त कर ली थी । जहां तक अपराध में भाग लेने वाले व्यक्तियों की

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 64.

[2] (1983) 1 एस. सी. सी. 143.

संख्या का संबंध है, विद्वान् काउंसेल ने पुनः अभि. सा. 9 की प्रतिपरीक्षा में किए गए वृत्तांत का अवलंब लिया है जिसमें इस साक्षी ने पृथक् रूप में यह कथन किया है कि उस समय अपराध में पांच व्यक्ति शामिल थे । जहां तक सामान चोरी किए जाने का संबंध है, विद्वान् काउंसेल ने अभि. सा. 2 के साक्ष्य को निर्दिष्ट करते हुए यह दलील दी है कि अभि. सा. 2 अपने मकान में की गई डकैती के दौरान चोरी किए गए सामान के रूप में कुल नकदी स्पष्ट की है तथा अभि. सा. 9 के शरीर से छीने गए आभूषणों को भी स्पष्ट किया है । जहां तक हथियारों और चोरी किए गए सामान को न्यायालय में प्रस्तुत न किए जाने का संबंध है, विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि दो फरार अभियुक्तों को पुलिस द्वारा गिरफ्तार न किए जाने के कारण न्यायालय के समक्ष वह सामान प्रस्तुत नहीं किया जा सका । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय के उक्त निष्कर्ष का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि उक्त निष्कर्ष पूर्णतया न्यायोचित है, अतः इस आधार पर दोषसिद्धि में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि अभि. सा. 8 जिसकी मोटरसाइकिल 14 जून, 2004 को प्रातःकाल चोरी हो गई थी जो बाद में बरामद की गई और अभि. सा. 8 को सौंप दी गई, ने अपीलार्थी को अपराध का दोषी ठहराने में अभियोजन पक्षकथन का समर्थन किया है । विद्वान् काउंसेल ने **रफीक अहमद** उर्फ **रफी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में हाल ही में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय (जिसमें हममें से एक माननीय न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार सम्मिलित थे) का अवलंब अपनी दलील के समर्थन में लिया है ।

5. दोनों पक्षकारों द्वारा अभिवाक् किए गए मामले की उक्त पृष्ठभूमि के आधार पर जब हम वर्तमान मामले पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि अपीलार्थी को दोषसिद्ध किया गया था और दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए दंडादेश अधिरोपित किया गया था । जब हम अभिकथित उक्त अपराधों पर विचार करते हैं और अपीलार्थी के विरुद्ध उन्हें साबित किया गया पाते हैं, तब यही कहना होगा कि जब कोई व्यक्ति गंभीर चोरी के अपराध में आलिप्त होता है तब वह चोरी डकैती बन जाती है और जब डकैती हत्या के साथ कारित की जाती है और अन्य व्यक्तियों को गंभीर क्षतियां कारित होती हैं, तब यह दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन दंडनीय लूट बन जाती है । दूसरे

---

[1] (2011) 8 एस. सी. सी. 300.

शब्दों में यह कहा जा सकता है कि, जब पांच या पांच से अधिक व्यक्तियों द्वारा संयुक्त होकर चोरी का अपराध कारित किया जाता है तब इसे डकैती कहा जाता है और ऐसी डकैती का परिणाम हत्या तथा आहतों को गंभीर क्षति कारित किया जाना भी होता है, इसका परिणाम लूट का अपराध किया जाना भी होता है । दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अभियुक्तों के संयुक्त प्रयास से, जब वे उक्त अपराध में आलिप्त थे, प्रत्येक व्यक्ति डकैती और लूट का अपराध कारित करने वाला समझा जाएगा ।

परिणामतः, जब डकैती और लूट का ऐसा अपराध कारित किया जाता है, तब उसका परिणाम किसी व्यक्ति की मृत्यु, क्षति या सदोष अवरोध या तत्काल मृत्यु का भय या तत्काल क्षति या तत्काल सदोष अवरोध कारित किया जाना होता है । सारतः किसी व्यक्ति को दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन कारित किए गए अपराधों का दोषी ठहराने के लिए, उस व्यक्ति का पांच या अधिक व्यक्तियों के साथ मिलकर लूट में भाग लेना और इस प्रक्रिया में हत्या कारित करना और हत्या का प्रयास करना या घातक हथियार से गंभीर क्षति कारित करना ही पर्याप्त होगा । ऐसा अपराध कारित किए जाने की प्रक्रिया में यदि चाकू का प्रयोग किया गया है, तब वह घातक हथियार ही माना गया है ।

6. उपर्युक्त उपबंधों में वर्णित अपराध के उक्त मूल संघटकों को ध्यान में रखते हुए, हमने वर्तमान मामले पर विचार किया है । सबसे पहले इस पर विचार किया जाना है कि क्या दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन आने वाले अपराध अर्थात् पांच या पांच से अधिक व्यक्तियों का अपराध में भाग लेना बनता है या नहीं । वर्तमान मामले में, जैसा कि निचले न्यायालयों द्वारा मत व्यक्त किया गया है, केवल अपीलार्थी के मामले पर ही कार्यवाही की गई है, यद्यपि पांच में से तीन व्यक्तियों को अभिरक्षा में लिया गया बताया गया है । उच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार तीन व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया है और चूंकि अपीलार्थी के अतिरिक्त अन्य दो व्यक्ति किशोर थे, इसलिए यह बताया गया है कि उनका विचारण अलग से किया गया है । अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है कि अन्य दो अभियुक्त अर्थात् बालाजी और एक अन्य अभियुक्त जो अज्ञात है, पूर्व विचारण के दौरान फरार रहे हैं । पांच व्यक्तियों ने अपराध में भाग लिया है, इसे साबित करने के लिए, अभि. सा. 9 अर्थात् आहत के अभिसाक्ष्य का एकमात्र अवलंब लिया गया है और अभि. सा. 9 को

अभियुक्त द्वारा अनेक गंभीर क्षतियां कारित की गई हैं । अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी द्वारा यह कथन किया गया है कि घटना के दिन चार-पांच चोर उनके मकान में घुसे, अपने देवर के चिल्लाने की आवाज सुनकर वह बराबर वाले कमरे में गई और उसने उन व्यक्तियों को देखा कि वे चाकू, सरिए और लकड़ी के डंडों से उसके देवर पर हमला कर रहे हैं । इस साक्षी ने यह भी बताया है कि उन व्यक्तियों कि आयु 18 से 25 वर्ष के बीच थी और वे कमीज और पैंट पहने हुए थे, उनकी लंबाई औसत थी और उनका रंग सांवला था । इस साक्षी के अनुसार, अपने देवर शरद के शरीर पर किए गए हमलों को देखने के पश्चात् वह चिल्लाने लगी, तब अभियुक्त व्यक्ति उसकी ओर मुड़े और उन्होंने उसकी आंख, सिर, पीठ आदि पर क्षतियां पहुंचाते हुए हमला किया । तारीख 14 जून, 2004 को प्रातःकाल पुलिस दल के पहुंचने के पश्चात् और जब उसे अभि. सा. 10 द्वारा पुलिस यान से अस्पताल ले जाया जा रहा था, इस साक्षी ने अभि. सा. 10 को यह बताया कि चार-पांच व्यक्ति उक्त अपराध में आलिप्त हैं । तथापि, प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने अत्यंत स्पष्ट उत्तर दिया है कि इस अपराध में आलिप्त हुए व्यक्तियों की संख्या पांच है । जहां तक अपीलार्थी का संबंध है, अभि. सा. 9 ने बिना किसी संकोच के न्यायालय में उसकी शनाख्त की है और यह बताया है कि हमलावरों में से एक हमलावर वह भी है । अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 10) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तीन अभियुक्तों में से दो अभियुक्तों को गिरफ्तार करने के पश्चात्, जो मोटरसाइकिल से भाग रहे थे, उन्हें पुलिस थाने लाया गया जिन्होंने अपने नाम दीपक और राहुल भोंसले बताए और तीसरे व्यक्ति का नाम रवि शिंदे था, जो बचकर भाग गया था । राहुल भोंसले और रवि शिंदे को किशोर बताया गया है, उनका अलग से विचारण किया गया है ।

7. पंच साक्षी (अभि. सा. 4) ने अपीलार्थी द्वारा पहनी गई पैंट और कमीज, मोटरसाइकिल की चाबी, चाकू और 150/- रुपए की नकदी की पुष्टि की है जो अपीलार्थी के पास से बरामद हुई हैं और इन वस्तुओं को प्रदर्श 19 के रूप में चिन्हांकित किया गया है । उक्त साक्षी द्वारा यह बताया गया है कि तारीख 14 जून, 2004 को प्रातःकाल अर्थात् 9.00 बजे से 10.00 बजे के बीच उसकी मौजूदगी में अभियुक्त से वस्तुओं के अभिग्रहण की कार्यवाही की गई है । तथापि, इस साक्षी ने यह कथन किया है कि पुलिस ने उसकी मौजूदगी में अभियुक्त से लकड़ी का कोई सामान अभिरक्षा में नहीं लिया था, अतः यह दलील दी गई है कि इस साक्षी के वृत्तांत पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । अन्वेषण किए जाने

के पश्चात्, अभि. सा. 10 ने न्यायालय के समक्ष आरोपपत्र फाइल किया जिसमें यह अभिकथन किया गया है कि राहुल पुत्र रामभउ और रवि पुत्र लक्ष्मण (दोनों किशोर हैं) और अन्य दो अभियुक्त अर्थात् बालाजी और एक अन्य अज्ञात व्यक्ति (अंत के दो अभियुक्त फरार बताए गए हैं) के साथ अपीलार्थी 13/14 जून, 2004 की मध्य रात्रि में अपराध में आलिप्त था । विचार के लिए यह प्रश्न रह जाता है कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध उपर्युक्त साक्ष्य के आधार पर निचले न्यायालयों द्वारा निकाला गया यह निष्कर्ष स्वीकार्य है कि अपराधी दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों का दोषी है ।

8. आहत महिला (अभि. सा. 9) ने प्राथमिक रूप से अपने वृत्तांत में यह उल्लेख किया है कि 14 जून, 2004 की रात्रि में चार-पांच चोर उनके मकान में घुस आए और अपराध कारित किया । तथापि, प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने यह प्रकथन किया है कि उन व्यक्तियों की संख्या पांच थी । इस बात का कोई कारण नहीं है कि अभि. सा. 9 के वृत्तांत पर विश्वास क्यों नहीं किया जाना चाहिए । अपराध के संबंध में सबसे पहली सूचना इस महिला के पास थी जिसको अभियुक्तों द्वारा गंभीर क्षतियां पहुंची थीं । न्यायालय के समक्ष दिए गए उसके कथन में कोई विचलन नहीं है । यह सत्य है कि इस साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा के आरंभ में ही यह कथन किया था कि इस अपराध में चार या पांच व्यक्ति आलिप्त थे किन्तु अपराध में आलिप्त व्यक्तियों की संख्या के संबंध में किसी भी प्रकार का कोई भी संदेह, यदि कोई था, स्वयं अपीलार्थी के कहने पर स्पष्ट हो गया है क्योंकि उसने इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा में एक निश्चित प्रश्न पूछा था कि व्यक्तियों की संख्या कुल मिलाकर पांच थी । प्रतिपरीक्षा में ऐसा सटीक उत्तर अपीलार्थी पर बाध्य हो जाना चाहिए, अतः अभि. सा. 9 के उक्त वृत्तांत को त्यक्त करने का कोई कारण नहीं है । यह दलील दी गई है कि जब पुलिस ने तीन अभियुक्तों को गिरफ्तार किया था और चौथे अभियुक्त का नाम बालाजी सुनिश्चित किया था ; तब पांचवें अभियुक्त के नाम का पता लगाने में पुलिस की असफलता से अभियोजन पक्षकथन में गंभीर खामी पैदा हुई है । प्रथमदृष्ट्या, विद्वान् काउंसेल की दलील यद्यपि ठोस प्रतीत होती है, परंतु अभि. सा. 9 जिसे अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा क्षतियां पहुंचाई गई हैं और जिसने संपूर्ण घटना देखी है अर्थात् जिसने अपने देवर पर आरंभ में किया गया हमला देखा है जिससे मृतक की मृत्यु हुई और उसके पश्चात् स्वयं उस पर हमला किया गया था, के स्पष्ट कथन पर विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि इस साक्षी ने स्पष्ट रूप

से यह कथन किया है कि अपराध में आलिप्त व्यक्तियों की संख्या पांच थी, इसलिए हमारा यह मत है कि निचले न्यायालयों द्वारा इस साक्षी के कथन पर लिया गया अवलंब अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए कार्यवाही किए जाने हेतु पूर्णतया न्यायोचित है ।

9. अतः, हम अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की इस दलील से सहमत नहीं हो सकते कि दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराधों के लिए कम से कम पांच व्यक्तियों के आलिप्त होने के मूल संघटक का इस मामले में अभाव है । जब एक बार हम इस अड़चन से मुक्त हो जाते हैं और यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलार्थी के विरुद्ध किया गया अभियोजन पक्षकथन चलने योग्य है, तब विचार के लिए अगला प्रश्न यह उठता है कि क्या अभियुक्तों द्वारा कोई लूट कारित की गई है या नहीं । इस संबंध में, अभि. सा. 9 के पति अर्थात् अभि. सा. 2 का साक्ष्य महत्वपूर्ण है । अभि. सा. 2 ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि हमलावर 4,000/- से 5,000/- रुपए की नकदी तथा अभि. सा. 9 द्वारा उसके गले और हाथों में पहने गए आभूषण लूट कर ले गए थे । यह सत्य है कि अभि. सा. 9 ने अपने शरीर से न तो नकदी और न ही आभूषण छीनने का निर्देश किया है । अभि. सा. 2 उस समय मौजूद नहीं था जब घटना घटित हुई थी । एक सुसंगत तथ्य जिस पर विचार किया जाना चाहिए, यह है कि अभि. सा. 9 को गंभीर रूप से क्षतियां पहुंची थीं । वास्तव में, विचारण न्यायालय के निर्णय से यह प्रकट होता है कि प्रदर्श 28 से जो कि अभि. सा. 2 की मौजूदगी में अभिलिखित पंचनामा है, यह प्रकट होता है कि कमरे में सभी जगह रक्त फैला हुआ था और कपबोर्ड खुला हुआ पाया गया था तथा परदे इधर-उधर बिखरे हुए थे और घरेलू सामान फैला हुआ पड़ा था और खिड़की बलपूर्वक खोली गई थी जो कि टूटी हुई पाई गई और इस तथ्य पर निचले न्यायालय द्वारा विश्वास भी किया गया है जिसने यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों ने आहत से नकदी और आभूषण मृतक शरद की हत्या कारित करने के दौरान छीने थे । अभि. सा. 9 इतने गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त हुई थी कि उसे घटना के दो से तीन मास तक अस्पताल में भर्ती रहना पड़ा । वास्तव में, अभि. सा. 9 की शारीरिक दशा को देखते हुए, एक प्रक्रम पर इस साक्षी का कथन अभिलिखित किए जाने के लिए कमीशन नियुक्त किया गया था यद्यपि बाद में ऐसा नहीं किया गया । अतः, अपीलार्थी द्वारा गंभीर रूप से क्षतिग्रस्त साक्षी की परीक्षा की गई और चोरी किए गए

सामान को हटाने से संबंधित पर्ची और अभि. सा. 2 के स्पष्ट साक्ष्य के होने पर जो कि कोई और नहीं अपितु उसका पति है, उसने (अभि. सा. 2) स्पष्ट रूप से उस सामान के संबंध में कथन किया है जो अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा चोरी किया गया था, अभि. सा. 2 की प्रतिपरीक्षा में चोरी किए गए सामान से संबंधित किसी भी साक्ष्य के अभाव में, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि इस मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर, निचले न्यायालयों के लिए यह अभिनिर्धारित करने के लिए उक्त साक्ष्य पर्याप्त था कि अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों द्वारा वास्तव में चोरी कारित की गई है । अपराध में आलिप्त अभियुक्तों की संख्या के संबंध में उक्त अपराध और शरद की हत्या कारित किए जाने और अभि. सा. 9 को गंभीर क्षतियां पहुंचने से दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से गठित होता है ।

10. यदि हम मृतक की मृत्यु और अभि. सा. 9 को पहुंची गंभीर क्षतियों के प्रश्न पर विचार करें, और शवरीक्षण करने वाले चिकित्सक (अभि. सा. 1) जिसने अभि. सा. 9 की भी चिकित्सा परीक्षा की है के साक्ष्य पर विचार करें जिसमें उसने यह उल्लेख किया है कि मृतक के शरीर पर 11 क्षतियां कारित की गई थीं, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मृत्यु का कारण निचले जबड़े में अस्थि भंग के परिणामस्वरूप मसूड़ों में श्लेषमा का विदीर्ण होकर रक्त निकलना, सिर में क्षति कारित होना, हृदयगति रुक जाना और श्वासावरोध है । अभि. सा. 1 ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह भी कथन किया है कि अभि. सा. 9 के शरीर पर पाई गई क्षतियों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि क्षतियां गंभीर प्रकृति की हैं । अभि. सा. 9 को पहुंची क्षतियों की प्रकृति का मूल्यांकन करने के लिए निम्न प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :–

> "1. ललाट के दाईं ओर 3 सें. मी. × 2 सें. मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई 10 सें.मी. है और तेज धार वाले हथियार से कारित किया गया है ।
>
> 2. दाएं नेत्र के दाईं ओर 6 सें. मी. × 2 सें. मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई 2 सें. मी. है और तेज धार वाले हथियार से कारित किया गया है ।
>
> 3. गाल पर 3 सें. मी. × 1 सें. मी. माप का छिन्न घाव जिसकी गहराई 1 सें. मी. है और तेज धार वाले हथियार से कारित

किया गया है ।

4. दाएं गाल पर और अधो-कक्षीय भाग में 6 सें. मी. × 5 सें. मी. माप का गुमटा पाया गया है जो किसी कठोर और कुंद आयुध से कारित किया गया है ।

5. निचले जबड़े में अस्थिभंग पाया गया है, जो जबड़े के मध्यम में है तथा निचला सम्मुख-दंत अपनी जगह से ढीला हो गया है, क्षति की प्रकृति गंभीर है और यह क्षति कठोर और कुंद आयुध से कारित की जा सकती है ।

मेरी राय में सभी क्षतियां 6 घंटों के भीतर कारित की गई हैं, रोगी को अतिरिक्त व्यवस्था और उपचार के लिए सरकारी मेडिकल कालेज अस्पताल, औरंगाबाद भेजा गया था । जारी किए गए प्रमाणपत्र पर मेरे हस्ताक्षर हैं । प्रमाणपत्र की अंतर्वस्तु उचित है । प्रमाणपत्र प्रदर्श-12 है ।"

11. अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा के दौरान यह बात कही गई थी कि मृतक के शरीर पर पाई गई क्षतियां जिनका उल्लेख प्रदर्श-11 के अधीन किया गया है, गंभीर मोटरयान दुर्घटना में कारित हो सकती हैं और अभि. सा. 1 द्वारा सम्यक् रूप से इस बात से इनकार किया गया है । अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा में यह भी उल्लेख किया गया है कि जब अभि. सा. 9 को उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया था, तब वह बोलने की स्थिति में नहीं थी और उसकी हालत नाजुक थी । अभि. सा. 1 ने यहां भी इस बात से इनकार किया है कि अभि. सा. 9 को कारित क्षतियां धातु की चादर के टकराने से भी कारित हो सकती हैं । इसके अतिरिक्त अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा से कुछ भी प्रकट नहीं हो पाया है । न्यायालय के समक्ष की गई अपनी प्रतिपरीक्षा में अभि. सा. 9 ने न्यायालय को अपने चेहरे पर आई क्षति का निशान दिखाया जिसे विचारण न्यायालय द्वारा सम्यक् रूप से देखा गया । उक्त परिस्थिति में, अन्य किसी भी प्रतिकूल साक्ष्य के अभाव में मृतक शरद की हत्या तथा अभि. सा. 9 को पहुंची गंभीर क्षतियां किसी भी संविवाद के परे हैं । उक्त परिस्थितियों में अभि. सा. 9 के पति अर्थात् अभि. सा. 2 के साक्ष्य का लिया गया अवलंब पूर्णतया न्यायोचित है जिसने अभियुक्तों द्वारा कारित किए गए अपराध में संपत्ति की हानि के संबंध में भी ब्यौरे दिए हैं । अतः अपीलार्थी के विरुद्ध अन्य 4 अभियुक्तों के साथ अभिकथित अपराध में आलिप्त होने के लिए दंड संहिता की धारा 395, 396 और 397 के अधीन दोषसिद्धि साबित पाई

जाती है और चूंकि उच्च न्यायालय द्वारा इस दोषसिद्धि की पुष्टि की गई है इसलिए इसमें किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

12. जहां तक **मोहम्मद** (उपरोक्त) वाले मामले में अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय का संबंध है, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि शनाख्त परेड की अनुपस्थिति में आहत द्वारा न्यायालय में की गई अभियुक्त की शनाख्त पर विश्वास नहीं किया जा सकता । ऐसा अभिनिर्धारित करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिलिखित किया है कि यद्यपि इस संबंध में कोई भी कमी नहीं पाई गई है कि उक्त साक्षी ने अभियुक्तों के नामों का उल्लेख नहीं किया है क्योंकि वह अभियुक्तों को पहले से नहीं जानता था, ऐसे अभियुक्तों का हुलिया न बताने की असफलता, उसकी जेब से नकदी का निकाला जाना और शनाख्त परेड का न कराया जाना ऐसा साक्ष्य है जिसका अवलंब नहीं लिया जा सकता है । उक्त विनिश्चय मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर किया गया है । इसके प्रतिकूल, शनाख्त परेड न कराए जाने पर भी, अभि. सा. 9 के कथन को स्वीकार करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों से वर्तमान मामले का पूर्ण रूप से समर्थन होता है । उच्च न्यायालय ने **दाना यादव** उर्फ **दाहू और अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[1], **साइमन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] और **दया सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[3] वाले मामलों में किए गए विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया है जो इस मुद्दे के विपरीत हैं । अतः, विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिया गया उक्त विनिश्चय से अपीलार्थी को कोई सहायता नहीं मिल सकती । **सूरज पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में किए गए विनिश्चय के पैरा 14 में शनाख्त परेड कराए जाने पर बल देते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि साक्षी द्वारा शनाख्त परेड कराए जाने का अवसर अभियुक्त को यथासंभव शीघ्र दिया जाना चाहिए जो कि इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि साक्षी की स्मरण शक्ति समय के बीतने के साथ-साथ दुर्बल होती जाती है । शनाख्त परेड कराए जाने के महत्व से संबंधित उक्त विनिश्चय में अधिकथित सिद्धांत के बारे में दो राय नहीं हो सकती हैं ।

13. वर्तमान मामले में, हमने यह मत विस्तारपूर्वक व्यक्त किया है कि किस प्रकार अपीलार्थी ने जो अभि. सा. 9 अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों

---

[1] (2002) 7 एस. सी. सी. 295.

[2] (2004) 2 एस. सी. सी. 694.

[3] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1188.

द्वारा आहत हुई है जिन्होंने उसे ऐसी गंभीर क्षतियां कारित की हैं जिनसे लंबे समय तक वह अपना शरीर हिला भी नहीं सकती थी और जिसने अपीलार्थी और अन्य अभियुक्तों को अपराध कारित करते हुए देखा था कि उन्होंने उसके देवर की बुरी तरह पिटाई करके हत्या की है और उसकी पीट-पीटकर हत्या करने के पश्चात् उन्होंने अभि. सा. 9 पर भी गंभीर रूप से हमला किया जिससे, अभि. सा. 1 के अनुसार, अभि. सा. 9 काफी समय तक अपने शरीर को हिला भी नहीं सकती थी । वास्तव में, विचारण न्यायालय ने गहराई से यह विचार किया है कि अभि. सा. 9 ऐसी स्थिति में आ गई थी जहां से उसने अपीलार्थियों और अन्य अभियुक्तों के आचरण को अति निकट से देखा था इसलिए इस पर संदेह करने की कोई गुंजाइश नहीं है कि अभि. सा. 9 ने विचारण के दौरान न्यायालय में अपीलार्थी की बिना संकोच शनाख्त की है । अभि. सा. 9 ने अपने साक्ष्य में सभी अभियुक्तों के हुलिए और उनके पहने हुए कपड़ों का उल्लेख किया है तथा उनकी कद-काठी का भी वर्णन किया है । अतः, अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय से अपीलार्थी को इस संबंध में कोई सहायता नहीं मिल सकती है जबकि उच्च न्यायालय द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चय से अभियोजन पक्षकथन का पूर्ण रूप से समर्थन होता है ।

14. हमारे उपरोक्त मत पर विचार करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि इस अपील में कोई सार नहीं है, अपील असफल होती है और यह खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अस./अनू.

**भावना गर्ग और एक अन्य**

बनाम

**दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य**

तथा

**कोपल रोहतगी**

बनाम

**दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य**

5 सितम्बर, 2012

**न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक और न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 – चिकित्सा पाठ्यक्रम – प्रवेश – केन्द्रीय पूल के लिए स्थानों का आरक्षण – चूंकि चिकित्सा पाठ्यक्रमों में केन्द्रीय पूल के अधीन प्रवेश देने हेतु स्थानों को आरक्षित करने का उद्देश्य उन राज्यों, संघ राज्य क्षेत्रों की अपेक्षाओं को पूरा करना है जिनके अपने कोई चिकित्सा महाविद्यालय नहीं है, इसलिए भौगोलिक या अन्य युक्तिसंगत आधार पर स्थान आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार की नीति को इस आधार पर असांविधानिक नहीं कहा जा सकता है कि स्त्रोतों के वर्गीकरण का उसके उद्देश्य से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 [सपठित भारतीय चिकित्सा परिषद् विनियमों का विनियम 5] – चिकित्सा पाठ्यक्रम में केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश – केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थियों को सामान्य चिकित्सा प्रवेश परीक्षा देना आवश्यक नहीं है क्योंकि उनका चयन उस स्त्रोत से आवेदन करने वाले अभ्यर्थियों में से योग्यता के आधार पर किया जाना है तथा इस प्रकार किए गए चयन को ऐसे अभ्यर्थियों द्वारा चुनौती नहीं दी जा सकती है जिन्होंने इस पूल से प्रवेश पाने की ईप्सा नहीं की है ।**

**संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 और अनुच्छेद 15 – चिकित्सा शिक्षा – केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश – यद्यपि केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थियों को**

**सामान्य चिकित्सा प्रवेश परीक्षा देना आवश्यक नहीं है तथापि, प्रवेश परीक्षा में असफल रहने वाले अभ्यर्थियों को इस पूल के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए और केन्द्रीय सरकार को इस पूल के हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों में हुए विकास को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का पुनर्विलोकन करना चाहिए ।**

दिल्ली विश्वविद्यालय ने शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए स्नातकपूर्व डिग्री पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए एक सूचना बुलेटिन जारी किया था । बुलेटिन के पैरा 2.1.1 में यह कहा गया था कि विश्वविद्यालय तीन चिकित्सा महाविद्यालयों, अर्थात् लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज (एल. एच. एम. सी.), मौलाना आजाद मेडीकल कालेज (एम. ए. एम. सी.) और यूनिवर्सिटी कालेज आफ मेडीकल साइंसिज़ (यू. सी. एम. सी.) में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम का संचालन करता है । बुलेटिन के पैरा 2.1.1 में आगे यह कहा गया था कि एल. एच. एम. सी. में केवल महिला अभ्यर्थियों को प्रवेश दिया जाना था । बुलेटिन के पैरा 2.1.2 में यह कहा गया था कि 15 प्रतिशत स्थानों के लिए अभ्यर्थियों का चयन इस न्यायालय के निदेशानुसार केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा आयोजित परीक्षा के परिणाम के आधार पर सीधे स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय (डी. जी. एच. एस.) द्वारा किया जाना था । बुलेटिन का पैरा 2.1.3 भारत सरकार के नामनिर्देशितियों (एन. जी. ओ. आई.) द्वारा स्थानों पर दिए जाने वाले प्रवेश के संबंध में है और उसमें यह कहा गया है कि उन अभ्यर्थियों को, जो इस प्रवर्ग के स्थानों पर प्रवेश के लिए विचार किए जाने के इच्छुक हैं, दिल्ली यूनिवर्सिटी मेडिकल एंड डेंटल एंट्रेन्स टैस्ट (डी. यू. एम. ई. टी.) में बैठने की आवश्यकता नहीं है और वे बुलेटिन के परिशिष्ठ-II में सूचीबद्ध प्राधिकारियों से सीधे पत्राचार करेंगे । बुलेटिन के पैरा 2.1.6 में सत्र 2011-2012 के लिए स्नातकपूर्व पाठ्यक्रमों में कुल स्थानों की संख्या के विवरण से यह दर्शित होता है कि एल. एच. एम. सी. में 150 स्थानों में से 30 स्थान और एम. ए. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 200 स्थानों में से 6 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित थे । इस प्रकार विश्वविद्यालय के तीन सरकारी महाविद्यालयों में एम. बी. बी. एस. के कुल 500 स्थानों में से 36 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित हैं । बुलेटिन में आगे यह उपबंधित है कि डी. जी. एच. एस. द्वारा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा आयोजित परीक्षा के आधार पर सीधे भरे जाने वाले 15 प्रतिशत स्थानों और एन. जी. ओ. आई. द्वारा भरे जाने

वाले स्थानों के अतिरिक्त अन्य सभी अभ्यर्थियों को डी. यू. एम. ई. टी. में बैठना है और एम. बी. बी. एस. में उनका प्रवेश उस प्रवर्ग में जिसमें उन्होंने आवेदन किया है, उनके योग्यता-क्रम के आधार पर किया जाएगा । अपीलार्थियों ने सामान्य महिला प्रवर्ग अभ्यर्थियों के रूप में आवेदन किया और डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा दी और उसे उत्तीर्ण किया । तथापि, उन अभ्यर्थियों की योग्यता सूची में, जिन्होंने डी. यू. एम. ई. टी. उत्तीर्ण किया था, अपीलार्थियों के निम्न रैंक के कारण उन्हें विश्वविद्यालय के अधीन तीन सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में किसी भी स्थान पर प्रवेश नहीं मिल सका था । इससे व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं फाइल कीं जिनमें बुलेटिन को उस सीमा तक अभिखंडित करने का निदेश देने की प्रार्थना की गई जहां तक उसमें एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 150 स्थानों में से 30 स्थान एन. जी. ओ. आई. द्वारा भरे जाने का उपबंध है और प्राधिकारियों को यह निदेश देने की प्रार्थना की गई कि शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के लिए नियत एम. बी. बी. एस. के इन 30 स्थानों को सामान्य प्रवर्ग के अभ्यर्थियों में से भरा जाए और अपीलार्थियों के संबंध में इन 30 स्थानों पर प्रवेश के लिए सामान्य प्रवर्ग के अभ्यर्थियों के रूप में विचार किया जाए । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में इतने अधिक 30 स्थानों को आरक्षित करना संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है और भारत सरकार द्वारा 30 स्थानों के लिए अभ्यर्थियों की योग्यता का अवधारण करने के लिए कोई सामान्य प्रवेश परीक्षा आयोजित किए बिना उन्हें नामनिर्देशित करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया स्नातक चिकित्सा परीक्षा, 1997 के संबंध में भारतीय चिकित्सा परिषद् के विनियमों के प्रतिकूल थी । उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश में यह अभिनिर्धारित किया कि कुमारी चित्रा घोष और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने कतिपय प्रवर्गों के विद्यार्थियों के लिए किए गए स्थानों के आरक्षण को इस आधार पर दी गई चुनौती पर विचार किया है कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है और यह अभिनिर्धारित किया है कि वह आरक्षण सांविधानिक रूप से विधिमान्य है । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि चूंकि भारत सरकार द्वारा एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के 30 स्थानों पर नामनिर्देशन पहले ही किया जा चुका है और नामनिर्देशित विद्यार्थियों ने प्रवेश ले लिया है और उनका पाठ्यक्रम

चल रहा है इसलिए उनके प्रवेश में विघ्न डालना समुचित नहीं हो सकता है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि अपीलार्थी ने जून, 2011 में रिट याचिकाएं फाइल की थीं और उन रिट याचिकाओं का विनिश्चय 30 सितम्बर, 2011 तक नहीं किया जा सका था जो कि वह अंतिम तारीख थी जिसके भीतर एक अन्य निर्णय में इस न्यायालय के निदेशों के अनुसार शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश पूरा किया जाना था और इसलिए अपीलार्थियों को तारीख 30 सितम्बर, 2011 के पश्चात् कोई अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता था । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलों का निपटारा करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – केन्द्रीय सरकार ने एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 260 स्थान केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित रखे हैं और उन स्रोतों को वर्गीकृत किया है जिनसे उन 260 स्थानों पर भौगोलिक और अन्य आधार पर प्रवेश दिए जाने थे । अपीलार्थियों द्वारा यह नहीं दर्शाया गया है कि उन स्रोतों के वर्गीकरण का, जिनसे प्रवेश दिए जाने हैं, केन्द्रीय सरकार की नीति द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित उद्देश्यों से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है । अतः, कुछ स्थानों को भौगोलिक और कुछ अन्य तर्कसंगत आधार पर आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार की नीति की विधिमान्यता और सांविधानिकता को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । तथापि, परिवर्तित परिस्थितियों में, जिनकी चर्चा इस निर्णय में इसमें इसके पश्चात् की गई है, इतने अधिक 260 स्थानों को आरक्षित करना न्यायोचित नहीं हो सकता है । (पैरा 11)

तदनुसार, वे स्थान जो किसी विशिष्ट स्रोत अर्थात्, हिताधिकारी राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के लिए आरक्षित हैं, उन अभ्यर्थियों की योग्यता के आधार पर चयन द्वारा भरे जाने हैं जिन्होंने उस विशिष्ट स्रोत, अर्थात् उस हिताधिकारी राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के अभ्यर्थियों के रूप में आवेदन किया है । इस प्रकार, इन अभ्यर्थियों को, जो इस संबंध में पृथक् स्रोत गठित करते हैं, जिनमें से उन स्रोतों के लिए आबंटित स्थानों पर प्रवेश किया जाना है, डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा देना आवश्यक नहीं है । (पैरा 12)

इस प्रकार, एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर अभ्यर्थियों का चयन या तो संयुक्त प्रवेश परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर या 10 + 2 परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर किया गया है । एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में जहां अर्हक परीक्षा का संचालन एक

विश्वविद्यालय/बोर्ड/परीक्षा निकाय करता है वहां अर्हक परीक्षा में भौतिक शास्त्र, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान और अंग्रेजी में प्राप्त अंकों के आधार पर और जहां अर्हक परीक्षा का संचालन एक से अधिक विश्वविद्यालय/बोर्ड/ परीक्षा निकाय करते हैं, वहां प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा के आधार पर योग्यता का अवधारण करने का उपबंध है । जब तक कोई ऐसा अभ्यर्थी जिसने किसी आबंटित स्थान के लिए आवेदन किया था और जिसका नामनिर्दिष्ट करने के लिए चयन नहीं किया गया था, न्यायालय में नहीं आता और न्यायालय के समक्ष यह दर्शित करने के लिए सामग्री पेश नहीं करता कि चयन एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार नहीं किया गया है या चयन करते समय उसकी योग्यता को अनदेखा किया गया है तब तक न्यायालय चयन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । इस मामले में, उन अभ्यर्थियों ने, जिन्होंने हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/ अभिकरणों को आबंटित स्थानों के लिए आवेदन किया था, अपनी इस शिकायत के साथ न्यायालय में समावेदन नहीं किया है कि उनकी योग्यता को अनदेखा किया गया है या चयन एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार नहीं किया गया है । इसके विपरीत, अपीलार्थी, जिन्होंने एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों के लिए आवेदन नहीं किया था, इस न्यायालय के समक्ष अपनी यह शिकायत लेकर आए हैं कि उन 30 स्थानों में से कुछ स्थानों पर उनका चयन किया जाना चाहिए था और उन्हें प्रवेश दिया जाना चाहिए था । अपीलार्थी, जिन्होंने एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों के लिए आवेदन नहीं किया है, एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों पर अभ्यर्थियों के चयन को इस आधार पर चुनौती नहीं दे सकते थे कि इन आरक्षित स्थानों पर नामनिर्देशन के लिए चयन करते समय एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में यथा-उपबंधित योग्यता पर विचार नहीं किया गया है । अतः, भले ही कुछ विद्यार्थियों का एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार यथा-अवधारित योग्यता का कड़ाई से पालन किए बिना चयन किया गया है फिर भी हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उनके प्रवेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं । तथापि, यदि दो सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों, अर्थात् एल. एच. एम. सी और एम. ए. एम. सी. में शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के कोटे में कोई स्थान रिक्त हैं तो इन रिक्त स्थानों पर याचियों को शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 के दौरान डी. यू. एम. ई. टी. परीक्षा 2011-2012 में उनकी

योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाना चाहिए । (पैरा 14)

जिन अभ्यर्थियों ने एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों के कोटे के अधीन आवेदन किया है वे ऐसे पृथक् स्रोत गठित करते हैं जिनमें से प्रवेश दिया जाना है और उन्हें डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा देना आवश्यक नहीं है । अतः, भले ही वे डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हो गए हैं वे अब भी एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश दिए जाने के हकदार हैं यदि उनका उन सभी अभ्यर्थियों में से, जिन्होंने पूर्वोक्त पृथक् स्रोतों से प्रवेश के लिए आवेदन किया था, योग्यता के आधार पर चयन हो जाता है । तथापि, यदि डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हुए अभ्यर्थियों को किसी पृथक् प्रवेश स्रोत के माध्यम से प्रवेश दिया जाता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में हुआ है तो इसके परिणामस्वरूप उन विद्यार्थियों के बीच काफी ईर्ष्या पैदा हो सकती है जिन्होंने डी. यू. एम. ई. टी. तो उत्तीर्ण किया है किन्तु योग्यता सूची में उनके कम रैंक के कारण उन्होंने एम. बी. बी. एस. में किसी स्थान पर प्रवेश प्राप्त नहीं किया है । (पैरा 15)

परिणामस्वरूप, यह अभिनिर्धारित किया जाता है - (i) कि बुलेटिन, जहां तक उसमें एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए 30 स्थान आरक्षित किए गए हैं, संविधान के अधिकारातीत नहीं है और जहां तक उसमें इन 30 स्थानों पर प्रवेश पाने वाले अभ्यर्थियों को डी. यू. एम. ई. टी. देने से छूटप्राप्त की गई, वह एम. सी. आई. विनियमों के अधिकारातीत नहीं है । (ii) कि हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों द्वारा ऐसे विद्यार्थियों का चयन करते समय जो संबंधित राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के लिए आरक्षित या आबंटित स्थानों के लिए आवेदन करते हैं, एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में एकमात्र योग्यता के आधार पर प्रवेश देने संबंधी एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के उपबंधों का अनुसरण किया जाना होगा । (iii) कि शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 से एल. एच. एम. सी., एम. ए. एम. सी. और यू. सी. एम. एस. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित किसी भी स्थान पर ऐसे किसी विद्यार्थी को प्रवेश नहीं दिया जाएगा जो डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हो गया है । (iv) कि शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 से आगे एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों के लिए आवेदन करने वाले अभ्यर्थी को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम अंक प्राप्त करने होंगे, जैसा कि संशोधित एम. सी. आई. विनियमों में उपबंध किया गया है और व्यापक परिचालन वाले समाचारपत्रों में विज्ञापन के माध्यम से आवेदकों को बुलाने के पश्चात् योग्यता के आधार पर प्रवेश किए जाएंगे ।

(v) कि केन्द्रीय सरकार ऐसे सरकारी और प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों का पुनर्विलोकन करेगी जो इसी बीच राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं, जिन्हें एन. जी. ओ. आई. के कोटे के अधीन स्थान आबंटित किए जा रहे हैं और यदि उन्हें यह पता चलता है कि इन राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए अतिरिक्त प्रवेश क्षमता सृजित की गई है तो केन्द्रीय सरकार इन राज्यों में शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 से एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित किए जाने वाले स्थानों की संख्या के संबंध में फिर से विनिश्चय करेगी । (vi) कि यदि शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए एल. एच. एम. सी. और एम. ए. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के कोटे में स्थान खाली हैं तो इन खाली स्थानों पर याचियों को शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 में डी. यू. एम. ई. टी. 2011-2012 में उनकी योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाएगा । (पैरा 18)

## निर्दिष्ट निर्णय

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2012] | 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4073 : **आशा** बनाम **पंडित बी. डी. शर्मा स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय और अन्य** ; | 6 |
| [2011] | (2011) 7 एस. सी. सी. 179 : **इंडियन मेडीकल एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ** ; | 7,16 |
| [2010] | (2010) 7 एस. सी. सी. 234 : **भारत संघ** बनाम **रमेश राम और अन्य** ; | 7,16 |
| [2005] | (2005) 2 एस. सी. सी. 65 : **मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ; | 5 |
| [2002] | (2002) 8 एस. सी. सी. 1 : **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य** बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य** ; | 6,12,14 |
| [1998] | (1998) 4 एस. सी. सी. 1 : **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान** बनाम **संकाय संगम** ; | 7,16 |
| [1992] | (1992) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 217 : **इंदिरा साहनी** बनाम **भारत संघ** ; | 7,16 |

[1969] (1969) 2 एस. सी. सी. 228 :
**कुमारी चित्रा घोष और एक अन्य** बनाम
**भारत संघ और अन्य** । 5,6,9,10,12,14

**अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की सिविल अपील सं. 6304-6305 और 6306.**

2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7103 और 4299 में दिल्ली उच्च न्यायालय के तारीख 23 दिसम्बर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपीलें ।

**अपीलार्थियों की ओर से** सर्वश्री (सुश्री) इंदू मल्होत्रा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, मोहित गोयल, सिद्धांत गोयल, (सुश्री) चिनमई, मिश्रा सौरभ, साकेश कुमार, और (सुश्री) अनुराधा मुतातकर

**प्रत्यर्थियों की ओर से** सर्वश्री सिद्धार्थ लूथरा, अपर महासालिसिटर, अशोक भान, निदेश गुप्ता, ज्येष्ठ अधिवक्ता, आर. के. राठौड़, (सुश्री) सुषमा सूरी, (सुश्री) रेखा पांडेय, अमित कुमार, (सुश्री) रेखा बख्शी, अतुल कुमार, अविजीत मणि त्रिपाठी, मोहिन्दर जीत सिंह और डी. एस. मेहरा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. पटनायक ने दिया ।

**न्या. पटनायक –** इजाजत दी जाती है ।

2. ये अपीलें 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7103 और 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4299 में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के तारीख 23 दिसम्बर, 2011 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई हैं जिसके द्वारा आवेदकों को शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के अधीन आने वाले चिकित्सा महाविद्यालयों में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के मामले में अनुतोष प्रदान करने से इनकार कर दिया गया था ।

3. संक्षेप में तथ्य ये हैं कि दिल्ली विश्वविद्यालय ने शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए स्नातकपूर्व डिग्री पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए एक सूचना बुलेटिन जारी किया था । बुलेटिन का पैरा 2 एम. बी. बी. एस.

पाठ्यक्रम में प्रवेश के संबंध में था । बुलेटिन के पैरा 2.1.1 में यह कहा गया था कि विश्वविद्यालय तीन चिकित्सा महाविद्यालयों, अर्थात् लेडी हार्डिंग मेडीकल कालेज (एल. एच. एम. सी.), मौलाना आजाद मेडीकल कालेज (एम. ए. एम. सी.) और यूनिवर्सिटी कालेज आफ मेडीकल साइंसिज़ (यू. सी. एम. सी.) में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम का संचालन करता है । बुलेटिन के पैरा 2.1.1 में आगे यह कहा गया था कि एल. एच. एम. सी. में केवल महिला अभ्यर्थियों को प्रवेश दिया जाना था । बुलेटिन के पैरा 2.1.2 में यह कहा गया था कि 15 प्रतिशत स्थानों के लिए अभ्यर्थियों का चयन इस न्यायालय के निदेशानुसार केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा आयोजित परीक्षा के परिणाम के आधार पर सीधे स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय (डी. जी. एच. एस.) द्वारा किया जाना था । बुलेटिन का पैरा 2.1.3 भारत सरकार के नामनिर्देशितियों (एन. जी. ओ. आई.) द्वारा स्थानों पर दिए जाने वाले प्रवेश के संबंध में है और उसमें यह कहा गया है कि उन अभ्यर्थियों को, जो इस प्रवर्ग के स्थानों पर प्रवेश के लिए विचार किए जाने के इच्छुक हैं, दिल्ली यूनिवर्सिटी मेडिकल एंड डेंटल एंट्रेन्स टैस्ट (डी. यू. एम. ई. टी.) में बैठने की आवश्यकता नहीं है और वे बुलेटिन के परिशिष्ठ-II में सूचीबद्ध प्राधिकारियों से सीधे पत्राचार करेंगे । बुलेटिन के पैरा 2.1.6 में सत्र 2011-2012 के लिए स्नातकपूर्व पाठ्यक्रमों में कुल स्थानों की संख्या का विवरण दिया गया है । वह विवरण इसमें नीचे उद्धृत किया जाता है :–

| चिकित्सा महाविद्या-लय का नाम | डी. यू. एम. ई. टी. के आधार पर भरे जाने वाले स्थान | | | | डी. जी. एच. एस. द्वारा भरे जाने वाले स्थान | भारत सरकार के नामनिर्देशितियों द्वारा भरे जाने वाले स्थान | कुल स्थान |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम** | | | | | | | |
| | सामान्य | अनु. जाति | अनु. जन जाति | अन्य पिछड़े वर्ग | 15% कोटा | एन. जी. ओ. आई. | |
| एल. एच. एम. सी. | 55 | 19 | 10 | 14 | 22 | 30 | 150 |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| एम. ए. एम. सी. | 113 | 25 | 12 | 14 | 30 | 6 | 200 |
| यू. सी. एम. एस. | 66 | 19 | 9 | 34 | 22 | शून्य | 150 |
| कुल | 234 | 63 | 31 | 62 | 74 | 36 | 500 |

उपर्युक्त विवरण से यह दर्शित होता है कि एल. एच. एम. सी. में 150 स्थानों में से 30 स्थान और एम. ए. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 200 स्थानों में से 6 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित थे । उपर्युक्त विवरण से यह भी दर्शित होता है कि विश्वविद्यालय के तीन सरकारी महाविद्यालयों में एम. बी. बी. एस. के कुल 500 स्थानों में से 36 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित हैं । बुलेटिन में आगे यह उपबंधित है कि डी. जी. एच. एस. द्वारा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, नई दिल्ली द्वारा आयोजित परीक्षा के आधार पर सीधे भरे जाने वाले 15 प्रतिशत स्थानों और एन. जी. ओ. आई. द्वारा भरे जाने वाले स्थानों के अतिरिक्त अन्य सभी अभ्यर्थियों को डी. यू. एम. ई. टी. में बैठना है और एम. बी. बी. एस. में उनका प्रवेश उस प्रवर्ग में जिसमें उन्होंने आवेदन किया है, उनके योग्यता-क्रम के आधार पर किया जाएगा ।

4. अपीलार्थियों ने सामान्य महिला प्रवर्ग अभ्यर्थियों के रूप में आवेदन किया और डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा दी और उसे उत्तीर्ण किया । तथापि, उन अभ्यर्थियों की योग्यता सूची में, जिन्होंने डी. यू. एम. ई. टी. उत्तीर्ण किया था, अपीलार्थियों के निम्न रैंक के कारण उन्हें विश्वविद्यालय के अधीन तीन सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों में किसी भी स्थान पर प्रवेश नहीं मिल सका था । इससे व्यथित होकर, अपीलार्थियों ने दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 7103 और 2011 की रिट याचिका (सिविल) सं. 4299 फाइल की जिनमें बुलेटिन को उस सीमा तक अभिखंडित करने का निदेश देने की प्रार्थना की गई जहां तक उसमें एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 150 स्थानों में से 30 स्थान एन. जी. ओ. आई. द्वारा भरे जाने का उपबंध है और प्राधिकारियों को यह निदेश देने की प्रार्थना की गई कि शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के लिए नियत एम. बी. बी. एस. के इन 30 स्थानों को सामान्य प्रवर्ग के अभ्यर्थियों में से भरा जाए और अपीलार्थियों के संबंध में इन 30 स्थानों पर प्रवेश के लिए सामान्य प्रवर्ग के अभ्यर्थियों के

रूप में विचार किया जाए । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में इतने अधिक 30 स्थानों को आरक्षित करना संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है और भारत सरकार द्वारा 30 स्थानों के लिए अभ्यर्थियों की योग्यता का अवधारण करने के लिए कोई सामान्य प्रवेश परीक्षा आयोजित किए बिना उन्हें नामनिर्देशित करने के लिए अपनाई गई प्रक्रिया स्नातक चिकित्सा परीक्षा, 1997 के संबंध में भारतीय चिकित्सा परिषद् के विनियमों (जिन्हें संक्षेप में "एम. सी. आई." विनियम कहा गया है) के प्रतिकूल थी ।

5. उच्च न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय और आदेश में यह अभिनिर्धारित किया कि **कुमारी चित्रा घोष और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ ने कतिपय प्रवर्गों के विद्यार्थियों के लिए किए गए स्थानों के आरक्षण को इस आधार पर दी गई चुनौती पर विचार किया है कि वह संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है और यह अभिनिर्धारित किया है कि वह आरक्षण सांविधानिक रूप से विधिमान्य है । उच्च न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के पश्चात् व्यापक परिवर्तन हो गया है तथापि, केवल यह न्यायालय ही यह अभिनिर्धारित कर सकता है कि **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चयाधार असंगत हो गया है । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि चूंकि भारत सरकार द्वारा एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के 30 स्थानों पर नामनिर्देशन पहले ही किया जा चुका है और नामनिर्देशित विद्यार्थियों ने प्रवेश ले लिया है और उनका पाठ्यक्रम चल रहा है इसलिए उनके प्रवेश में विघ्न डालना समुचित नहीं हो सकता है । उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष भी निकाला कि अपीलार्थी ने जून, 2011 में रिट याचिकाएं फाइल की थीं और उन रिट याचिकाओं का विनिश्चय 30 सितम्बर, 2011 तक नहीं किया जा सका था जो कि वह अंतिम तारीख थी जिसके भीतर **मृदुल धर (अवयस्क) और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले निर्णय में इस न्यायालय के निदेशों के अनुसार शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश पूरा किया जाना था और इसलिए अपीलार्थियों को तारीख 30 सितम्बर, 2011 के पश्चात् कोई

---

[1] (1969) 2 एस. सी. सी. 228.

[2] (2005) 2 एस. सी. सी. 65.

अनुतोष मंजूर नहीं किया जा सकता था ।

6. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल सुश्री इंदू मल्होत्रा ने यह दलील दी कि **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय ने अपनी सुसंगति खो दी है चूंकि उपर्युक्त निर्णय के पश्चात्, जो वर्ष 1969 में दिया गया था, पिछली चार दशाब्दियों के दौरान चिकित्सा शिक्षा के प्रवेश में व्यापक परिवर्तन हुआ है । उसने यह दलील दी कि एम. सी. आई. विनियम और विशेषकर उसके विनियम 5 में यह आदिष्ट है कि चिकित्सा महाविद्यालयों में विद्यार्थियों का चयन केवल अभ्यर्थी की योग्यता के आधार पर किया जाएगा और योग्यता के अवधारण के लिए एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में अधिकथित मानदंड का पालन संपूर्ण देश में एकसमान रूप से किया जाना है । उसने यह दलील दी कि एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5(2) में यह उपबंधित है कि ऐसे राज्यों में, जिनमें अर्हक परीक्षा संचालित करने वाले एक से अधिक विश्वविद्यालय/बोर्ड/परीक्षा निकाय हैं, एक प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा आयोजित की जानी चाहिए जिससे कि एकसमान मूल्यांकन किया जा सके और एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5(4) में यह उपबंधित है कि अखिल भारतीय प्रकृति के संस्थानों के मामलों में प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा पूर्णतः आवश्यक है । उसने बलपूर्वक यह दलील दी कि विनियम 5 में प्रतियोगी परीक्षा आयोजित करने के संबंध में किसी अपवाद के बारे में उपबंध नहीं है और आरक्षित प्रवर्गों के अभ्यर्थियों के लिए भी, जिनमें 70 प्रतिशत असमर्थता वाले शारीरिक रूप से असुविधाग्रस्त अभ्यर्थी भी हैं, चिकित्सा पाठ्यक्रमों में प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा में बैठना आवश्यक है । उसने यह तर्क दिया कि इसलिए बुलेटिन में एन. जी. ओ. आई. अभ्यर्थियों को डी. यू. एम. ई. टी. में बैठने से छूटप्राप्त नहीं दी जानी चाहिए थी और वास्तव में एन. जी. ओ. आई. अभ्यर्थियों को इस प्रकार डी. यू. एम. ई. टी. में बैठने से छूट प्रदान करके बुलेटिन ने स्पष्ट रूप से एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 का अतिक्रमण किया है और इस आधार पर बुलेटिन का पैरा 2.1.3, जिसमें यह उपबंध है कि जो अभ्यर्थी एन. जी. ओ. आई. प्रवर्ग में प्रवेश के लिए विचार किए जाने के इच्छुक हैं उन्हें डी. यू. एम. ई. टी. में बैठने की आवश्यकता नहीं है, एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अधिकारातीत है । उसने यह दलील दी कि **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय के पश्चात् इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन और अन्य**

बनाम **कर्नाटक राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में भी इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त महाविद्यालयों में भी, जो संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) द्वारा गारंटीकृत उनके मूल अधिकार के अधीन प्रवेश के लिए अपने अभ्यर्थियों का चयन करने में अधिकतम स्वायतत्ता रखते हैं, वृत्तिक पाठ्यक्रमों में एकमात्र योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाना चाहिए । उसने यह दलील दी कि **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित भी किया है कि प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थियों की योग्यता का अवधारण या तो विश्वविद्यालय द्वारा या सरकार द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा और उसके बाद काउंसिलिंग के माध्यम से किया जा सकता है । उसने यह दलील दी कि एल. एच. एम. सी. कोई प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालय नहीं है बल्कि एक सरकारी महाविद्यालय है और प्रवेश के मामले में उसे काफी कम स्वायतत्ता प्राप्त है और एल. एच. एम. सी. में सभी 150 स्थानों पर, जिनमें एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थान भी हैं, किसी प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा या सामान्य प्रवेश परीक्षा में यथा-अवधारित योग्यता के आधार पर ही प्रवेश दिया जाना चाहिए था । उसने यह दलील दी कि इस विधि के विपरीत, जो अब इस क्षेत्र में विद्यमान है, शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के दौरान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर ऐसे चार अभ्यर्थियों को प्रवेश दिया गया है जो डी. यू. एम. ई. टी. परीक्षा में भी असफल रहे हैं । उसने इस संबंध में कि एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए चयन करते समय मानदंड केवल योग्यता होनी चाहिए, **आशा** बनाम **पंडित बी. डी. शर्मा स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय और अन्य**[2] (2012 की सिविल अपील सं. 5055) वाले मामले में इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय को उद्धृत किया ।

7. सुश्री मल्होत्रा ने आगे यह दलील दी कि अपीलार्थी एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित कोटे के अधीन प्रवेश का दावा नहीं कर रहे हैं बल्कि वे प्रतियोगी परीक्षा में अपनी योग्यता के आधार पर अभ्यर्थियों के सामान्य पूल वाले स्थानों पर प्रवेश के लिए दावा कर रहे हैं । इस संदर्भ में, उसने यह दलील दी कि एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित कोटा स्थानों के सामान्य पूल के लिए नियत स्थानों में से लिया गया है और यदि एन. जी. ओ. आई. कोटे में प्रवेश अविधिमान्य ठहराया जाता है तो ये स्थान सामान्य प्रवर्ग के अभ्यर्थियों में से उनकी योग्यता के आधार पर भरे

---

[1] (2002) 8 एस. सी. सी. 1.

[2] 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 4073.

जाने होंगे । उसने आगे यह दलील दी कि एन. जी. ओ. आई. के लिए कोटा संविधान के अनुच्छेद 15 के अधीन आरक्षण नहीं है किन्तु फिर भी एल. एच. एम. सी. में 150 स्थानों में से इतने अधिक 30 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित किए गए हैं और यह कोटा इतना अधिक है कि वह कुल स्थानों का 20 प्रतिशत बनता है । उसके अनुसार, जब ऐसे आरक्षण पर अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों/अन्य पिछड़े वर्गों के अभ्यर्थियों के पक्ष में किए गए स्थानों के आरक्षण के साथ विचार किया जाता है तो वह इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा **इंदिरा साहनी** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में सभी आरक्षित प्रवर्गों के लिए नियत अधिकतम प्रतिशतता से अधिक हो जाता है और वह असांविधानिक है । उसने **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान** बनाम **संकाय संगम**[2], **भारत संघ** बनाम **रमेश राम और अन्य**[3] तथा **इंडियन मेडीकल एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का भी अवलंब लिया ।

8. इसके उत्तर में, भारत संघ की ओर से उपस्थित होने वाले अपर महासालिसिटर श्री सिद्धार्थ लूथरा ने यह दलील दी कि भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों के कोटे के अधीन नामनिर्देशित किए जाने वाले अभ्यर्थियों के चयन के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं और इन दिशानिर्देशों से यह दर्शित होगा कि चयन अभ्यर्थियों की शैक्षणिक योग्यता के आधार पर किया जाना है । ये दिशानिर्देश भारत सरकार के स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय में संयुक्त सचिव द्वारा सभी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों को लिखे गए तारीख 9 दिसम्बर, 1986 के पत्र में अंतर्विष्ट हैं । उसने इसके अलावा भारत संघ द्वारा तारीख 16 जुलाई, 2012 को फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 4 का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि एन. जी. ओ. आई. के लिए केन्द्रीय पूल स्कीम के अधीन स्थान आबंटित करने का प्रयोजन यह है कि ऐसे राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के विद्यार्थियों को, जहां पर्याप्त चिकित्सा महाविद्यालय नहीं है, चिकित्सा शिक्षा के लिए सहारे की आवश्यकता है और रक्षा/अर्धसैनिक बलों के उन कार्मिकों के, जिन्होंने अपने जीवन का बलिदान किया है या जो युद्ध/आतंकवाद में स्थायी रूप से

---

[1] (1992) सप्ली. 3 एस. सी. सी. 217.

[2] (1998) 4 एस. सी. सी. 1.

[3] (2010) 7 एस. सी. सी. 234.

[4] (2011) 7 एस. सी. सी. 179.

निःशक्त हो गए हैं, आश्रितों को भी चिकित्सा शिक्षा के लिए इसी प्रकार के सहारे की आवश्यकता है । उसने आगे यह दलील दी कि केन्द्रीय पूल स्कीम राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों द्वारा नामनिर्देशित विद्यार्थियों के लिए उनके द्वारा दिए गए स्वैच्छिक अंशदान के आधार पर चलाई जाती है । उसने यह दलील दी कि ये स्थान केवल हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों को आबंटित किए जाते हैं और राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों, जैसे रक्षा मंत्रालय, गृह मंत्रालय, विदेश मंत्रालय और मानव संसाधन विकास मंत्रालय को भेजे गए आबंटन पत्रों में वे दिशानिर्देश अंतर्विष्ट हैं जिसमें पात्रता और केन्द्रीय पूल स्कीमों के अधीन विद्यार्थियों के चयन के समय अपनाई जाने वाली पद्धति उपदर्शित की गई है । उसने यह स्पष्ट किया कि हिताधिकारी राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण या तो राज्य स्तरीय प्रवेश परीक्षा के आधार पर या शैक्षणिक योग्यता के आधार पर पात्र अभ्यर्थियों की सूची तैयार करते हैं और केन्द्रीय पूल के उपलब्ध स्थानों के लिए काउंसिलिंग सत्रों का संचालन करते हैं और अभ्यर्थियों की सूची को अंतिम रूप देने के पश्चात् राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण सफल अभ्यर्थियों को प्रवेश के लिए प्रश्नगत चिकित्सा महाविद्यालय में रिपोर्ट करने के लिए सूचित करते हैं । उसने यह दलील दी कि इसलिए पात्र अभ्यर्थियों की योग्यता सूची तैयार करने में केन्द्रीय सरकार की वास्तव में कोई भूमिका नहीं है और उसकी भूमिका केवल राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों के लिए स्थान आबंटित करने तक ही सीमित है ।

9. श्री लूथरा ने यह दलील दी कि अपीलार्थियों द्वारा उठाए गए मुद्दों पर इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में विचार किया गया है किन्तु उन्हें केन्द्रीय सरकार के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । उसने यह दलील दी कि भारतीय चिकित्सा परिषद् ने स्नातक चिकित्सा शिक्षा विनियम, (संशोधन) 2012 द्वारा एम. सी. आई. विनियमों में संशोधन किया है और ये संशोधित विनियम 2013-2014 से आरंभ होने वाले शैक्षणिक वर्ष से लागू होंगे । उसने यह दलील दी कि एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के इन संशोधनों का पठन करने से यह दर्शित होगा कि किसी अभ्यर्थी के लिए किसी विशिष्ट वर्ष के लिए एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए पात्र होने की दृष्टि से उस शैक्षणिक वर्ष के लिए आयोजित एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम अंक प्राप्त करना आवश्यक होगा और ऐसे न्यूनतम अंक सामान्य अभ्यर्थियों के लिए 50 प्रतिशत और

अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों/अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 40 प्रतिशत होंगे ।

10. हमने पक्षकारों के विद्वान् काउन्सेल के निवेदनों पर विचार किया है और हम यह पाते हैं कि **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में तथ्य ये थे कि एल. एच. एम. सी. में 23 स्थान केन्द्रीय सरकार द्वारा निम्नलिखित प्रवर्गों के विद्यार्थियों के लिए आरक्षित रखे गए थे : –

"(क) दिल्ली के निवासी ....

(ख) (i) केन्द्रीय सरकार के ऐसे सेवकों के पुत्र/पुत्रियां, जो प्रवेश के समय दिल्ली में तैनात हैं ।

(ii) ऐसा अभ्यर्थी, जिसके पिता की मृत्यु हो गई है और वह ऐसे भाई/बहन पर पूर्णतः आश्रित है जो कि प्रवेश के समय केन्द्रीय सरकार का दिल्ली में तैनात एक सेवक है ।

(ग) नीचे विनिर्दिष्ट संघ राज्यक्षेत्रों के निवासियों के पुत्र/पुत्रियां जिनमें वहां रजिस्ट्रीकृत विस्थापित और अपने-अपने राज्यक्षेत्र के प्रशासन द्वारा प्रत्यायोजित व्यक्ति भी हैं –

(i) हिमाचल प्रदेश; (ii) त्रिपुरा; (iii) मणिपुर; (iv) नागा हिल्स; (v) एन. ई. एफ. ए. ; (vi) अंदमान ।

(घ) केन्द्रीय सरकार के विदेशों में भारतीय मिशनों में तैनात सेवकों के पुत्र/पुत्रियां ।

(ङ) सांस्कृतिक विद्वान्

(च) कोलम्बो योजना विद्वान्

(छ) थाइलैंड विद्वान्

(ज) जम्मू-कश्मीर राज्य के विद्वान् ।"

किसी भी आरक्षित स्थान में प्रवेश की ईप्सा करने वाले अभ्यर्थी ने अनिवार्य विषयों में न्यूनतम कुल 55 प्रतिशत अंक अवश्य प्राप्त किए हों । 23 स्थानों के इस आरक्षण को दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर चुनौती दी गई थी इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है और इसे नियमों के प्रतिकूल मानते हुए भी चुनौती दी गई थी । दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस चुनौती को नामंजूर कर

दिया और कुमारी चित्रा घोष ने इस न्यायालय में अपील की । इस न्यायालय की संविधान पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि केन्द्रीय सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट प्रवर्गों के अभ्यर्थियों के पक्ष में 23 स्थानों को आरक्षित करना सांविधानिक रूप से विधिमान्य था । **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का पैरा 9 इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है : –

> "9. केन्द्रीय सरकार ही चिकित्सा महाविद्यालय को चलाने का वित्तीय भार वहन करती है । वह पात्रता के लिए मानदंड अधिकथित करने के लिए स्वतंत्र है । इन परिस्थितियों की प्रकृति में संपूर्ण देश के विद्यार्थियों के लिए प्रवेश खुला रखना संभव नहीं है । सरकार को यह विनिश्चित करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता कि प्रवेश किन स्रोतों से किया जाएगा । वह आवश्यक रूप से नीति का प्रश्न है और वह अन्य बातों के साथ-साथ विशिष्ट राज्यक्षेत्रों के निवासियों और अन्य प्रवर्गों के व्यक्तियों की अपेक्षाओं के समग्र निर्धारण और सर्वेक्षण पर निर्भर करता है, जिनके लिए चिकित्सा शिक्षा की सुविधाएं उपलब्ध कराना आवश्यक है । यदि स्रोतों को, चाहे क्षेत्रीय, भौगोलिक या अन्य युक्तिसंगत आधार पर उचित रूप से वर्गीकृत किया जाता है तो वर्गीकरण करने की रीति और पद्धति में हस्तक्षेप करना न्यायालयों का कार्य नहीं है ।"

इस प्रकार, इस न्यायालय ने **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि केन्द्रीय सरकार, जो चिकित्सा महाविद्यालय चलाने के वित्तीय भार का वहन करती है, विशिष्ट क्षेत्रों के निवासियों और अन्य प्रवर्गों के व्यक्तियों की अपेक्षाओं के समग्र निर्धारण और सर्वेक्षण के आधार पर नीति संबंधी और उन स्रोतों के बारे में विनिश्चय करने के लिए स्वतंत्र हैं जिनसे चिकित्सा महाविद्यालय में प्रवेश किए जाने हैं और जब तक उन स्रोतों को चाहे क्षेत्रीय, भौगोलिक या अन्य युक्तिसंगत आधार पर उचित रूप से वर्गीकृत किया जाता है तब तक न्यायालय केन्द्रीय सरकार के नीति संबंधी विनिश्चय को इस आधार पर विखंडित नहीं करेगा कि इससे संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होता है ।

11. अब हम एन. जी. ओ. आई. के पक्ष में स्थान आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार के नीति-विषयक विनिश्चय की परीक्षा करेंगे । भारत संघ की ओर से फाइल किए गए तारीख 16 जुलाई, 2012 के शपथपत्र में यह कहा गया है कि ऐसे अनेक राज्य या संघ राज्यक्षेत्र हैं जिनमें अपने

चिकित्सा/दंत-चिकित्सा महाविद्यालय नहीं हैं और अधिकांश ऐसे राज्य उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में हैं और इन राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए और कुछ केन्द्रीय सरकार के मंत्रालयों/अभिकरणों के लिए और कुछ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य और परिवार कल्याण द्वारा एम. बी. बी. एस./बी. डी. एस. के स्थानों का एक केन्द्रीय पूल बनाया जा रहा है । शपथपत्र के साथ-साथ, हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों की सूची और शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/ मंत्रालयों/अभिकरणों के बीच केन्द्रीय पूल के स्थानों का वितरण भी दिया गया है जो कि इसमें इसके नीचे उद्धृत किया जाता है : –

| क्रम सं. | हिताधिकारी राज्य/ संघ राज्यक्षेत्र/ अभिकरण | 2011-12 | |
|---|---|---|---|
| | | एम. बी. बी. एस.. | बी. डी. एस |
| 1. | त्रिपुरा | 7 | 2 |
| 2. | मणिपुर | 24 | 2 |
| 3. | मिज़ोरम | 27 | 2 |
| 4. | मेघालय | 22 | 2 |
| 5. | सिक्किम | 8 | 2 |
| 6. | अरुणाचल प्रदेश | 26 | 2 |
| 7. | नागालैंड | 24 | 2 |
| 8. | लक्षद्वीप | 13 | 2 |
| 9. | अंदमान और निकोबार द्वीप | 18 | 2 |
| 10. | दमण और दीव | 7 | 2 |
| 11. | दादरा और नागर हवेली | 8 | 2 |
| 12. | जम्मू-कश्मीर | 4 | - |
| 13. | रक्षा मंत्रालय | 25 | 2 |
| 14. | मंत्रिमंडल सचिवालय (एस.एस.एफ., | 5 | 1 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | आर.ए.डब्ल्यू., ए.आर.सी. निदेशालय के लिए) | | |
| 15. | गृह मंत्रालय (सीमा सुरक्षा बल, के.रि.पु.ब., भारत तिब्बत सीमा पुलिस, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल, असम राइफल्स, सौराष्ट्र सीमा बल इत्यादि के लिए) | 7 | 2 |
| 16. | विदेश मंत्रालय<br>(i) विदेशों में तैनात भारतीय मिशन कर्मचारिवृन्द के लिए<br>(ii) स्वतः वित्तपोषित विदेशी छात्रों के लिए | <br>4<br>26 | <br>1 |
| 17. | मानव संसाधन विकास मंत्रालय (तिब्बती शरणार्थियों के लिए) | 1 | - |
| 18. | भारतीय बाल कल्याण परिषद् (राष्ट्रीय वीरता पुरस्कार विजेताओं के लिए) | 2 | - |
| 19. | गृह मंत्रालय (सिविल आतंकवाद के शिकार) | 2 | - |
| | **कुल** | 260 | 28 |

अतः, केन्द्रीय सरकार ने एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में 260 स्थान केन्द्रीय पूल के लिए आरक्षित रखे हैं और उन स्रोतों को वर्गीकृत किया है जिनसे उन 260 स्थानों पर भौगोलिक और अन्य आधार पर प्रवेश दिए जाने थे । अपीलार्थियों द्वारा यह नहीं दर्शाया गया है कि उन स्रोतों के वर्गीकरण का, जिनसे प्रवेश दिए जाने हैं, केन्द्रीय सरकार की नीति द्वारा प्राप्त किए जाने के लिए ईप्सित उद्देश्यों से कोई तर्कसंगत संबंध नहीं है । अतः, कुछ स्थानों को भौगोलिक और कुछ अन्य तर्कसंगत आधार पर आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार की नीति की विधिमान्यता और सांविधानिकता को प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है । तथापि, परिवर्तित परिस्थितियों में, जिनकी चर्चा इस निर्णय में इसमें इसके पश्चात् की गई है, इतने अधिक 260 स्थानों को

आरक्षित करना न्यायोचित नहीं हो सकता है ।

12. वास्तव में, अपीलार्थियों की मुख्य दलील यह है कि एन. जी. ओ. आई. के पक्ष में स्थान आरक्षित करने संबंधी केन्द्रीय सरकार की नीति से **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा अधिकथित और एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में यथा-उपबंधित एकमात्र योग्यता के आधार पर चयन करने के सिद्धांत का उल्लंघन होता है । तथापि, इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि जहां कुछ स्थान केवल उचित रूप से वर्गीकृत स्रोतों से भरे जाने आरक्षित हैं वहां योग्यता के आधार पर चयन उन स्रोतों तक सीमित करना होगा जिन स्रोतों से वे स्थान भरे जाने हैं । **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के पैरा 10 से सुसंगत उद्धरण इसके नीचे उद्धृत किया जाता है : –

> "जैसी कि इससे पूर्व अवेक्षा की गई है, उन स्रोतों का निर्धारण, जिनसे विद्यार्थी लिए जाने हैं, प्रमुख रूप से उन प्राधिकारियों द्वारा किया जाता है जो संस्था का अनुरक्षण करते हैं और उन्हें चलाते हैं, उदाहरणार्थ, प्रस्तुत मामले में केन्द्रीय सरकार । अवयस्क पी. राजेन्द्रन **बनाम** मद्रास राज्य (ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1012) वाले मामले में यह कहा गया है कि प्रवेश के लिए चयन का उद्देश्य सर्वोत्तम संभव सामग्री सुनिश्चित करना है । यह निश्चित रूप से चयन के विषय में समुचित नियम बनाकर किया जा सकता है किन्तु इस संबंध में कोई संदेह नहीं हो सकता है कि ऐसा चयन उन स्रोतों तक सीमित होना चाहिए जिनसे सामग्री का प्रदाय आशयित है ।"
> (जोर देने के लिए रेखांकित)

तदनुसार, वे स्थान जो किसी विशिष्ट स्रोत अर्थात्, हिताधिकारी राज्य/ संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के लिए आरक्षित हैं, उन अभ्यर्थियों की योग्यता के आधार पर चयन द्वारा भरे जाने हैं जिन्होंने उस विशिष्ट स्रोत, अर्थात् उस हिताधिकारी राज्य/संघ राज्य क्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के अभ्यर्थियों के रूप में आवेदन किया है । इस प्रकार, इन अभ्यर्थियों को, जो इस संबंध में पृथक् स्रोत गठित करते हैं, जिनमें से उन स्रोतों के लिए आबंटित स्थानों पर प्रवेश किया जाना है, डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा देना आवश्यक नहीं है । उन्हें **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** (उपर्युक्त) वाले

मामले में अधिकथित तथा एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में यथा-उपबंधित योग्यता के आधार पर चयन प्रक्रिया से गुजरना होगा किन्तु यह चयन संबंधित स्रोतों के अभ्यर्थियों तक सीमित होना चाहिए ।

13. भारत संघ की ओर से तारीख 16 जुलाई, 2012 को फाइल किए गए शपथपत्र के उपाबंध आर/3 में उन अभ्यर्थियों की विशिष्टियां दी गई हैं जिन्हें हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों को आबंटित स्थानों पर नामनिर्दिष्ट किया गया है । उपाबंध आर/3 में यह कहा गया है कि अरुणाचल प्रदेश राज्य को आबंटित 26 स्थानों के लिए अभ्यर्थी राज्य सरकार द्वारा आयोजित संयुक्त प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किए गए हैं; नागालैंड राज्य को आबंटित 24 स्थानों पर अभ्यर्थी राज्य सरकार द्वारा आयोजित संयुक्त प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किए गए हैं; मिजोरम राज्य को आबंटित 27 स्थानों पर अभ्यर्थियों को राज्य द्वारा संचालित राज्य तकनीकी प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; मेघालय राज्य को आबंटित 22 स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में शौक्षणिक योग्यता के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; सिक्किम राज्य को आबंटित 8 स्थानों पर अभ्यर्थियों को राज्य सरकार द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; त्रिपुरा राज्य को आबंटित 7 स्थानों पर अभ्यर्थियों को राज्य सरकार द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; मणिपुर राज्य को आबंटित 24 स्थानों पर अभ्यर्थियों को राज्य सरकार द्वारा संचालित सामान्य प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; लक्षद्वीप संघ राज्यक्षेत्र को आबंटित 13 स्थानों पर अभ्यर्थियों को संघ राज्यक्षेत्र सरकार द्वारा संचालित चिकित्सा प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; अंदमान और निकोबार द्वीप संघ राज्यक्षेत्र को आबंटित 18 स्थानों पर अभ्यर्थियों को दसवीं (20 प्रतिशत अधिमान) और बारहवीं (80 प्रतिशत अधिमान) में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; दादर और नागर हवेली संघ राज्यक्षेत्र को आबंटित 8 स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों की प्रतिशतता के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; दमण और दीव संघ राज्यक्षेत्र को आबंटित 7 स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों की प्रतिशतता के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; जम्मू-कश्मीर राज्य को आबंटित 4 स्थानों पर अभ्यर्थियों को राज्य सरकार द्वारा संचालित वृत्तिक प्रवेश परीक्षा के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; रक्षा मंत्रालय

को आबंटित 25 स्थानों पर अभ्यर्थियों को दसवीं (20 प्रतिशत अधिमान) और बारहवीं (80 प्रतिशत अधिमान) में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; मंत्रिमंडल सचिवालय को आबंटित 5 स्थानों पर अभ्यर्थियों को दसवीं (20 प्रतिशत अधिमान) और बारहवीं (80 प्रतिशत अधिमान) में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है ; गृह मंत्रालय को आबंटित 7 स्थानों पर अभ्यर्थियों को दसवीं (20 प्रतिशत अधिमान) और बारहवीं (80 प्रतिशत अधिमान) में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; विदेश मंत्रालय (मिशन कर्मचारिवृन्द) को आबंटित 4 स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; विदेश मंत्रालय (विदेशियों) को आबंटित 26 स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; केन्द्रीय तिब्बती प्रशासन को आबंटित एक स्थान पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है; भारतीय बाल कल्याण परिषद् को आबंटित दो स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है और गृह मंत्रालय को आबंटित दो स्थानों पर अभ्यर्थियों को 10+2 परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर नामनिर्दिष्ट किया गया है ।

14. इस प्रकार, एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर अभ्यर्थियों का चयन या तो संयुक्त प्रवेश परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर या 10+2 परीक्षाओं में प्राप्त अंकों के आधार पर किया गया है । एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में जहां अर्हक परीक्षा का संचालन एक विश्वविद्यालय/बोर्ड/ परीक्षा निकाय करता है वहां अर्हक परीक्षा में भौतिक शास्त्र, रसायन विज्ञान, जीव विज्ञान और अंग्रेजी में प्राप्त अंकों के आधार पर और जहां अर्हक परीक्षा का संचालन एक से अधिक विश्वविद्यालय/बोर्ड/ परीक्षा निकाय करते हैं, वहां प्रतियोगी प्रवेश परीक्षा के आधार पर योग्यता का अवधारण करने का उपबंध है । जब तक कोई ऐसा अभ्यर्थी जिसने किसी आबंटित स्थान के लिए आवेदन किया था और जिसका नामनिर्दिष्ट करने के लिए चयन नहीं किया गया था, न्यायालय में नहीं आता और न्यायालय के समक्ष यह दर्शित करने के लिए सामग्री पेश नहीं करता कि चयन एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार नहीं किया गया है या चयन करते समय उसकी योग्यता को अनदेखा किया गया है तब तक न्यायालय चयन में हस्तक्षेप नहीं कर सकता । इस मामले में, उन

अभ्यर्थियों ने, जिन्होंने हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों को आबंटित स्थानों के लिए आवेदन किया था, अपनी इस शिकायत के साथ न्यायालय में समावेदन नहीं किया है कि उनकी योग्यता को अनदेखा किया गया है या चयन एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार नहीं किया गया है । इसके विपरीत, अपीलार्थी, जिन्होंने एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों के लिए आवेदन नहीं किया था, इस न्यायालय के समक्ष अपनी यह शिकायत लेकर आए हैं कि उन 30 स्थानों में से कुछ स्थानों पर उनका चयन किया जाना चाहिए था और उन्हें प्रवेश दिया जाना चाहिए था । अपीलार्थी, जिन्होंने एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों के लिए आवेदन नहीं किया है, एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित 30 स्थानों पर अभ्यर्थियों के चयन को इस आधार पर चुनौती नहीं दे सकते थे कि इन आरक्षित स्थानों पर नामनिर्देशन के लिए चयन करते समय एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 में यथा-उपबंधित या **टी. एम. ए. पई फाउंडेशन** (उपर्युक्त) वाले मामले में यथा-अधिकथित योग्यता पर विचार नहीं किया गया है । यह दृष्टिकोण अपनाने में हमें **कुमारी चित्रा घोष** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय का समर्थन मिला है जिसमें इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है : –

> "..... हमें यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों को केन्द्रीय सरकार द्वारा किए गए नामनिर्देशनों को चुनौती देने का कोई अधिकार नहीं है । उन्होंने आरक्षित स्थानों के लिए प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया और इन स्थानों पर नामनिर्देशन के विषय में उन्हें सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है ।"

अतः, भले ही कुछ विद्यार्थियों का एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार यथा-अवधारित योग्यता का कड़ाई से पालन किए बिना चयन किया गया है फिर भी हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उनके प्रवेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं । तथापि, यदि दो सरकारी चिकित्सा महाविद्यालयों, अर्थात् एल. एच. एम. सी और एम. ए. एम. सी. में शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के कोटे में कोई स्थान रिक्त हैं तो इन रिक्त स्थानों पर याचियों को शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 के दौरान डी. यू. एम. ई. टी. परीक्षा 2011-2012 में उनकी योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाना चाहिए ।

15. तथापि, अपीलार्थियों ने यह दलील दी है कि जिन चार अभ्यर्थियों को शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के दौरान एल. एच. एम. सी. और एम. ए. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश दिया गया है वे डी. यू. एम. ई. टी. में भी असफल हुए हैं और इन असफल अभ्यर्थियों को प्रवेश देना चिकित्सा प्रवेश की संपूर्ण प्रणाली का मज़ाक बनाना है । जैसा कि हमने पहले ही अभिनिर्धारित कर दिया है, जिन अभ्यर्थियों ने एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों के कोटे के अधीन आवेदन किया है वे ऐसे पृथक् स्रोत गठित करते हैं जिनमें से प्रवेश दिया जाना है और उन्हें डी. यू. एम. ई. टी. की परीक्षा देना आवश्यक नहीं है । अतः, भले ही वे डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हो गए हैं वे अब भी एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर प्रवेश दिए जाने के हकदार हैं यदि उनका उन सभी अभ्यर्थियों में से, जिन्होंने पूर्वोक्त पृथक् स्रोतों से प्रवेश के लिए आवेदन किया था, योग्यता के आधार पर चयन हो जाता है । तथापि, यदि डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हुए अभ्यर्थियों को किसी पृथक् प्रवेश स्रोत के माध्यम से प्रवेश दिया जाता है, जैसा कि प्रस्तुत मामले में हुआ है तो इसके परिणामस्वरूप उन विद्यार्थियों के बीच काफी ईर्ष्या पैदा हो सकती है जिन्होंने डी. यू. एम. ई. टी. तो उत्तीर्ण किया है किन्तु योग्यता सूची में उनके कम रैंक के कारण उन्होंने एम. बी. बी. एस. में किसी स्थान पर प्रवेश प्राप्त नहीं किया है । अतः, भविष्य में दिल्ली विश्वविद्यालय को बुलेटिन में यह अवश्य ही अनुबद्ध करना चाहिए और भारत सरकार को ये अनुदेश जारी करने चाहिएं कि वे अभ्यर्थी, जो डी. यू. एम. ई. टी. परीक्षा देने का विकल्प अपनाते हैं किन्तु उसमें अर्हित नहीं होते हैं, एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित कोटे के अधीन प्रवेश के लिए पात्र नहीं होंगे । तथापि, भारतीय चिकित्सा परिषद् द्वारा इस असंगति पर विचार किया गया है और एम. सी. आई. विनियमों में संशोधन किए गए हैं और उनमें यह उपबंध किया गया है कि शैक्षणिक वर्ष 2013-14 से एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश की ईप्सा करने वाले प्रत्येक अभ्यर्थी को, यदि वह सामान्य प्रवर्ग का अभ्यर्थी है तो एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम 50 प्रतिशत अंक अवश्य प्राप्त करने चाहिएं और यदि वह अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या अन्य पिछड़े वर्ग का अभ्यर्थी है तो राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम 40 प्रतिशत अंक अवश्य प्राप्त करने चाहिएं । अतः, शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 से आरक्षित स्थानों के लिए आवेदन करने वाले एन. जी. ओ. आई. को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए राष्ट्रीय

पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में पूर्वोक्त न्यूनतम अंक प्राप्त करने होंगे ।

16. अब हम अपीलार्थियों की इस दलील पर विचार करेंगे कि एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए स्थानों का आरक्षण अत्यधिक है और जब इसे अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़े वर्गों और अखिल भारतीय आधार पर 15 प्रतिशत कोटे के साथ जोड़ा जाता है तो यह इस न्यायालय द्वारा नियत आरक्षण की अधिकतम 50 प्रतिशत सीमा से अधिक हो जाता है । हमने सुश्री मल्होत्रा द्वारा उद्धृत **इंदिरा साहनी** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त), **स्नातकोत्तर चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान संस्थान** बनाम **संकाय संगम** (उपर्युक्त) और **भारत संघ** बनाम **रमेश राम और अन्य** (उपर्युक्त) वाले विनिश्चयों का परिशीलन किया है और हम यह पाते हैं कि उपर्युक्त विनिश्चयों का संबंध चिकित्सा महाविद्यालयों या अन्य शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए स्थानों के आरक्षण से नहीं है किन्तु इनका संबंध लोक सेवाओं में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के पक्ष में पदों के आरक्षण से है । हमने सुश्री मल्होत्रा द्वारा उद्धृत **इंडियन मेडीकल एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का भी परिशीलन किया है और हम यह पाते हैं कि उपर्युक्त विनिश्चय में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गैर-अल्पसंख्यक प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त वृत्तिक संस्थाओं की दशा में, जब अभ्यर्थियों का चयन साधारण पूल के स्रोत से किया जाना होता है तब चयन उन विद्यार्थियों के, जो ऐसी गैर-अल्पसंख्यक प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त वृत्तिक संस्थाओं में प्रवेश के लिए अर्हित हैं और आवेदन किया है या विकल्प अपनाया है, परस्पर रैंक पर आधारित होना चाहिए जबकि अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं की दशा में स्रोत को उस विशिष्ट अल्पसंख्यक समुदाय तक परिसीमित किया जा सकता है जिसका संबंध उस संस्था से है । अतः, **इंडियन मेडीकल एसोसिएशन** बनाम **भारत संघ** (उपर्युक्त) वाले मामले में पूर्वोक्त विनिश्चय इस मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है क्योंकि एल. एच. एम. सी. कोई प्राइवेट गैर-सहायताप्राप्त चिकित्सा महाविद्यालय नहीं है । इसके विपरीत, यह केन्द्रीय सरकार का एक महाविद्यालय है । तथापि, एल. एच. एम. सी. में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में स्थानों की कुल संख्या 150 है जिसमें से 55 स्थान सामान्य अभ्यर्थियों में से डी. यू. एम. ई. टी. में उनकी परस्पर योग्यता के आधार पर भरे जाते हैं और 22 स्थान अभ्यर्थियों द्वारा केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित अखिल भारतीय परीक्षा के अनुसरण में योग्यता सूची में उनके परस्पर रैंक के आधार पर भरे जाते

हैं । इसके अतिरिक्त, भारत संघ की ओर से तारीख 16 जुलाई, 2010 को फाइल किए गए शपथपत्र के पैरा 13 में यह कहा गया है कि एल. एच. एम. सी. में इससे पूर्व कुल 150 विद्यार्थियों को प्रवेश देने की व्यवस्था थी जो कि शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 से बढ़ाकर 200 विद्यार्थी कर दी गई है और 50 स्थानों की वृद्धि के बावजूद शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के लिए स्थानों की संख्या 30 नियत की गई थी । इसके अलावा, उपर्युक्त शपथपत्र के पैरा 13 में यह कहा गया है कि एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थान घटाकर शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 के दौरान 20, शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 के दौरान 17 और शैक्षणिक वर्ष 2014-2015 के लिए 15 कर दिए गए हैं जैसा कि भारत संघ द्वारा एल. एच. एम. सी. को लिखे गए तारीख 25 अप्रैल, 2012 के पत्र से स्पष्ट हो जाएगा । उपर्युक्त शपथपत्र के पैरा 13 में यह भी कहा गया है कि जबकि एल. एच. एम. सी. केन्द्रीय सरकार की एक संस्था है किन्तु यू. सी. एम. एस. और एम. ए. एम. सी. राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली सरकार द्वारा नियंत्रित संस्थाएं हैं और भारत सरकार केन्द्रीय पूल मद्धे स्थान छोड़ने की मांग नहीं कर सकती है और इसके अलावा एल. एच. एम. सी. एकमात्र ऐसा महाविद्यालय है जो महिला विद्यार्थियों के लिए चिकित्सा शिक्षा में विशेषज्ञताप्राप्त है और सरकार महिलाओं में, विशेषकर उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में चिकित्सा शिक्षा का प्रसार करना चाहती है । भारत सरकार द्वारा एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए स्थानों की संख्या 30 को चरणबद्ध तरीके से घटाकर 15 करने के संबंध में उठाए गए उपर्युक्त कदमों पर विचार करते हुए हम यह समझते हैं कि इस शिकायत का भी कि यदि एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए कोई अत्यधिक आरक्षण है, ध्यान में रखा गया है । इसके अतिरिक्त, दिल्ली के विद्यार्थियों के लिए, यू. सी. एम. एस. और एम. ए. एम. सी. भी ऐसी अन्य संस्थाएं हैं जिनमें सामान्य अभ्यर्थियों द्वारा, जिनमें सामान्य वर्ग के महिला अभ्यर्थी भी हैं, एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम पूरा किया जा सकता है और इन संस्थाओं में कुल स्थानों की संख्या क्रमशः 200 और 150 है जिसमें से केवल 6 स्थान एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित हैं ।

17. तथापि, हम यह पाते हैं कि आक्षेपित निर्णय के पैरा 31 में उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि भले ही जैसा कि भारत सरकार द्वारा औचित्य प्रस्तुत किया गया है कि अनेक राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में विशेषकर उत्तर-पूर्वी राज्यों में उनकी अपनी चिकित्सा संस्थाएं नहीं थीं,

तथापि, देश में संपूर्ण आर्थिक विकास हुआ है और इसी बीच देश में अनेक राज्य-पोषित और प्राइवेट चिकित्सा और अन्य संस्थाएं स्थापित की गई हैं और इसलिए भारत संघ द्वारा एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों की सीमा पर पुनः विचार करना आवश्यक था । हम आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत हैं और हमारी यह सुविचारित राय है कि केन्द्रीय सरकार को इसका पुनर्विलोकन करना चाहिए और राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में राज्य-पोषित और प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में उपलब्ध उन स्थानों की संख्या का पता लगाना चाहिए जिनके लिए एन. जी. ओ. आई. के कोटे में से स्थान आबंटित किए जा रहे हैं और नए सिरे से इस बात का विनिश्चय करना चाहिए कि इन राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों के कितने स्थान आबंटित किए जाने चाहिएं ।

18. परिणामस्वरूप, हम –

(i) अभिनिर्धारित करते हैं कि बुलेटिन, जहां तक उसमें एल. एच. एम. सी. में एन. जी. ओ. आई. के लिए 30 स्थान आरक्षित किए गए हैं, संविधान के अधिकारातीत नहीं है और जहां तक उसमें इन 30 स्थानों पर प्रवेश पाने वाले अभ्यर्थियों को डी. यू. एम. ई. टी. देने से छूट प्राप्त की गई, वह एम. सी. आई. विनियमों के अधिकारातीत नहीं है ।

(ii) अभिनिर्धारित करते हैं कि हिताधिकारी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों द्वारा ऐसे विद्यार्थियों का चयन करते समय जो संबंधित राज्य/संघ राज्यक्षेत्र/मंत्रालय/अभिकरण के लिए आरक्षित या आबंटित स्थानों के लिए आवेदन करते हैं, एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में एकमात्र योग्यता के आधार पर प्रवेश देने संबंधी एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के उपबंधों का अनुसरण किया जाना होगा ।

(iii) अभिनिर्धारित करते हैं कि भले ही राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों/मंत्रालयों/अभिकरणों द्वारा शैक्षणिक सत्र 2011-2012 के लिए एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों पर कुछ विद्यार्थियों का चयन करते समय आवेदकों की योग्यता का अवधारण पूर्णतः एम. सी. आई. विनियमों के विनियम 5 के अनुसार न किया गया हो, तथापि, हम संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए उनके प्रवेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहते हैं ।

(iv) निदेश देते हैं कि शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 से एल. एच. एम.

सी., एम. ए. एम. सी. और यू. सी. एम. एस. में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित किसी भी स्थान पर ऐसे किसी विद्यार्थी को प्रवेश नहीं दिया जाएगा जो डी. यू. एम. ई. टी. में असफल हो गया है ।

(v) निदेश देते हैं कि शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 से आगे एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित स्थानों के लिए आवेदन करने वाले अभ्यर्थी को एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम अंक प्राप्त करने होंगे, जैसा कि संशोधित एम. सी. आई. विनियमों में उपबंध किया गया है और व्यापक परिचालन वाले समाचारपत्रों में विज्ञापन के माध्यम से आवेदकों को बुलाने के पश्चात् योग्यता के आधार पर प्रवेश किए जाएंगे ।

(vi) निदेश देते हैं कि केन्द्रीय सरकार ऐसे सरकारी और प्राइवेट चिकित्सा महाविद्यालयों का पुनर्विलोकन करेगी जो इसी बीच राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में स्थापित किए गए हैं, जिन्हें एन. जी. ओ. आई. के कोटे के अधीन स्थान आबंटित किए जा रहे हैं और यदि उन्हें यह पता चलता है कि इन राज्यों/संघ राज्यक्षेत्रों में एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम के लिए अतिरिक्त प्रवेश क्षमता सृजित की गई है तो केन्द्रीय सरकार इन राज्यों में शैक्षणिक वर्ष 2013-2014 से एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम में एन. जी. ओ. आई. के लिए आरक्षित किए जाने वाले स्थानों की संख्या के संबंध में फिर से विनिश्चय करेगी ।

(vii) निदेश देते हैं कि यदि शैक्षणिक वर्ष 2011-2012 के लिए एल. एच. एम. सी. और एम. ए. एम. सी. में एन. जी ओ. आई. के कोटे में स्थान खाली हैं तो इन खाली स्थानों पर याचियों को शैक्षणिक वर्ष 2012-2013 में डी. यू. एम. ई. टी. 2011-2012 में उनकी योग्यता के आधार पर प्रवेश दिया जाएगा ।

19. उपर्युक्त निदेशों के साथ अपीलों का निपटारा किया जाता है । खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलों का निपटारा किया गया ।

ग्रो./अनू.

## दरबारा सिंह

बनाम

## पंजाब राज्य

12 सितम्बर, 2012

**न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान और न्यायमूर्ति फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला**

**दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 34 – हत्या – अपीलार्थी-अभियुक्तों द्वारा सामान्य आशय के साथ मृतक की हत्या करना – अपीलार्थियों द्वारा मृतक को घातक क्षतियां कारित करना भी साबित होना जिसके परिणामस्वरूप मृतक की मृत्यु हुई – अपीलार्थी की अपील खारिज की गई ।**

प्रस्तुत मामले में, यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 1998 की दांडिक अपील सं. 248-खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 6 फरवरी, 2008 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश फिरोजपुर द्वारा 1996 की सेशन मामला सं. 11 में पारित किए गए तारीख 7 अप्रैल, 1998 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की थी जिसके द्वारा अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास के साथ दो हजार रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – जहां तक चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच असंगतता के प्रश्न का संबंध है, विधि सुस्थापित है कि जब तक उपलब्ध मौखिक साक्ष्य पूर्णतया चिकित्सीय साक्ष्य से असंगत न हो मौखिक साक्ष्य को प्रमुखता दी जाएगी । चिकित्सीय और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में विरोधाभास होने की दशा में साक्षी के प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य को चिकित्सीय साक्ष्य के मुकाबले अधिक साक्ष्यिक महत्व दिया जाएगा और जब चिकित्सीय साक्ष्य मौखिक परिसाक्ष्य को असंभाव्य बना देता है तब यह ऐसे साक्ष्य के मूल्यांकन की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण पहलू बन जाता है । जब दोनों के बीच विरोधाभास इतना घोर हो कि चिकित्सीय साक्ष्य पूर्णतया प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के पूर्ण रूप से सही होने की सभी संभाव्यताओं का पूर्णतया खंडन

करते हों, तब प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अविश्वास किए जाने को दायी होगा । डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) जिन्होंने शव-परीक्षा की थी, ने इसके आगे यह मत व्यक्त किया कि मृत्यु का कारण फेफड़े और हृदय जैसे महत्वपूर्ण अंगों पर क्षति के परिणामस्वरूप पहुंचे रक्तस्राव और आघात था जो कि प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था । डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्पष्ट किया कि क्षति सं. 1 पहुंचाना असंभव होता यदि मृतक दौड़ रहा था और हमलावर उसका पीछा कर रहा था । क्षति सं. 1 कृपाण जैसे एक तीखी धार के हथियार से कारित की गई थी जो कि मृतक की पीठ पर ऊपर से नीचे की ओर कारित की गई थी । जहां तक क्षतियों का संबंध है उनके संबंध में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अमरीक सिंह (अभि. सा. 1) द्वारा दिया गया है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना के पहले भाग के 15-20 मिनट पश्चात् हमलावर वापस लौटे थे । दरबारा सिंह ने एक कृपाण का उपयोग करते हुए मुख्तियार सिंह के सिर पर आघात किया था और इस प्रकार उसने फतेहगढ़ की ओर भागने का प्रयास किया । कश्मीर सिंह ने इसके पश्चात् कृपाण मुख्तियार सिंह के बगल में घोंप दी । इन क्षतियों के कारण मुख्तियार सिंह नीचे गिर गया । वस्तुतः मुख्तियार सिंह मृतक ने इस आशंका के अधीन भागने का प्रयास किया था कि उस पर हमला किया जाएगा और यही वह समय था जब अपीलार्थी दरबारा सिंह ने कृपाण का उपयोग करते हुए उसके सिर पर क्षति कारित की थी । यह मृतक की पीठ पर ऊपर से नीचे की ओर क्षति सं. 1 की दिशा के लिए कारण स्पष्ट करता है । यदि ऐसी स्थिति रही होती कि मृतक मुख्तियार सिंह उस समय भाग नहीं रहा होता, तब क्षति की दिशा समस्त संभावताएं में सीधी होतीं । यदि क्षति सं. 1 और 2 कारित करने के तरीके और रीति के संबंध में संपूर्ण साक्ष्य का एक साथ पठन किया जाए तब यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्षदर्शी उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य के पूर्ण सामंजस्य और उसके अनुसार है । (पैरा 5, 6 और 7)

जहां तक हेतुक के विवाद्यक का संबंध है, यह सुस्थापित विधिक प्रतिपादना है कि पारिस्थितिक साक्ष्य अन्तर्वलित करने वाले मामले में हेतुक का अत्यंत महत्व होता है, किन्तु जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध होता है जो कि अवलंब लिए जाने योग्य है, वहां पर हेतुक अपना महत्व खो देता है । वर्तमान मामले में प्रथमतया, अभिलेख पर उस व्यक्ति की पहचान प्रकट करने के लिए कुछ नहीं है जिसे बलात्संग के लिए दोषसिद्ध किया गया था, उसके अपीलार्थी के साथ समय की प्रास्थिति के संबंध में भी प्रकट

करने के लिए कुछ नहीं है और इसके अतिरिक्त अभिलेख पर इस लड़की की पहचान या उसके सह-अभियुक्त कश्मीर सिंह के साथ समय का अवधारण करने के लिए कुछ नहीं है । इसके अतिरिक्त दोषसिद्धि घटना के 20 वर्ष पूर्व की गई थी । इस तथ्य को साबित करने के लिए किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है कि अपीलार्थी कश्मीर सिंह के साथ बातचीत नहीं थी । ऐसे मामले में जहां साक्षियों का प्रत्यक्ष साक्ष्य है जिस पर अवलंब लिया जा सकता है, हेतुक का अभाव मामले को नामंजूर करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता । किन्हीं भी परिस्थितियों में हेतुक उपलब्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य का स्थान सबूत के रूप में नहीं ले सकता और इस प्रकार के मामले में हेतुक का सबूत पूर्णतया सुसंगत नहीं है । आपराधिक मामलों में साक्षियों के सकारात्मक, स्पष्ट, तर्कपूर्ण और विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य पर एकमात्र रूप से आधारित हेतुक पूर्णतया सुसंगत होता है । ऐसी तथ्यपरक स्थिति में अपराध कारित करने के लिए प्रबल हेतुक का मात्र अभाव अभियुक्त को किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकता । किसी अपराध के पीछे का हेतुक सुसंगत तथ्य है जिसके संबंध में साक्ष्य दिया जा सकता है । हेतुक का अभाव भी एक परिस्थिति है जो साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए सुसंगत हो सकेगी । अपीलार्थी की ओर से इसके आगे यह दलील दी गई है कि क्योंकि अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन कभी भी आरोपित नहीं किया गया था इसलिए जब तक यह साबित न कर दिया जाए कि मृतक के सिर पर अपीलार्थी द्वारा कारित की गई क्षति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी, अपीलार्थी को पूर्णरूपेण धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार दी गई दलील यह मात्र इस कारण से विचार किए जाने योग्य नहीं है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल कोई भी हित के प्रतिकूल बात दर्शाने में असमर्थ रहे हैं जो कोई भी हो और यह कि अपीलार्थी के हित के प्रतिकूल क्या घटित हुआ । यद्यपि ऐसा आरोप उसके विरुद्ध विरचित नहीं किया गया है । वह सदैव इन सभी तथ्यों से पूर्णतया भिज्ञ था कि वह वस्तुतः कश्मीर सिंह और हीरा सिंह के साथ मृतक की हत्या करने के आशय से गया था । दोनों ने निस्संदेह मृतक मुख्तियार सिंह पर क्षतियां कारित की हैं । अपीलार्थी को इसके अतिरिक्त मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंग सिर पर घोर क्षति कारित करने का दोषी पाया गया है । इसलिए उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस प्रकार प्रस्तुत की गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 9, 10 और 12)

आरोपों की विरचना में त्रुटि इतनी गंभीर होनी चाहिए कि यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 464/465 के अधीन आ सकती हो जो यह उपबंध करती है कि दंडादेश या दोषसिद्धि का कोई आदेश केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि कोई आरोप विरचित नहीं किया गया था या आरोपों में कुछ अनियमितता या लोप या कुसंयोजन था जब तक कि न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकालता कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता भी हुई थी । इसका अवधारण करने पर कि क्या सुसंगत आरोपों की विरचना में कोई त्रुटि या अनियमितता से न्याय की विफलता हुई है, न्यायालय को इसको विचार में लाना चाहिए कि क्या कार्रवाइयों के दौरान किसी पूर्वतर प्रक्रम पर कोई आपत्ति उठाई जा सकती थी या नहीं । हित के प्रतिकूल या दोषिता के प्रश्न की परीक्षा करते समय न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक अभियुक्त को ऋजु विचारण का अधिकार है, जहां उसे इस बात की जानकारी होती है कि उसका किसी बात के लिए विचारण किया जा रहा है और उसके विरुद्ध जो तथ्य साबित किए जाने की ईप्सा की गई है, वे उसे ऋजुतापूर्वक और स्पष्ट रूप से स्पष्ट किए गए हैं, और इसके अतिरिक्त जहां उसे उक्त आरोपों के विरुद्ध स्वयं की प्रतिरक्षा करने का पूरा और ऋजु अवसर दिया गया है । 'न्याय की विफलता' यह एक अत्यंत ही वशवर्ती या सरल अभिव्यक्ति है जो किसी भी मामले में किसी भी स्थिति में प्रयोग की जा सकती है । न्यायालय को सत्य का पता लगाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । 'न्याय की विफलता' न केवल अनुचित दोषसिद्धि से होगी, अपितु अपेक्षित साक्ष्य प्रस्तुत करने में अऋजु विफलता के परिणामस्वरूप दोषी की दोषमुक्ति के द्वारा भी परिणाम होगी । वस्तुतः अभियुक्त के अधिकारों को और इसी भांति रक्षोपायों को भी ध्यान में रखना चाहिए किन्तु उनको इतना भी अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए कि यह भूला दिया जाए कि पीड़िता के भी अधिकार होते हैं । यह दर्शित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त को भारतीय दांडिक विधि शास्त्र के अधीन उसे उपलब्ध संरक्षाओं के संबंध में अवमूल्यन हुआ है या कुछ निःशक्तता पहुंची है । 'न्याय की विफलता' इसके व्यापक भाव में निर्वचन किए जाने में अयोग्य है और आपराधिक विधि शास्त्र लागू किया जाना चाहिए । अन्वेषण या विचारण के संबंध में हेतु के प्रतिकूल का अभिवाक् होना चाहिए और न कि उनकी व्यापकता के बाहर आने वाले मामलों के संबंध में । एक बार अभियुक्त को यह दर्शित करने में समर्थ होने पर भी उसका हित का प्रतिकूल उन पहलुओं में से किसी के संबंध में गंभीर रूप से प्रभावित हुआ

है और यह कि इससे उसे विधि शास्त्र के अधीन उपलब्ध अधिकारों की हानि हुई है, तब अभियुक्त न्यायालय के आदेशों के अधीन फायदा की ईप्सा कर सकता है । (पैरा 14 और 15)

अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इसके आगे यह दलील दी कि पुलिस द्वारा किया गया अन्वेषण परिवादी के पक्ष में होने के कारण दूषित था क्योंकि अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 9) ने स्वयं अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि उन्होंने बोहर सिंह का इस संबंध में कथन अभिलिखित किया था कि अपीलार्थी अकेला साक्षी था और बोहर सिंह और छेड़खानी किए जाने पर मृतक द्वारा अन्यों पर हमला और क्षतिग्रस्त किए जाने को देखा था । बोहर सिंह की भी चिकित्सीय जांच की गई थी और उसके शरीर पर क्षतियां पाई गई थीं । तथापि, ऐसे तथ्यों के संबंध में उसका कथन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है । विचारण न्यायालय ने उक्त विवाद्यक पर विस्तृत रूप से चर्चा की है और यह अभिनिर्धारित किया कि यह वर्णन कि यह कारण कि बोहर सिंह और अन्य सह-अभियुक्त एक दूर के स्थान सिविल अस्पताल जीरा गए थे और वहां पर स्वयं की चिकित्सीय जांच कराई थी और निकट के अस्पताल में नहीं कराई थी जिससे कि परिवादी पक्ष से झगड़े से बचा जा सके और क्योंकि पुलिस वहां पर शव-परीक्षा के लिए मृतक का शव ले गई थी, जिसके लिए परिवादी पक्ष भी वहां पर उपस्थित रहा होगा, यह एक गढ़ा गया वर्णन था । वस्तुतः मुख्तियार सिंह का शव शवपरीक्षा किए जाने के लिए सिविल अस्पताल जीरा ले जाया गया था और इसलिए, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया पक्षकथन स्पष्ट रूप से एक मिथ्या वर्णन था और अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए पूर्ण रूप से कोई सामग्री, जो कोई भी हो, वहां पर नहीं थी कि बोहर सिंह या किसी अन्य अभियुक्त को उक्त घटना में कोई क्षति पहुंची थी । उपर्युक्त को देखते हुए, हम उक्त अपील में कोई बल नहीं पाते हैं । अपील के तथ्य निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का पुनर्विलोकन किए जाने की अपेक्षा नहीं करते हैं । (पैरा 18 और 19)

## निर्दिष्ट निर्णय

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2012] | ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1485 : **रत्तीराम और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य (पुलिस निरीक्षक के माध्यम से)** ; | 15 |

| | | |
|---|---|---|
| [2011] | (2011) 7 एस. सी. सी. 421 :<br>**भजन सिंह** उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम<br>**हरियाणा राज्य** ; | 5 |
| [2011] | ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 3114 :<br>**रफीक अहमद** उर्फ **रफी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; | 15 |
| [2011] | ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1403 :<br>**शिव शंकर सिंह** बनाम **झारखंड राज्य और अन्य** ; | 11 |
| [2010] | ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3786 :<br>**शनिचर साहनी** बनाम **बिहार राज्य** ; | 13 |
| [2009] | (2009) 13 एस. सी. सी. 542 :<br>**उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **हरि** ; | 5 |
| [2005] | 2005 की दांडिक अपील सं. 46 जिसका<br>विनिश्चय 4 सितम्बर, 2012 को किया गया :<br>**भीमन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य** ; | 15 |
| [2000] | ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 160 :<br>**राजेश गोविन्द जगेशा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; | 10 |
| [1996] | (1996) 10 एस. सी. सी. 79 :<br>**धन्ना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; | 16 |
| [1974] | ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1193 :<br>**दातर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ; | 10 |
| [1966] | ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1322 :<br>**राजिन्दर कुमार और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** ; | 10 |
| [1956] | ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 460 :<br>**गुरचरण सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य** । | 10 |

**दांडिक (अपीली) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 404.**

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय चंडीगढ़ द्वारा 1998 की दांडिक अपील सं. 248-एकल न्यायपीठ के तारीख 6 फरवरी, 2008 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** सर्वश्री रोहित शर्मा, अमरजीत सिंह और अभिजात पी. मेध

**प्रत्यर्थी की ओर से** सर्वश्री वी. मधुकर, अपर महाधिवक्ता और कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) बी. एस. चौहान ने दिया ।

**न्या. (डा.) चौहान** – यह अपील पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा 1998 की दांडिक अपील सं. 248-खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 6 फरवरी, 2008 को पारित किए गए निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश फिरोजपुर द्वारा 1996 की सेशन मामला सं. 11 में पारित किए गए तारीख 7 अप्रैल, 1998 के निर्णय और आदेश की पुष्टि की थी जिसके द्वारा अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास के साथ दो हजार रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया गया था । जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर उसे दो वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगने का आदेश किया गया था । सह-अभियुक्त कश्मीर सिंह **उर्फ** मल्ला सिंह **उर्फ** मल्ली सिंह को भी इसी प्रकार से दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया था ।

2. इस अपील को उद्भूत करने वाले तथ्य और परिस्थितियां निम्न हैं :–

(क) तारीख 28 अक्तूबर, 1995 को पुलिस थाना धरमकोट पर दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट 150/1995 दर्ज की गई थी जिसमें यह अभिकथन किया गया था कि कश्मीर सिंह और हीरा सिंह का देशी शराब का उधार पर विक्रय करने के ऊपर मुख्तियार सिंह से मौखिक झगड़ा हुआ था । मुख्तियार सिंह द्वारा उधार पर शराब देने से इनकार किए जाने पर उन्होंने उसे एक पाठ पढ़ाने की धमकी दी थी । कश्मीर सिंह और हीरा सिंह 15-20 मिनट पश्चात् दरबारा सिंह, इसमें यहां अपीलार्थी, के साथ वापस लौटे । हीरा सिंह द्वारा उकसाने पर, अपीलार्थी ने, मुख्तियार सिंह पर कृपाण से हमला किया, जबकि सह-अभियुक्त कश्मीर सिंह ने उसकी छाती पर कृपाण से चोट पहुंचाई जिसके परिणामस्वरूप मुख्तियार सिंह की तुरंत मृत्यु हो गई ।

(ख) उपर्युक्त प्रथम इत्तिला सूचना के आधार पर अन्वेषण किया गया था और मुख्तियार सिंह का शव बरामद किया गया और शव-परीक्षा के लिए भेजा गया था जो डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) द्वारा तारीख 29 अक्तूबर, 1995 को की गई थी । अन्वेषण के पूरा होने के पश्चात् पुलिस

ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 173 के अधीन अंतिम रिपोर्ट प्रथम इत्तिला सूचना में अपीलार्थी सहित नामित सभी तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध प्रस्तुत की । तत्पश्चात्, मामला विद्वान् सेशन न्यायाधीश, फिरोजपुर को विचारण के लिए सुपुर्द किया गया था । अपीलार्थी और इसी भांति अन्य सह-अभियुक्त ने निर्दोष होने का अभिवाक् किया और विचारण किए जाने का दावा किया । अपीलार्थी दरबारा सिंह और कश्मीर सिंह को दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया जबकि सह-अभियुक्त हीरा सिंह को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपित किया गया था । विचारण के अनुक्रम के दौरान अभियोजन ने अमरीक सिंह (अभि. सा. 1) और गुरदयाल सिंह (अभि. सा. 2) की प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के रूप में परीक्षा की । उन्होंने डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) और अन्वेषण अधिकारी सुखविन्दर सिंह, पुलिस उपनिरीक्षक (अभि. सा. 9) सहित अन्य साक्षियों की भी परीक्षा की ।

(ग) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 313 के अधीन अपने कथनों में अभियुक्तों ने घटना में अपने अन्तर्वलित होने का खंडन किया और अपनी प्रतिरक्षा में डा. रछपाल सिंह राठौर (प्रतिरक्षा साक्षी 2) जिन्होंने तारीख 28/29 अक्तूबर, 1995 की रात्रि को अस्पताल में बोहर सिंह, कश्मीर सिंह और परमजीत सिंह की जांच की थी, सहित दो साक्षियों की भी परीक्षा की ।

(घ) विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने और अभियोजन द्वारा इसी भांति अभियुक्त की ओर से की गई दलीलों पर विचार करने के पश्चात्, अपीलार्थी और कश्मीर सिंह को उक्त अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जबकि हीरा सिंह को तारीख 7 अप्रैल, 1998 के निर्णय और आदेश द्वारा दोषमुक्त किया गया था ।

(ङ) इससे व्यथित होकर अपीलार्थी और कश्मीर सिंह ने उच्च न्यायालय के समक्ष दांडिक अपील सं. 248-खंड न्यायपीठ/98 फाइल की जो तारीख 6 फरवरी, 2008 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा खारिज की गई थी ।

इसलिए, यह अपील फाइल की गई है ।

3. श्री रोहित शर्मा, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी को मिथ्या फंसाया गया है और उसकी कश्मीर सिंह से कोई निकटता नहीं थी । वस्तुतः, इसके प्रतिकूल,

उसके परिवार के कश्मीर सिंह के परिवार के साथ तनावपूर्ण संबंध थे क्योंकि अपीलार्थी के परिवार के एक व्यक्ति का 20 वर्ष पूर्व कश्मीर सिंह की एक नातेदार कश्मीर कौर का बलात्संग करने के अपराध के लिए अभियोजन द्वारा दोषसिद्ध किया गया था । वस्तुतः, उधार पर शराब देने से इनकार किए जाने पर कश्मीर सिंह, परमजीत सिंह और बोहर सिंह ने मृतक मुख्तियार सिंह से छेड़छाड़ की थी । मुख्तियार सिंह ने उन्हें क्षतियां पहुंचाई थीं और अपीलार्थी ने हाथापाई में हस्तक्षेप किया था । तत्पश्चात् जब मृतक का भाई यथा, अमरीक सिंह ने अपीलार्थी से उनका एक साक्षी होने को कहा तब अपीलार्थी ने इससे इनकार किया और इस प्रकार अपीलार्थी को अपराध में मिथ्या से फंसाया गया है । वह रीति में जिसमें अपीलार्थी पर क्षति कारित करने का अभियोग लगाया गया है वस्तुतः पूर्णतया संभव नहीं है क्योंकि चिकित्सीय साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के सामंजस्य में नहीं है । अपीलार्थी को दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन आरोपित नहीं किया गया और यदि यह मान भी लिया जाए कि अपीलार्थी ने भी मृतक मुख्तियार सिंह को क्षति पहुंचाने में भाग लिया था, उसे धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए क्योंकि उक्त क्षति घातक साबित नहीं की जा सकी थी । किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है यद्यपि घटना अपराह्न 5.00 बजे शराब बेचने की दुकान पर घटित हुई थी जहां युक्तियुक्त रूप से कुछ व्यक्तियों के उस समय वहां पर उपस्थित होने की प्रत्याशा की जा सकती है । अपीलार्थी 8 वर्ष से अधिक कारागार में रह रहा है । इस प्रकार अपील मंजूर किए जाने को दायी है ।

4. इसके प्रतिकूल श्री वी. मधुकर, विद्वान् अपर महाधिवक्ता, पंजाब ने प्रबलता से यह दलील देते हुए अपील का विरोध किया है कि अपीलार्थी ने वस्तुतः घटना में भाग लिया था और इसके परिणामस्वरूप मृतक मुख्तियार सिंह के शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर गंभीर क्षति पहुंची थी । उसे विधि तकनीकियों का फायदा लेने को मंजूर नहीं किया जा सकता । इस प्रकार यदि दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन अपराध के लिए आरोप अपीलार्थी के विरुद्ध नहीं किया गया है, तब उसके हित के प्रतिकूल कुछ भी कारित नहीं होगा । सह-अभियुक्त कश्मीर सिंह, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा इसी भांति उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थी के साथ दोषसिद्ध किया गया था, ने इस आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका फाइल की थी जिसे भी इस न्यायालय द्वारा

खारिज कर दिया गया है । इसलिए अपील खारिज किए जाने को दायी है ।

5. हमने पक्षकारों की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई विरोधी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

जहां तक चिकित्सीय साक्ष्य और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के बीच असंगतता के प्रश्न का संबंध है, विधि सुस्थापित है कि जब तक उपलब्ध मौखिक साक्ष्य पूर्णतया चिकित्सीय साक्ष्य से असंगत न हो मौखिक साक्ष्य को प्रमुखता दी जाएगी । चिकित्सीय और प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य में विरोधाभास होने की दशा में साक्षी के प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य को चिकित्सीय साक्ष्य के मुकाबले अधिक साक्ष्यिक महत्व दिया जाएगा और जब चिकित्सीय साक्ष्य मौखिक परिसाक्ष्य को असंभाव्य बना देता है तब यह ऐसे साक्ष्य के मूल्यांकन की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण पहलू बन जाता है । जब दोनों के बीच विरोधाभास इतना घोर हो कि चिकित्सीय साक्ष्य पूर्णतया प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के पूर्ण रूप से सही होने की सभी संभाव्यताओं का पूर्णतया खंडन करते हों, तब प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अविश्वास किए जाने को दायी होगा । [देखिए **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **हरि**[1] और **भजन सिंह** उर्फ **हरभजन सिंह और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाला मामला]

6. शव-परीक्षा रिपोर्ट में मृतक के शरीर पर निम्नलिखित क्षतियां पाई गई थीं :–

(i) सिर के बाएं पार्श्विक क्षेत्र पर 3 सें. मी. x 1.5 सें. मी. आकार का एक छिन्न घाव जो प्रायिक रूप से बाएं कान की कर्णपाली के 12 सें. मी. ऊपर था और पिछली बालों की रेखा के पीछे 6 सें. मी. और मध्य रेखा से 1.5 सें. मी. था ।

(ii) क्षति की बाईं ओर सामने के भाग पर चुचूक के 4 सें. मी. नीचे अण्डाकार आकार का वेधित छिन्न घाव और जो मध्य रेखा से 5 सें. मी. था । थक्केदार रक्त विद्यमान था ।

डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) जिन्होंने शव-परीक्षा की थी, ने इसके आगे यह मत व्यक्त किया कि मृत्यु का कारण फेफड़े और हृदय जैसे

---

[1] (2009) 13 एस. सी. सी. 542.

[2] (2011) 7 एस. सी. सी. 421.

महत्वपूर्ण अंगों पर क्षति के परिणामस्वरूप पहुंचे रक्तस्राव और आघात था जो कि प्रकृति के साधारण अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त था ।

डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्पष्ट किया कि क्षति सं. 1 पहुंचाना असंभव होता यदि मृतक दौड़ रहा था और हमलावर उसका पीछा कर रहा था । क्षति सं. 1 कृपाण जैसे एक तीखी धार के हथियार से कारित की गई थी जो कि मृतक की पीठ पर ऊपर से नीचे की ओर कारित की गई थी । जहां तक क्षतियों का संबंध है उनके संबंध में प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य अमरीक सिंह (अभि. सा. 1) द्वारा दिया गया है जिसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि घटना के पहले भाग के 15-20 मिनट पश्चात् हमलावर वापस लौटे थे । दरबारा सिंह ने एक कृपाण का उपयोग करते हुए मुख्तियार सिंह के सिर पर आघात किया था और इस प्रकार उसने फतेहगढ़ की ओर भागने का प्रयास किया । कश्मीर सिंह ने इसके पश्चात् कृपाण मुख्तियार सिंह के बगल में घोंप दी । इन क्षतियों के कारण मुख्तियार सिंह नीचे गिर गया ।

7. वस्तुतः मुख्तियार सिंह मृतक ने इस आशंका के अधीन भागने का प्रयास किया था कि उस पर हमला किया जाएगा और यही वह समय था जब अपीलार्थी दरबारा सिंह ने कृपाण का उपयोग करते हुए उसके सिर पर क्षति कारित की थी । यह मृतक की पीठ पर ऊपर से नीचे की ओर क्षति सं. 1 की दिशा के लिए कारण स्पष्ट करता है । यदि ऐसी स्थिति रही होती कि मृतक मुख्तियार सिंह उस समय भाग नहीं रहा होता, तब क्षति की दिशा समस्त संभावताओं में सीधी होतीं । यदि क्षति सं. 1 और 2 कारित करने के तरीके और रीति के संबंध में संपूर्ण साक्ष्य का एक साथ पठन किया जाए तब यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्षदर्शी उपलब्ध चिकित्सीय साक्ष्य के पूर्ण सामंजस्य और उसके अनुसार है ।

उपर्युक्त को देखते हुए, हम इस दलील में कोई बल नहीं पाते हैं ।

8. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि क्योंकि डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) ने निस्संदेह प्रतिपरीक्षा में यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतक द्वारा पहनी गई कमीज अनेक स्थानों पर फटी हुई थी यह स्पष्ट रूप से सुझाता है कि वहां पर वस्तुतः मृतक और हमलावर के बीच हाथापाई हुई थी और इसलिए उसको देखते हुए अभियोजन पक्षकथन संदेहपूर्ण बन जाता है । अभियोजन पक्षकथन यह है कि हमलावरों को देखकर मृतक ने भागना शुरू कर दिया था और

अपीलार्थी और कश्मीर सिंह द्वारा उस पर दो क्षतियां पहुंचाई गई थीं । किसी भी अभियोजन साक्षी से प्रतिपरीक्षा में सुसंगत समय पर मृतक द्वारा पहनी गई कमीज की दशा स्पष्ट करने के लिए नहीं कहा गया था । इसके अतिरिक्त, एक वर्णन हाथापाई के संबंध में उनमें से किसी के द्वारा कभी भी कुछ नहीं सुझाया गया था । इसके अभाव में, डा. चरणजीत सिंह (अभि. सा. 11) द्वारा किया गया ऐसा कथन किसी भी प्रकार से अपीलार्थी को निर्दोषिता की ओर इंगित नहीं करता है ।

9. जहां तक हेतुक के विवाद्यक का संबंध है, यह सुस्थापित विधिक प्रतिपादना है कि पारिस्थितिक साक्ष्य अन्तर्वलित करने वाले मामले में हेतुक का अत्यंत महत्व होता है, किन्तु जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य उपलब्ध होता है जो कि अवलंब लिए जाने योग्य है, वहां पर हेतुक अपना महत्व खो देता है । वर्तमान मामले में प्रथमतया, अभिलेख पर उस व्यक्ति की पहचान प्रकट करने के लिए कुछ नहीं है जिसे बलात्संग के लिए दोषसिद्ध किया गया था, उसके अपीलार्थी के साथ समय की प्रास्थिति के संबंध में भी प्रकट करने के लिए कुछ नहीं है और इसके अतिरिक्त अभिलेख पर इस लड़की की पहचान या उसके सह-अभियुक्त कश्मीर सिंह के साथ समय का अवधारण करने के लिए कुछ नहीं है । इसके अतिरिक्त दोषसिद्धि घटना के 20 वर्ष पूर्व की गई थी । इस तथ्य को साबित करने के लिए किसी स्वतंत्र साक्षी की परीक्षा नहीं की गई है कि अपीलार्थी कश्मीर सिंह के साथ बातचीत नहीं थी । ऐसे मामले में जहां साक्षियों का प्रत्यक्ष साक्ष्य है जिस पर अवलंब लिया जा सकता है, हेतुक का अभाव मामले को नामंजूर करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता । किन्हीं भी परिस्थितियों में हेतुक उपलब्ध प्रत्यक्ष साक्ष्य का स्थान सबूत के रूप में नहीं ले सकता और इस प्रकार के मामले में हेतुक का सबूत पूर्णतया सुसंगत नहीं है ।

10. आपराधिक मामलों में साक्षियों के सकारात्मक, स्पष्ट, तर्कपूर्ण और विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी परिसाक्ष्य पर एकमात्र रूप से आधारित हेतुक पूर्णतया सुसंगत होता है । ऐसी तथ्यपरक स्थिति में अपराध कारित करने के लिए प्रबल हेतुक का मात्र अभाव अभियुक्त को किसी प्रकार सहायक नहीं हो सकता । किसी अपराध के पीछे का हेतुक सुसंगत तथ्य है जिसके संबंध में साक्ष्य दिया जा सकता है । हेतुक का अभाव भी एक परिस्थिति है जो साक्ष्य का मूल्यांकन करने के लिए सुसंगत हो सकेगी । [देखिए **गुरचरण सिंह और एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **राजिन्दर कुमार और**

---

[1] ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 460.

**एक अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **दातर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] और **राजेश गोविन्द जगेशा** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामले ।]

11. **शिव शंकर सिंह** बनाम **झारखंड राज्य और अन्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने हेतुक के मुद्दे पर चर्चा करते समय निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> "तथापि, हेतुक का सबूत उन मामलों की पृष्ठभूमि में पीछे हो जाता है जहां अभियोजन घटना के प्रत्यक्षदर्शी वर्णन पर अवलंब लेता है । यह इस कारण से है क्योंकि यदि न्यायालय प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अभिसाक्ष्य का उचित मूल्यांकन करने पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि उनके द्वारा दिया गया वर्णन विश्वसनीय है, वहां हेतुक को साबित करने के लिए साक्ष्य का अभाव अपरिणामी बन जाता है । इसके विपरीत यदि अभियोजन अपराध के कारित किए जाने के लिए एक प्रबल हेतुक को साबित करने में असफल होता है किन्तु प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का साक्ष्य अविश्वसनीय या विश्वास के योग्य पाया जाता है, तब हेतुक की विद्यमानता स्वतः अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए एक सुरक्षित आधार नहीं बनती । तथापि, इससे यह अभिप्रेत नहीं है कि ऐसे एक मामले में भी जहां किसी प्रत्यक्षदर्शी साक्षी के वर्णन के आधार पर मामला होता है वहां हेतुक का सबूत अभियोजन पक्षकथन को मजबूती या न्यायालय का सबूत निश्चित रूप से अभियोजन की सहायता करता है और प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों का समर्थन करता है । {देखिए शिवाजी गेनू मोहिते **बनाम** महाराष्ट्र राज्य, (ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 55), हरि शंकर **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य, [(1996) 9 एस. सी. सी.] और उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** किशनपाल और अन्य [(2008) 16 एस. सी. सी. 73] वाले मामले ।}

उपर्युक्त को देखते हुए अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए तर्क पर विचार किए जाने के लिए गुणता नहीं है ।

12. अपीलार्थी की ओर से इसके आगे यह दलील दी गई है कि

---

[1] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 1322.

[2] ए. आई. आर. 1974 एस. सी. 1193.

[3] ए. आई. आर. 2000 एस. सी. 160.

[4] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 1403.

क्योंकि अपीलार्थी को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 के अधीन कभी भी आरोपित नहीं किया गया था इसलिए जब तक यह साबित न कर दिया जाए कि मृतक के सिर पर अपीलार्थी द्वारा कारित की गई क्षति मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थी, अपीलार्थी को पूर्णरूपेण धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध नहीं किया जाना चाहिए । इस प्रकार दी गई दलील यह मात्र इस कारण से विचार किए जाने योग्य नहीं है कि अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल कोई भी हित के प्रतिकूल बात दर्शाने में असमर्थ रहे हैं जो कोई भी हो और यह कि अपीलार्थी के हित के प्रतिकूल क्या घटित हुआ । यद्यपि ऐसा आरोप उसके विरुद्ध विरचित नहीं किया गया है । वह सदैव इन सभी तथ्यों से पूर्णतया भिज्ञ था कि वह वस्तुतः कश्मीर सिंह और हीरा सिंह के साथ मृतक की हत्या करने के आशय से गया था । दोनों ने निस्संदेह मृतक मुख्तियार सिंह पर क्षतियां कारित की हैं । अपीलार्थी को इसके अतिरिक्त मृतक के शरीर के महत्वपूर्ण अंग सिर पर घोर क्षति कारित करने का दोषी पाया गया है । इसलिए उक्त मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस प्रकार प्रस्तुत की गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

13. **शनिचर साहनी** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऊपर वर्णित विवाद्यक पर विस्तार से चर्चा की । पूर्वतर अनेक निर्णय पर विचार करते हुए निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> "इसलिए ..... जब तक दोषसिद्ध व्यक्ति यह साबित करने में सफल नहीं होता कि आरोपों की विरचना में त्रुटि से उसे वास्तव में उसके हित के प्रतिकूल कारित हुआ है और उसे इस संबंध में सूचित नहीं किया गया था कि उसके विरुद्ध वास्तविक पक्षकथन क्या था और वह उचित रूप से स्वयं की प्रतिरक्षा नहीं कर सका था, मात्र तकनीकियों के आधार पर कोई हस्तक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है । वस्तुतः दोषसिद्धि आदेश की हित के प्रतिकूल सिद्धांत की कसौटी पर परीक्षा की जानी होती है ।"

14. आरोपों की विरचना में त्रुटि इतनी गंभीर होनी चाहिए कि यह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 464/465 के अधीन आ सकती हो जो यह उपबंध करती है कि दंडादेश या दोषसिद्धि का कोई आदेश केवल इस आधार पर अविधिमान्य नहीं समझा जाएगा कि कोई आरोप विरचित नहीं

---

[1] ए. आई. आर. 2010 एस. सी. 3786.

किया गया था या आरोपों में कुछ अनियमितता या लोप या कुसंयोजन था जब तक कि न्यायालय यह निष्कर्ष नहीं निकालता कि इसके परिणामस्वरूप न्याय की विफलता भी हुई थी । इसका अवधारण करने पर कि क्या सुसंगत आरोपों की विरचना में कोई त्रुटि या अनियमितता से न्याय की विफलता हुई है, न्यायालय को इसको विचार में लाना चाहिए कि क्या कार्रवाइयों के दौरान किसी पूर्वतर प्रक्रम पर कोई आपत्ति उठाई जा सकती थी या नहीं । हित के प्रतिकूल या दोषिता के प्रश्न की परीक्षा करते समय न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक अभियुक्त को ऋजु विचारण का अधिकार है, जहां उसे इस बात की जानकारी होती है कि उसका किसी बात के लिए विचारण किया जा रहा है और उसके विरुद्ध जो तथ्य साबित किए जाने की ईप्सा की गई है, वे उसे ऋजुतापूर्वक और स्पष्ट रूप से स्पष्ट किए गए हैं, और इसके अतिरिक्त जहां उसे उक्त आरोपों के विरुद्ध स्वयं की प्रतिरक्षा करने का पूरा और ऋजु अवसर दिया गया है ।

15. 'न्याय की विफलता' यह एक अत्यंत ही वशवर्ती या सरल अभिव्यक्ति है जो किसी भी मामले में किसी भी स्थिति में प्रयोग की जा सकती है । न्यायालय को सत्य का पता लगाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए । 'न्याय की विफलता' न केवल अनुचित दोषसिद्धि से होगी, अपितु अपेक्षित साक्ष्य प्रस्तुत करने में अऋजु विफलता के परिणामस्वरूप दोषी की दोषमुक्ति के द्वारा भी परिणाम होगी । वस्तुतः अभियुक्त के अधिकारों को और इसी भांति रक्षोपायों को भी ध्यान में रखना चाहिए किन्तु उनको इतना भी अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए कि यह भूला दिया जाए कि पीड़िता के भी अधिकार होते हैं । यह दर्शित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त को भारतीय दांडिक विधि शास्त्र के अधीन उसे उपलब्ध संरक्षाओं के संबंध में अवमूल्यन हुआ है या कुछ निःशक्तता पहुंची है । 'न्याय की विफलता' इसके व्यापक भाव में निर्वचन किए जाने में अयोग्य है और आपराधिक विधि शास्त्र लागू किया जाना चाहिए । अन्वेषण या विचारण के संबंध में हित के प्रतिकूल का अभिवाक् होना चाहिए और न कि उनकी व्यापकता के बाहर आने वाले मामलों के संबंध में । एक बार अभियुक्त को यह दर्शित करने में समर्थ होने पर भी उसका हित का प्रतिकूल उन पहलुओं में से किसी के संबंध में गंभीर रूप से प्रभावित हुआ है और यह

कि इससे उसे विधि शास्त्र के अधीन उपलब्ध अधिकारों की हानि हुई है, तब अभियुक्त न्यायालय के आदेशों के अधीन फायदा की ईप्सा कर सकता है । (देखिए **रफीक अहमद** उर्फ **रफी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1], **रत्तीराम और अन्य** बनाम **मध्य प्रदेश (राज्य पुलिस निरीक्षक के माध्यम से)**[2] और **भीमन्ना** बनाम **कर्नाटक राज्य**[3] वाले मामले ।)

16. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं है कि अपीलार्थी का सह-अभियुक्त के साथ मृतक की हत्या करने का सामान्य आशय था और इसलिए अपीलार्थी इस प्रकार से दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है । अपनी दलील को प्रबल करने के लिए उन्होंने इस न्यायालय द्वारा **धन्ना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[4] वाले मामले में दिए गए निर्णय पर प्रबलता से निर्णय लिया है जिसमें इस न्यायालय ने निम्न अभिनिर्धारित किया है :–

> "इसलिए न्यायालय को यह स्वतंत्रता है कि दंड संहिता, 1860 की धारा 34 का उपयोग करे यद्यपि उक्त धारा आरोप में विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं की गई थी .....। वस्तुतः ऐसा निष्कर्ष कि संबंधित हमलावर का अन्य अभियुक्त के साथ सामान्य आशय था, यह ऐसी प्रक्रिया का प्रयोग करने के लिए आवश्यक है ।"

17. यह दलील भी अपीलार्थी के पक्ष में नहीं जाती है । वह रीति जिसमें क्षति सं. 1 कारित की गई है स्पष्ट रूप से यह सुझाती है कि दोनों अभियुक्तों ने सामान्य आशय को अग्रसर करने में कृत्य किया है । इस प्रकार हम उपर्युक्त दलील में कोई बल नहीं पाते हैं ।

18. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इसके आगे यह दलील दी कि पुलिस द्वारा किया गया अन्वेषण परिवादी के पक्ष में होने के कारण दूषित था क्योंकि अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 9) ने स्वयं अपनी प्रतिपरीक्षा में यह स्वीकार किया कि उन्होंने बोहर सिंह का इस संबंध में कथन अभिलिखित किया था कि अपीलार्थी अकेला साक्षी था और बोहर सिंह और छेड़खानी किए जाने पर मृतक द्वारा अन्यों पर हमला और

---

[1] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 3114.

[2] ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 1485.

[3] 2005 की दांडिक अपील सं. 46 जिसका विनिश्चय 4 सितम्बर, 2012 को किया गया ।

[4] (1996) 10 एस. सी. सी. 79.

क्षतिग्रस्त किए जाने को देखा था । बोहर सिंह की भी चिकित्सीय जांच की गई थी और उसके शरीर पर क्षतियां पाई गई थीं । तथापि, ऐसे तथ्यों के संबंध में उसका कथन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

विचारण न्यायालय ने उक्त विवाद्यक पर विस्तृत रूप से चर्चा की है और यह अभिनिर्धारित किया कि यह वर्णन एक गढ़ा गया वर्णन था कि यह कारण कि बोहर सिंह और अन्य सह-अभियुक्त एक दूर के स्थान सिविल अस्पताल जीरा गए थे और वहां पर स्वयं की चिकित्सीय जांच कराई थी और निकट के अस्पताल में नहीं कराई थी जिससे कि परिवादी पक्ष से झगड़े से बचा जा सके और क्योंकि पुलिस वहां पर शव-परीक्षा के लिए मृतक का शव ले गई थी, जिसके लिए परिवादी पक्ष भी वहां पर उपस्थित रहा होगा, यह वस्तुतः मुख्तियार सिंह का शव शव-परीक्षा किए जाने के लिए सिविल अस्पताल जीरा ले जाया गया था और इसलिए, प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया पक्षकथन स्पष्ट रूप से एक मिथ्या वर्णन था और अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए पूर्ण रूप से कोई सामग्री, जो कोई भी हो, वहां पर नहीं थी कि बोहर सिंह या किसी अन्य अभियुक्त को उक्त घटना में कोई क्षति पहुंची थी ।

19. उपर्युक्त को देखते हुए, हम उक्त अपील में कोई बल नहीं पाते हैं । अपील के तथ्य निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित किए गए निष्कर्षों का पुनर्विलोकन किए जाने की अपेक्षा नहीं करते हैं । अपील गुणता रहित है और तदनुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

अनू.

---

## उत्तर प्रदेश राज्य

बनाम

## मुनेश

12 अक्तूबर, 2012

**न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् और न्यायमूर्ति रंजन गोगई**

**दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 और 376 – हत्या और बलात्संग – अभियुक्त द्वारा 11 वर्ष की बालिका के साथ बलात्संग करने के पश्चात् उसकी गला घोंट कर हत्या करना – प्रथम इत्तिला सूचना विलम्बित न होना – दो व्यक्तियों द्वारा घटना देखा जाना – प्रत्यक्षदर्शी स्वतंत्र साक्षी का साक्ष्य निष्पक्ष व सही पाया जाना – अभियुक्त-अपीलार्थी की निचले न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि मान्य ठहराई गई तथा उच्च न्यायालय का दोषमुक्ति का निर्णय अपास्त किया गया ।**

**दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 और 376 – हत्या और बलात्संग – 11 वर्ष की बालिका की बलात्संग के पश्चात् हत्या किया जाना – वीर्य जांच परीक्षण की रिपोर्ट का अभाव घातक नहीं है जब मृतका का योनिच्छद फटा हुआ पाया गया तथा प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों के अनुसार मृतका की योनि से खून बहना और उसके गुप्तांगों पर क्षति पाई गई ।**

प्रस्तुत मामले में, यह अपील उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा 2003 की दांडिक अपील सं. 737 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 अक्तूबर, 2003 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने इसमें यहां प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर किया और उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और 376 के अधीन दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त किया और विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (आर्थिक अपराध अधिनियम), बुलंदशहर द्वारा 2002 की सेशन मामला सं. 748 में तारीख 15 फरवरी, 2003 को पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया था । राज्य की अपील मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 के साक्ष्यिक महत्व के संबंध में इस पर कोई विवाद नहीं है कि दोनों ही मृतका के संबंधी नहीं

हैं । दूसरी ओर, वे स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिन्होंने वस्तुतः घटना को देखा था । मदन लाल (अभि. सा. 2), ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि कांछी लाल (अभि. सा. 1), मृतका (आहत) का पिता उसके गांव का था और उसकी पुत्री का नाम रोशनी था जिसकी आयु ठीक 11 वर्ष थी जब उक्त घटना घटित हुई थी । उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त मुनेश-इसमें यहां प्रत्यर्थी भी उसी के गांव का था । उसने न्यायालय के समक्ष यह वर्णन किया कि तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 बजे वह उसके गांव मन्ना की ओर जाने वाले अपने खेत के रास्ते से एक और गांववासी सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) के साथ जा रहा था और अंततः जब वे जलील खादर के खेत में लगे ट्यूबवेल के निकट पहुंचे जिसमें कि गेहूं की फसल तैयार खड़ी हुई थी, उस समय उन्होंने चीखने की आवज सुनी । उसे सुनकर वे तुरंत उस दिशा की ओर दौड़े थे । घटनास्थल पर पहुंचने पर उन्होंने देखा कि रोशनी वहां जमीन पर पड़ी हुई थी, और उस समय मुनेश-अभियुक्त ने उसके गले पर एक फंदा बांधा और उसकी गांठ कस दी । उसके कृत्य को देखकर दोनों ने उससे पूछा "तुम क्या कर रहे हो" । इसके आगे उसने कथन किया कि मृतका का गला घोंटने के पश्चात्, वह दक्षिण दिशा की ओर भाग गया और उन्होंने भी उसका पीछा किया किन्तु अभियुक्त को पकड़ न सके । तत्पश्चात्, वे घटनास्थल पर वापस लौटे और उन्होंने रोशनी को जमीन पर नग्न दशा में पड़ा हुआ पाया और उसके गले पर फंदा लपेटा हुआ था । उसकी सलवार और कच्छा उसके शरीर के निकट पड़े हुए थे । तुरंत ही, उन्होंने उसके पिता अभि. सा. 1 को इस संबंध में सूचित किया । अभि. सा. 2 ने न्यायालय में मुनेश-अभियुक्त की शनाख्त की और यह प्रख्यान किया कि यह वही व्यक्ति था जिसने उक्त कार्य कारित किया था । यद्यपि अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने हमारी अवेक्षा में यह लाया है कि कुछ कथन उसके द्वारा अन्वेषक अधिकारी के समक्ष नहीं किए गए हैं, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन उसके कथन की जांच-पड़ताल किए जाने पर और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) के कथन और इसी भांति न्यायालय के समक्ष उसके साक्ष्य की जांच-पड़ताल करने पर हम संतुष्ट हैं कि विरोधाभास, यदि कोई हो, अधिक नहीं है और वह उसके कथन की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करेगा । यह निर्विवादित है कि वह मृतका का नातेदार नहीं है, दूसरी ओर, वह अभि. सा. 1 और अभियुक्त के गांव का ही रहने वाला एक स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है । (पैरा 7 और 8)

अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अगला प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) है । अपने साक्ष्य में, उसने यह कथन किया है कि अभि. सा. 6 उसके स्वयं के गांव का है और घटना के समय, उसकी पुत्री की आयु लगभग 11 वर्ष थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि अभियुक्त-मुनेश भी उनके गांव का ही था । अभि. सा. 2 के समान ही अभि. सा. 3 ने भी यह वर्णन किया है कि घटना तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 से 5.00 बजे के बीच घटित हुई थी । इसके आगे उसने यह कथन किया कि वह अभि. सा. 2 के साथ अपने खेत में से जा रहे थे और जब वे जलील खादर के ट्यूबवेल के निकट पहुंचे, उन्होंने चीखने की आवज सुनी, जिसके कारण वे उस दिशा की ओर दौड़े थे । उन्होंने देखा कि मुनेश-अभियुक्त पहले ही रोशनी के ऊपर से उठ चुका था जिसके कारण उन्होंने उस पर चिल्लाया था । इसी दौरान अभियुक्त ने आहत (रोशनी) के गले पर उसकी चुन्नी (दुपट्टे) का फंदा बनाया और उसे खींचते हुए कसा । तत्पश्चात्, वह दक्षिण दिशा की ओर भाग गया । अभि. सा. 2 के समान ही, उसने भी उसका पीछा किया किन्तु अभियुक्त को पकड़ नहीं सका । जब वे वापस लौटे, तब उन्होंने देखा कि रोशनी जमीन पर नग्न पड़ी हुई थी । उसकी सलवार और कच्छा भी उसके शरीर के निकट पड़े हुए थे । उसके यौनि क्षेत्र से रक्त बह रहा था और उसके हाथ गोबर से सने हुए थे । तत्पश्चात्, इसके संबंध में कांछी लाल (अभि. सा. 1), मृतका के पिता को सूचित किया । अभि. सा. 2 के समान ही उसने भी न्यायालय में अभियुक्त की शनाख्त की । उसने, प्रतिपरीक्षा में भी, यह प्रख्यान किया कि जब उन्होंने रोशनी को प्रथम बार देखा, तब उसके गले के चारों ओर एक फंदा लपेटा हुआ था और अभियुक्त उक्त फंदे के दोनों सिरों को पकड़े हुए था और उसे उसके गले पर खींच कर कस रहा था । उसने इस सुझाव का खंडन किया कि मृतका के परिवार का समर्थन करने के लिए वह एक मिथ्या कथन कर रहा था । यहां पुनः, विद्वान् काउंसेल ने पुलिस अधिकारी के समक्ष कथन में और न्यायालय के समक्ष उसके कथन में कतिपय विसंगतियों का उल्लेख किया है । हमने सावधानीपूर्वक उनकी जांच-पड़ताल की है और इस बाबत संतुष्ट हैं कि अभिकथित विसंगतियां प्रकृति में छोटी हैं और अभियोजन पक्षकथन को प्रभावित नहीं करती हैं । उच्च न्यायालय ने गौढ़ विसंगतियां विशेष रूप से अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए उनके कथनों और न्यायालय के समक्ष उनके साक्ष्य की अवेक्षा करते हुए उनके द्वारा किए गए वर्णनों पर अविश्वास किया । हम सहमत हैं कि उच्च न्यायालय ने उनके साक्ष्य

नामंजूर करने में एक त्रुटि कारित की है । हम पहले ही यह कथन कर चुके हैं कि वे स्वतंत्र साक्षी हैं और उन्होंने थोड़ी ही दूरी से घटना को देखा था और उनके वर्णन पर अविश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं है । अब, न्यायालय को अभि. सा. 1, आहत के पिता के साक्ष्य पर विचार करना है । यह सत्य है कि वह एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है किन्तु उसका कथन अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 द्वारा किए गए कथनों की संपुष्टि करता है । यह उसका साक्ष्य है कि मृतका-रोशनी उसकी पुत्री थी और घटना के समय उसकी आयु लगभग 11 वर्ष थी । इसके आगे उसने यह अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 3 मई, 2002 को अपराह्न लगभग 4.30 बजे वह जाटवों के शमशान घाट पर गोबर के कंडे बनाने के लिए अकेली गई थी । उस समय मुनेश-अभियुक्त, जो उसके गांव का ही था, जबरदस्ती बुरे आशयों के साथ उसे खींच कर जलील खादर के गेहूं के खेत में ले गया । उसने यह भी कथन किया कि उसकी पुत्री की चीख-पुकार सुनकर मदन लाल (अभि. सा. 2) और सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) जो निकटवर्ती खेत से जा रहे थे, अभियुक्त पर चिल्लाए थे और उसे पकड़ने का प्रयत्न किया था । उसने यह भी स्पष्ट किया कि किस प्रकार अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने अभियुक्त का पीछा किया और घटना के संबंध में उसे सूचित किया था । तत्पश्चात्, उसके अनुसार वह गांववासियों के साथ घटनास्थल की ओर दौड़ा था और देखा कि उसकी पुत्री वहां न केवल नग्न दशा में पड़ी हुई थी अपितु उसकी चुन्नी भी उसके गले के चारों ओर एक फंदा के रूप में कसी हुई पड़ी थी । अपने गांव में अभियुक्त की तलाशी करने के पश्चात् और यह पाने के पश्चात् कि वह लापता था उसने पुलिस थाना खुर्जा जंक्शन पर लिखित परिवाद दर्ज कराया जो प्रदर्श क-1 है । उसने अभियुक्त की भी पहचान की जो कठघरे में उपस्थित था । उसने इस अभिकथन का खंडन किया कि उसने अभियुक्त को कुछ चुनावी विवाद के कारण मिथ्या से आलिप्त किया है । अभि. सा. 1 के वर्णन पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं है और विचारण न्यायालय ने उस पर सही तौर पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 के कथनों के साथ अवलंब लिया है । दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने सारहीन आधार पर उसके साक्ष्य को नामंजूर किया है । (पैरा 9, 10 और 11)

प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में विलंब के बाबत अगली दलील पर विचार करते हुए, यह विवादित नहीं है कि घटना तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 बजे घटित हुई थी और परिवाद अभि. सा. 1 द्वारा उसी दिन अपराह्न 11.05 बजे दर्ज कराया गया था । साक्ष्य में

यह भी स्पष्ट हुआ है कि घटनास्थल और पुलिस थाने के बीच दूरी दो किलोमीटर की है । यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि परिवाद दर्ज कराए जाने में विलंब हुआ था, यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि अभि. सा. 1 - आहत का पिता एक ग्रामवासी है और अभि. सा. 2 और 3 के माध्यम से घटना के संबंध में सुनने पर, वह घटनास्थल की ओर दौड़ा था, अपनी पुत्री के शरीर को ढंकने के लिए व्यवस्थाएं की थीं, को अभियुक्त को खोज निकालने के लिए कुछ समय तलाश की थी और तत्पश्चात्, पुलिस थाना अपराह्न 11.05 बजे पहुंचा था जिसकी दूरी दो किलोमीटर है । यदि हम संपूर्ण घटना पर विचार करें जैसाकि अभि. सा. 1 द्वारा वर्णन किया गया है, तब यह अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है कि वहां पर अयुक्तियुक्त और अव्यक्त विलंब किया गया था जो कि अभियोजन पक्षकथन की जड़ को खंडित करता हो । दूसरी ओर, प्रस्तुत की गई सामग्रियों पर विचार करते हुए, न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि विलंब को अभि. सा. 1 द्वारा उचित रूप से स्पष्ट किया गया है, इसके विपरीत भी, इसका एक असमान्य होने के रूप में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा त्रुटिपूर्ण मत व्यक्त किया गया है । यद्यपि यह कथन किया गया है कि सभी विवरण जो कि अभि. सा. 1, 2 और 3 द्वारा बताए गए प्रथम इत्तिला सूचना में उल्लेख नहीं किए गए थे जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा सही तौर पर मत व्यक्त किया गया है, किन्तु प्रथम इत्तिला सूचना एक विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिया) नहीं है । यह घटना के घटित होने की एक सूचना मात्र है और इसमें उक्त घटना से संबंधित सभी तथ्यों को अन्तर्विष्ट किए जाने की आवश्यकता नहीं है । अन्वेषक अधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन और न्यायालय के समक्ष साक्ष्य के बीच भिन्नता के संबंध में दलील पर विचार करते हुए, हम पहले ही यह अभिव्यक्त कर चुके हैं कि विरोधाभास अधिक नहीं है और इनसे अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं हुआ है । यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि अन्वेषक अधिकारी के समक्ष कथन और न्यायालय के समक्ष कथन कुछ अंतराल के पश्चात् किए गए थे और कथनों में कुछ भिन्नता (फेर-फार) होना अवश्यंभावी है । दोनों कथनों की जांच करने के पश्चात, हम संतुष्ट हैं कि लोप अधिक नहीं है और अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है और इससे अभियोजन साक्ष्य के हित के प्रतिकूल कुछ कारित नहीं होना चाहिए । तदनुसार हम अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को नामंजूर करते हैं । हम पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि

दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों यथा अभि. सा. 2 और 3 के साक्ष्य न केवल विश्वसनीय हैं अपितु वे स्वतंत्र हैं । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त के साथ किसी पूर्व शत्रुता के अभाव में अभियुक्त को मिथ्या से आलिप्त किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है । (पैरा 12, 13 और 14)

श्री मणि ने यह इंगित किया है कि शुक्राणु जांच परीक्षण रिपोर्ट के अभाव में, बलात्संग के संबंध में निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । यह सत्य है कि अभि. सा. 4 ने कथन किया है कि शुक्राणु अंतर्विष्ट करने वाली स्लाइड, जिसे परीक्षण के लिए भेजा गया था, जांच रिपोर्ट के साथ अभी तक वापस नहीं आई है । ऐसी रिपोर्ट के अभाव में बलात्संग के बारे में अभियोजन पक्षकथन पर संदेह नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से, चिकित्सक के स्पष्ट निष्कर्षों के प्रकाश में कि उसका योनिच्छद विदीर्ण हुआ पाया गया था । अन्य अभियोजन साक्षियों ने भी उसके गुप्तांग पर क्षति और रक्त के रिसने का कथन किया है । चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा यह साबित हुआ है कि आहत से उसकी मृत्यु से पूर्व बलात्संग किया गया था और उसकी तारीख 5 मार्च, 2002 को मृत्यु हो गई । दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्षकथन रिकार्ड पर के चिकित्सीय साक्ष्य से पूरी तरह से संपुष्ट हुआ है और दुर्भाग्यपूर्वक उच्च न्यायालय उक्त साक्ष्य को महत्व देने में विफल रहा था । अंततः प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि चुन्नी (दुपट्टा) जिसे गर्दन को दबाने के लिए अभिकथित रूप से प्रयोग किया गया था, की बरामदगी की विफलता अभियोजन पक्षकथन के विरुद्ध जाती है । यह सत्य है कि अभियोजन ने उसे नहीं पाया है किन्तु तात्विक वस्तुओं के प्रकाश में, अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य, चिकित्सक, जिसने शवपरीक्षण किया है, के कथन, उसके मत इत्यादि, अभियोजन पक्षकथन को प्रचुरता से साबित करते हैं और हम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के दावे को खारिज करते हैं । राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर विश्व में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों से संबंधित मामलों और बलात्कार के मामलों में अत्यधिक बढ़ोतरी प्रमुख चिंता का विषय है । भारत इसका कोई अपवाद नहीं है । यद्यपि कानूनी उपबंध ऐसे अपराधियों के विरुद्ध सख्त दंड का उपबंध करते हैं, न्यायालय के लिए यह अन्ततोगत्वा निर्णय करना होता है कि क्या ऐसी घटना हुई है या नहीं । न्यायालयों को साक्ष्य का मूल्यांकन करने में अत्यधिक सतर्क होना चाहिए और अपराधी को मात्र सारहीन आधारों पर सही सलामत नहीं छोड़ा जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने बलात्संग किया था, जो नैतिक अंतःभावना को झकझोर देता है क्योंकि उसने अपनी कामुकता को संतुष्ट करने के

लिए एक 11 वर्ष की आयु की लड़की को चुना और बाद में उसकी हत्या कर दी थी । अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए मौखिक स्वीकार्य बातों और दस्तावेजी साक्ष्य, विशेष रूप से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 जो स्वतंत्र साक्षी हैं और इसके साथ ही चिकित्सक (अभि. सा. 4) के साक्ष्य को देखते हुए, हम विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से असहमति व्यक्त करते हैं । उच्च न्यायालय का विश्लेषण और अंततः निष्कर्ष, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए स्वीकार्य और विश्वसनीय सामग्री के प्रतिकूल हैं और हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियुक्त ने पहले बलात्संग का अपराध कारित किया और इसके पश्चात् मृतका की हत्या की । हम संतुष्ट हैं कि अभियोजन ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 376 और 302 के अधीन दोनों आरोपों को सिद्ध किया है । (पैरा 16, 18, 19 और 20)

**अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2007 की दांडिक अपील सं. 180.**

इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा 2003 की दांडिक अपील सं. 737 में तारीख 16 अक्तूबर, 2003 को पारित किए गए अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

**याची की ओर से** श्री अभिष्ठ कुमार

**प्रत्यर्थी की ओर से** श्री एम. एम. कश्यप

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. सदाशिवम् ने दिया ।

**न्या. सदाशिवम्** – यह अपील उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा 2003 की दांडिक अपील सं. 737 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 अक्तूबर, 2003 के अंतिम निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अधीन उच्च न्यायालय ने इसमें यहां प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर किया और उसे भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 और 376 के अधीन दंडनीय अपराधों से दोषमुक्त किया और विद्वान् अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (ई. सी. ऐक्ट), बुलंदशहर द्वारा 2002 की सेशन मामला सं. 748 में तारीख 15 फरवरी, 2003 को पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया था ।

2. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन निम्न प्रकार हैं :–

(क) तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न लगभग 4.30 बजे रोशनी (मृतका), जिसकी आयु लगभग 11 वर्ष थी, कालंदर गढ़ी,

पुलिस थाना खुर्जा नगर, बुलंदशहर, उत्तर प्रदेश में स्थिति अपने घर से अकेली जाटवों के शमशान घाट पर गाय के गोबर के कंडे बनाने के लिए गई थी और जब वह अपना कार्य कर रही थी, तब प्रत्यर्थी-अभियुक्त उसे बलपूर्वक जलील खादर के गेहूं के खेत में बूरे आशय से उसे ले गया । उसने चीख-पुकार की और उसकी चीख-पुकार सुनकर, मदन लाल (अभि. सा. 2) और सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) जो थोड़ी दूर पर वहां से जा रहे थे उक्त खेत में पहुंचे और देखा कि प्रत्यर्थी-अभियुक्त एक दुपट्टे से उसका गला घोंट रहा था । उन्हें देखकर प्रत्यर्थी-अभियुक्त भाग गया और जब उन्होंने उसका पीछा करने का प्रयत्न किया, तब उन्हें हाथ नहीं लगा । जब वे वापस लौटे, तब रोशनी नग्न अवस्था में घटनास्थल पर मृत पड़ी पाई गई थी । दोनों ने कांछी लाल (अभि. सा. 1), मृतका के पिता-परिवादी को उक्त घटना के संबंध में सूचित किया और अपराह्न 11.05 बजे अभि. सा. 1 ने पुलिस चौकी खुर्जा जंक्शन, जिला बुलंदशहर पर 2002 की अपराध सं. 66 के रूप में प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराई और अपीलार्थी के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 376, 302 और 511 के अधीन एक मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था ।

(ख) अन्वेषण के पश्चात् छत्रपाल सिंह पुलिस उपनिरीक्षक (अभि. सा. 7) ने तारीख 14 मार्च, 2002 को अभियुक्त को गिरफ्तार किया । आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया था और 2002 की सेशन मामला सं. 748 के रूप में संख्यांकित किया गया ।

(ग) अपर सेशन न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (ई. सी. ऐक्ट) बुलंदशहर ने तारीख 15 फरवरी, 2002 के निर्णय द्वारा प्रत्यर्थी-अभियुक्त को दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और मृत्यु दंड अधिनिर्णीत किया और धारा 376 के अधीन आजीवन कारावास का दंड दिया ।

(घ) उक्त निर्णय से व्यथित होकर प्रत्यर्थी-अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की दांडिक अपील सं. 737 के रूप में एक अपील प्रस्तुत की । अभियुक्त के मृत्युदंड की पुष्टि के लिए 2003 की मृत्यु दंड निर्देश सं. 7 भी फाइल की गई थी जिस पर अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील के साथ सुनवाई की गई । उच्च न्यायालय ने तारीख 16 अक्तूबर, 2003 के आक्षेपित निर्णय द्वारा

प्रत्यर्थी-अभियुक्त द्वारा फाइल की गई अपील को मंजूर किया और उसे सभी आरोपों से दोषमुक्त किया और मृत्यु दंड निर्देश भी नामंजूर किया ।

(ङ) उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध, राज्य ने विशेष अनुमति द्वारा यह अपील की गई है ।"

3. श्री रत्नाकर दाश अपीलार्थी-प्रत्यर्थी राज्य की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल और प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री जी. एस. मणि को सुना

4. श्री रत्नाकर दाश उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थिति हुए विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने निम्न दलील दीं :–

"(क) उच्च न्यायालय ने दो स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों यथा मदन लाल (अभि. सा. 2) और सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) के कथन पर मात्र इस आधार पर अविश्वास करते हुए, एक त्रुटि कारित की कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन किए गए कथनों और न्यायालय के समक्ष उनके साक्ष्य के बीच कुछ विरोधाभास है ;

(ख) उच्च न्यायालय महत्वपूर्ण तथ्यों का मूल्यांकन करने में विफल हुआ है कि ये दो कथन अर्थात् अन्वेषक अधिकारी के समक्ष कथन और न्यायालय के समक्ष कथन कुछ अंतराल के पश्चात् किए गए थे और कथनों में कुछ फेर-फार हो सकता है । तथापि, न्यायालय में लोप अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है ;

(ग) उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही नहीं था कि प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराने में विलंब हुआ है । यदि वहां पर विलंब हुआ है तब यह परिवादी-अभि. सा. 1, मृतका के पिता द्वारा उचित रूप से स्पष्ट किया गया है ; और

(घ) चूंकि अभियोजन पक्षकथन अभिलेख पर के चिकित्सीय साक्ष्य से पूर्णतया संपुष्टि किया गया है कि आहत के साथ उसकी मृत्यु के पूर्व बलात्संग किया गया था और उसकी क्षतियों के परिणामस्वरूप तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 बजे मृत्यु हुई थी, ये सभी पहलू उचित रूप से विचार किए गए हैं और उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करने में एक गंभीर त्रुटि कारित की है ।"

5. दूसरी ओर श्री जी. एस. मणि, प्रत्यर्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य में विरोधाभासों विशेष रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अन्वेषक अधिकारी के समक्ष किए गए उनके कथनों और न्यायालय के समक्ष उनके साक्ष्य के बीच विरोधाभासों को देखते हुए उच्च न्यायालय उनके वर्णन पर अविश्वास करने में पूर्णतया न्यायोचित था । उन्होंने यह उल्लेख किया कि चुन्नी (दुपट्टा) की बरामदगी न होना अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक है । उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि अभियोजन हेतुक को साबित करने में विफल हुआ है और एक ही समय पर बलात्संग और हत्या कारित करना अत्यंत ही असंभव है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार परिवाद दर्ज कराने में असामान्य विलंब हुआ था और मृत्यु समीक्षा उसी रात्रि नहीं की गई थी । इसके आगे उन्होंने उल्लेख किया कि इन सभी पहलू का उच्च न्यायालय द्वारा सही तौर पर मूल्यांकन किया गया था और दोषमुक्ति का आदेश दिया गया था । अंततः श्री मणि ने यह दलील दी कि क्योंकि उच्च न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए दोषमुक्ति का आदेश दिया था, इसलिए उसमें इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 136 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है ।

6. हमने विरोधी दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और सुसंगत सामग्रियों और इसी भांति विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय की तर्कणाओं पर भी विचार किया है ।

7. प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 के साक्ष्यिक महत्व के संबंध में इस पर कोई विवाद नहीं है कि दोनों ही मृतका के संबंधी नहीं हैं । दूसरी ओर, वे स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी हैं जिन्होंने वस्तुतः घटना को देखा था । मदन लाल (अभि. सा. 2), ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि कांछी लाल (अभि. सा. 1), मृतका (आहत) का पिता उसके गांव का था और उसकी पुत्री का नाम रोशनी था जिसकी आयु ठीक 11 वर्ष थी जब उक्त घटना घटित हुई थी । उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त मुनेश-इसमें यहां प्रत्यर्थी भी उसी के गांव का था । उसने न्यायालय के समक्ष यह वर्णन किया कि तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 बजे वह उसके गांव मन्ना की ओर जाने वाले अपने खेत के रास्ते से एक और गांववासी सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) के साथ जा रहा था और अंततः जब वे जलील खादर के खेत में लगे ट्यूबवेल के निकट पहुंचे

जिसमें कि गेहूं की फसल तैयार खड़ी हुई थी, उस समय उन्होंने चीखने की आवज सुनी । उसे सुनकर वे तुरंत उस दिशा की ओर दौड़े थे । घटनास्थल पर पहुंचने पर उन्होंने देखा कि रोशनी वहां जमीन पर पड़ी हुई थी और उस समय मुनेश-अभियुक्त ने उसके गले पर एक फंदा बांधा और उसकी गांठ कस दी । उसके कृत्य को देखकर दोनों ने उससे पूछा "तुम क्या कर रहे हो" । इसके आगे उसने कथन किया कि मृतका का गला घोंटने के पश्चात्, वह दक्षिण दिशा की ओर भाग गया और उन्होंने भी उसका पीछा किया किन्तु अभियुक्त को पकड़ न सके । तत्पश्चात्, वे घटनास्थल पर वापस लौटे और उन्होंने रोशनी को जमीन पर नग्न दशा में पड़ा हुआ पाया और उसके गले पर फंदा लपेटा हुआ था । उसकी सलवार और कच्छा उसके शरीर के निकट पड़े हुए थे । तुरंत ही, उन्होंने उसके पिता अभि. सा. 1 को इस संबंध में सूचित किया । अभि. सा. 2 ने न्यायालय में मुनेश-अभियुक्त की शनाख्त की और यह प्रख्यान किया कि यह वही व्यक्ति था जिसने उक्त कार्य कारित किया था ।

8. यद्यपि अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने हमारी अवेक्षा में यह लाया है कि कुछ कथन उसके द्वारा अन्वेषक अधिकारी के समक्ष नहीं किए गए हैं, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन उसके कथन की जांच-पड़ताल किए जाने पर और अन्वेषक अधिकारी (अभि. सा. 6) के कथन और इसी भांति न्यायालय के समक्ष उसके साक्ष्य की जांच-पड़ताल करने पर हम संतुष्ट हैं कि विरोधाभास, यदि कोई हो, अधिक नहीं है और वह उसके कथन की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं करेगा । यह निर्विवादित है कि वह मृतका का नातेदार नहीं है, दूसरी ओर, वह अभि. सा. 1 और अभियुक्त के गांव का ही रहने वाला एक स्वतंत्र प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है ।

9. अभियोजन द्वारा अवलंब लिया गया अगला प्रत्यक्षदर्शी साक्षी सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) है । अपने साक्ष्य में, उसने यह कथन किया है कि अभि. सा. 6 उसके स्वयं के गांव का है और घटना के समय, उसकी पुत्री की आयु लगभग 11 वर्ष थी । उसने यह भी स्वीकार किया कि अभियुक्त-मुनेश भी उनके गांव का ही था । अभि. सा. 2 के समान ही अभि. सा. 3 ने भी यह वर्णन किया है कि घटना तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 से 5.00 बजे के बीच घटित हुई थी । इसके आगे उसने यह कथन किया कि वह अभि. सा. 2 के साथ अपने खेत में से जा रहे थे और जब वे जलील खादर के ट्यूबवेल के निकट पहुंचे, उन्होंने चीखने की आवाज

सुनी, जिसके कारण वे उस दिशा की ओर दौड़े थे । उन्होंने देखा कि मुनेश-अभियुक्त पहले ही रोशनी के ऊपर से उठ चुका था जिसके कारण उन्होंने उस पर चिल्लाया था । इसी दौरान अभियुक्त ने आहत (रोशनी) के गले पर उसकी चुन्नी (दुपट्टे) का फंदा बनाया और उसे खींचते हुए कसा । तत्पश्चात्, वह दक्षिण दिशा की ओर भाग गया । अभि. सा. 2 के समान ही, उसने भी उसका पीछा किया किन्तु अभियुक्त को पकड़ नहीं सका । जब वे वापस लौटे, तब उन्होंने देखा कि रोशनी जमीन पर नग्न पड़ी हुई थी । उसकी सलवार और कच्छा भी उसके शरीर के निकट पड़े हुए थे । उसके यौनि क्षेत्र से रक्त बह रहा था और उसके हाथ गोबर से सने हुए थे । तत्पश्चात्, इसके संबंध में कांछी लाल (अभि. सा. 1), मृतका के पिता को सूचित किया । अभि. सा. 2 के समान ही उसने भी न्यायालय में अभियुक्त की शनाख्त की । उसने, प्रतिपरीक्षा में भी, यह प्रख्यान किया कि जब उन्होंने रोशनी को प्रथम बार देखा, तब उसके गले के चारों ओर एक फंदा लपेटा हुआ था और अभियुक्त उक्त फंदे के दोनों सिरों को पकड़े हुए था और उसे उसके गले पर खींच कर कस रहा था । उसने इस सुझाव का खंडन किया कि मृतका के परिवार का समर्थन करने के लिए वह एक मिथ्या कथन कर रहा था । यहां पुनः विद्वान् काउंसेल ने पुलिस अधिकारी के समक्ष कथन में और न्यायालय के समक्ष उसके कथन में कतिपय विसंगतियों का उल्लेख किया है । हमने सावधानीपूर्वक उनकी जांच-पड़ताल की है और इस बाबत संतुष्ट हैं कि अभिकथित विसंगतियां प्रकृति में छोटी हैं और अभियोजन पक्षकथन को प्रभावित नहीं करती हैं ।

10. उच्च न्यायालय ने गौढ़ विसंगतियां विशेष रूप से अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिलिखित किए गए उनके कथनों और न्यायालय के समक्ष उनके साक्ष्य की अवेक्षा करते हुए उनके द्वारा किए गए वर्णनों पर अविश्वास किया । हम सहमत हैं कि उच्च न्यायालय ने उनके साक्ष्य नामंजूर करने में एक त्रुटि कारित की है । हम पहले ही यह कथन कर चुके हैं कि वे स्वतंत्र साक्षी हैं और उन्होंने थोड़ी ही दूरी से घटना को देखा था और उनके वर्णन पर अविश्वास करने के लिए कोई कारण नहीं है ।

11. अब, हमें अभि. सा. 1, आहत के पिता के साक्ष्य पर विचार करना है । यह सत्य है कि वह एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी नहीं है किन्तु उसका कथन अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 द्वारा किए गए कथनों की संपुष्टि करता है । यह उसका साक्ष्य है कि मृतका-रोशनी उसकी पुत्री थी और घटना के समय उसकी आयु लगभग 11 वर्ष थी । इसके आगे उसने यह

अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 3 मई, 2002 को अपराह्न लगभग 4.30 बजे वह जाटवों के शमशान घाट पर गोबर के कंडे बनाने के लिए अकेली गई थी । उस समय मुनेश-अभियुक्त, जो उसके गांव का ही था, जबरदस्ती बुरे आशयों के साथ उसे खींच कर जलील खादर के गेहूं के खेत में ले गया । उसने यह भी कथन किया कि उसकी पुत्री की चीख-पुकार सुनकर मदन लाल (अभि. सा. 2) और सुरेश चंद्र (अभि. सा. 3) जो निकटवर्ती खेत से जा रहे थे, अभियुक्त पर चिल्लाए थे और उसे पकड़ने का प्रयत्न किया था । उसने यह भी स्पष्ट किया कि किस प्रकार अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3 ने अभियुक्त का पीछा किया और घटना के संबंध में उसे सूचित किया था । तत्पश्चात्, उसके अनुसार वह गांववासियों के साथ घटनास्थल की ओर दौड़ा था और देखा कि उसकी पुत्री वहां न केवल नग्न दशा में पड़ी हुई थी अपितु उसकी चुन्नी भी उसके गले के चारों ओर एक फंदा के रूप में कसी हुई पड़ी थी । अपने गांव में अभियुक्त की तलाश करने के पश्चात् और यह पाने के पश्चात् कि वह लापता था उसने पुलिस थाना खुर्जा जंक्शन पर लिखित परिवाद दर्ज कराया जो प्रदर्श क-1 है । उसने अभियुक्त की भी पहचान की जो कठघरे में उपस्थित था । उसने इस अभिकथन का खंडन किया कि उसने अभियुक्त को कुछ चुनावी विवाद के कारण मिथ्या से आलिप्त किया है । अभि. सा. 1 के वर्णन पर विश्वास करने का कोई कारण नहीं है और विचारण न्यायालय ने उस पर सही तौर पर प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 के कथनों के साथ अवलंब लिया है । दुर्भाग्यवश, उच्च न्यायालय ने सारहीन आधार पर उसके साक्ष्य को नामंजूर किया है ।

12. प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराए जाने में विलंब के बाबत अगली दलील पर विचार करते हुए, यह विवादित नहीं है कि घटना तारीख 5 मार्च, 2002 को अपराह्न 4.30 बजे घटित हुई थी और परिवाद अभि. सा. 1 द्वारा उसी दिन अपराह्न 11.05 बजे दर्ज कराया गया था । साक्ष्य में यह भी स्पष्ट हुआ है कि घटनास्थल और पुलिस थाने के बीच दूरी दो किलोमीटर की है । यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि परिवाद दर्ज कराए जाने में विलंब हुआ था, यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि अभि. सा. 1 - आहत का पिता एक ग्रामवासी है और अभि. सा. 2 और 3 के माध्यम से घटना के संबंध में सुनने पर, वह घटनास्थल की ओर दौड़ा था, अपनी पुत्री के शरीर को ढंकने के लिए व्यवस्थाएं की थीं, को अभियुक्त को खोंज निकालने के लिए कुछ समय तलाश की थी और

तत्पश्चात्, पुलिस थाना अपराह्न 11.05 बजे पहुंचा था जिसकी दूरी दो किलोमीटर है । यदि हम संपूर्ण घटना पर विचार करें जैसाकि अभि. सा. 1 द्वारा वर्णन किया गया है, तब यह अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है कि वहां पर अयुक्तियुक्त और अव्यक्त विलंब किया गया था जो कि अभियोजन पक्षकथन की जड़ को खंडित करता हो । दूसरी ओर, प्रस्तुत की गई सामग्रियों पर विचार करते हुए, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि विलंब को अभि. सा. 1 द्वारा उचित रूप से स्पष्ट किया गया है, इसके विपरीत भी, इसका एक असमान्य होने के रूप में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता जैसाकि उच्च न्यायालय द्वारा त्रुटिपूर्ण मत व्यक्त किया गया है ।

13. यद्यपि यह कथन किया गया है कि सभी विवरण जो कि अभि. सा. 1, 2 और 3 द्वारा बताए गए प्रथम इत्तिला सूचना में उल्लेख नहीं किए गए थे जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा सही तौर पर मत व्यक्त किया गया है, किन्तु प्रथम इत्तिला सूचना एक विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिया) नहीं है । यह घटना के घटित होने की एक सूचना मात्र है और इसमें उक्त घटना से संबंधित सभी तथ्यों के अन्तर्विष्ट किए जाने की आवश्यकता नहीं है ।

14. अन्वेषक अधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए कथन और न्यायालय के समक्ष साक्ष्य के बीच भिन्नता के संबंध में दलील पर विचार करते हुए, हम पहले ही यह अभिव्यक्त कर चुके हैं कि विरोधाभास अधिक नहीं है और इनसे अभियोजन पक्षकथन प्रभावित नहीं हुआ है । यह अवेक्षा की जानी चाहिए कि अन्वेषक अधिकारी के समक्ष कथन और न्यायालय के समक्ष कथन कुछ अंतराल के पश्चात् किए गए थे और कथनों में कुछ भिन्नता (फेर-फार) होना अवश्यंभावी है । दोनों कथनों की जांच करने के पश्चात, हम संतुष्ट हैं कि लोप अधिक नहीं है और अभियोजन पक्षकथन के लिए घातक नहीं है और इससे अभियोजन साक्ष्य के हित के प्रतिकूल कुछ कारित नहीं होना चाहिए । तदनुसार हम अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को नामंजूर करते हैं । हम पहले ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों यथा अभि. सा. 2 और 3 के साक्ष्य न केवल विश्वसनीय है अपितु वे स्वतंत्र हैं । इसके अतिरिक्त, अभियुक्त के साथ किसी पूर्व शत्रुता के अभाव में अभियुक्त को मिथ्या से आलिप्त किए जाने का प्रश्न नहीं उठता है ।

15. अंततः, अब हम चिकित्सक के साक्ष्य पर विचार करेंगे जिन्होंने मृतका के शव की शव-परीक्षा की थी । डा. अवधेश कुमार (अभि. सा. 4)

जो जिला अस्पताल बुलंदशहर से संलग्न है, ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि तारीख 6 मार्च, 2002 को कांस्टेबल जगत सिंह और कांस्टेबल उस्मान, कांछी लाल की पुत्री कुमारी रोशनी के शव को सुसंगत कागजातों, नमूना मुद्रा छाप इत्यादि के साथ शव की शव परीक्षा किए जाने के लिए लाए गए थे । दोनों ने उनके समक्ष उक्त शव की भी शनाख्त की थी । उन्होंने शव के बोरे पर लगी हुई मुहर का मिलान किया और इसे सही पाया और बोरे की पैकिंग भी सही पाई गई थी । इसके आगे उन्होंने यह अभिसाक्ष्य दिया कि तारीख 6 मार्च, 2002 के अपराह्न 3.30 पर उन्होंने शव की शव-परीक्षा की थी । मृतका रोशनी की आयु लगभग 11 वर्ष थी और वह देखने में औसत शारीरिक कद-काठी की थी । उन्होंने मृतका-रोशनी के शव पर निम्नलिखित मृत्यु-पूर्व क्षतियां पाई थीं :–

> "1. गले के चारों ओर 20 सें. मी. x 2.5 सें. मी. आकार का बंधन चिन्ह और जो गले के नीचे की ओर कंठास्थि पर भी था ।
>
> 2. बाएं पूरे पैर के पीछे की ओर अनेक खड़ी खरोंचें, जो पीछे की ओर 10 सें. मी. से 3 सें. मी. आकार के बीच की थीं । मुंह संकुचित था और उसके गुप्तांग पर रक्त दृश्यमान था ।
>
> उसकी आंतरिक परीक्षा किए जाने पर, यह पाया गया था कि मस्तिष्क और मस्तिष्क की झिल्ली, दोनों लंबे सैक्स, श्वास प्रणाल, लीवर ऊतक, गुर्दा संकुचित पाए गए थे । गले की कंठास्थि पर अस्थिभंग पाया गया था । उसका यौनिच्छद फटा हुआ था । इसके द्रव स्लाइड तैयार की गई थी । तब इसे रोग विज्ञानी प्रयोगशाला भेजा गया था ।
>
> उनके विचार से, मृतका की मृत्यु का कारण गला घोंटे जाने के कारण और मृत्यु-पूर्व क्षतियां भी थीं । शवपरीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श ए-2 के रूप में चिन्हित किया गया था । एक विशेष प्रश्न के संबंध में, अभि. सा. 4 ने यह अभिकथन किया है कि 'उसकी मृत्यु से पूर्व मृतका से बलात्संग किया गया था और इसी कारण से उसका योनिच्छद विदीर्ण हुआ पाया गया ह' । अभि. सा. 4 का उपर्युक्त मत अभियोजन पक्षकथन को पूरी तरह से बल प्रदान करता है कि गला घोंटे जाने से पहले मृतका के साथ बलात्संग किया गया था । उन्होंने यह भी कथन किया कि मृतका की योनि में रक्त देखा गया था और उसकी योनिच्छद विदीर्ण हुआ पाया गया था ।"

16. श्री मणि ने यह इंगित किया है कि शुक्राणु जांच परीक्षण रिपोर्ट के अभाव में, बलात्संग के संबंध में निष्कर्ष को स्वीकार नहीं किया जा सकता है । यह सत्य है कि अभि. सा. 4 ने कथन किया है कि शुक्राणु अंतर्विष्ट करने वाली स्लाइड, जिसे परीक्षण के लिए भेजा गया था, जांच रिपोर्ट के साथ अभी तक वापस नहीं आई है । ऐसी रिपोर्ट के अभाव में बलात्संग के बारे में अभियोजन पक्षकथन पर संदेह नहीं किया जा सकता, विशेष रूप से, चिकित्सक के स्पष्ट निष्कर्षों के प्रकाश में कि उसका योनिच्छद विदीर्ण हुआ पाया गया था । अन्य अभियोजन साक्षियों ने भी उसके गुप्तांग पर क्षति और रक्त के रिसने का कथन किया है । चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा यह साबित हुआ है कि आहत से उसकी मृत्यु से पूर्व बलात्संग किया गया था और उसकी तारीख 5 मार्च, 2002 को मृत्यु हो गई । दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्षकथन रिकार्ड पर के चिकित्सीय साक्ष्य से पूरी तरह से संपुष्ट हुआ है और दुर्भाग्यपूर्वक उच्च न्यायालय उक्त साक्ष्य को महत्व देने में विफल रहा था ।

17. अन्वेषक अधिकारियों, अभि. सा. 6 और 7 ने प्रदर्श सं. ए-5 पंचनामा तैयार किया और संबंधित कागजात जो प्रदर्श सं. ए-6 से ए-9 हैं, को भी तैयार किया । प्रदर्श सं. ए-10, अन्वेषक अधिकारी द्वारा अभिगृहीत की गई वस्तुओं की सूची अर्थात्, सलवार, कच्छा और हवाई चप्पल जिन्हें तात्विक वस्तुएं सं. 1 से 3 के रूप में चिन्हित किया गया है, को अंतर्विष्ट करती है । अभि. सा. 6 ने एक स्थल नक्शा तैयार किया जो प्रदर्श ए-11 है ।

18. अंततः प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि चुन्नी (दुपट्टा) जिसे गर्दन को दबाने के लिए अभिकथित रूप से प्रयोग किया गया था, की बरामदगी की विफलता अभियोजन पक्षकथन के विरुद्ध जाती है । यह सत्य है कि अभियोजन ने उसे नहीं पाया है किन्तु तात्विक वस्तुओं के प्रकाश में, अभियोजन ने साक्षियों के साक्ष्य, चिकित्सक, जिसने शवपरीक्षण किया है, के कथन, उसके मत इत्यादि, अभियोजन पक्षकथन को प्रचुरता से साबित करते हैं और हम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के दावे को खारिज करते हैं ।

19. राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर विश्व में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों से संबंधित मामलों और बलात्कार के मामलों में अत्यधिक बढ़ोतरी प्रमुख चिंता का विषय है । भारत इसका कोई अपवाद नहीं है । यद्यपि कानूनी उपबंध ऐसे अपराधियों के विरुद्ध सख्त दंड का उपबंध करते

हैं, न्यायालय के लिए यह अन्ततोगत्वा निर्णय करना होता है कि क्या ऐसी घटना हुई है या नहीं । न्यायालयों को साक्ष्य का मूल्यांकन करने में अत्यधिक सतर्क होना चाहिए और अपराधी को मात्र सारहीन आधारों पर सही सलामत नहीं छोड़ा जाना चाहिए । वर्तमान मामले में, अभियुक्त ने बलात्संग किया था, जो नैतिक अंतःभावना को झकझोर देता है क्योंकि उसने अपनी कामुकता को संतुष्ट करने के लिए एक 11 वर्ष की आयु की लड़की को चुना और बाद में उसकी हत्या कर दी थी ।

20. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए मौखिक स्वीकार्य बातों और दस्तावेजी साक्ष्य, विशेष रूप से प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों अभि. सा. 2 और 3 जो स्वतंत्र साक्षी हैं और इसके साथ ही चिकित्सक (अभि. सा. 4) के साक्ष्य को देखते हुए, हम विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हैं और उच्च न्यायालय के निष्कर्ष से असहमति व्यक्त करते हैं । उच्च न्यायालय का विश्लेषण और अंततः निष्कर्ष, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए स्वीकार्य और विश्वसनीय सामग्री के प्रतिकूल हैं और हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अभियुक्त ने पहले बलात्संग का अपराध कारित किया और इसके पश्चात् मृतका की हत्या की । हम संतुष्ट हैं कि अभियोजन ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धाराओं 376 और 302 के अधीन दोनों आरोपों को सिद्ध किया है ।

21. उपर्युक्त को दृष्टि में रखते हुए, उच्च न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को खारिज किया जाता है । इस तथ्य को देखते हुए कि घटना वर्ष 2002 में घटित हुई थी, हम यह महसूस करते हैं कि आजीवन कठोर कारावास का दंड न्याय के उद्देश्य की पूर्ति करेगा ।

22. उपर्युक्त को देखते हुए, प्रत्यर्थी-अभियुक्त को संबंधित प्राधिकारी/न्यायालय के समक्ष दो सप्ताह की अवधि के भीतर आत्मसमर्पण करने का निदेश दिया जाता है जिसमें विफल रहने पर विद्वान् विचारण न्यायाधीश को उसे कारागार में भेजने के लिए आवश्यक प्रभावी कदम उठाने का निदेश दिया जाता है । राज्य द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की जाती है ।

अपील मंजूर की गई ।

अनू.

## जोधबीर सिंह

बनाम

## पंजाब राज्य

3 दिसम्बर, 2012

**न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् और न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा**

**किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (2000 का अधिनियम सं. 56) – धारा 7क [सपठित किशोर न्याय नियम, 2000 के नियम 12] – अपराध कारित किए जाने के समय किशोर होने का दावा – आयु अवधारण – पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय का प्रवेश रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि महत्वपूर्ण और मान्य है न कि गांव के चौकीदार द्वारा बनाए गए रजिस्टर में दर्ज जन्म-तिथि ।**

प्रस्तुत मामले में, अपीलार्थी ने न्यायाधीश विशेष न्यायालय अमृतसर के समक्ष यह कथन किया कि वह घटना की तारीख को किशोर था, चूंकि उसका जन्म तारीख 20 जुलाई, 1996 को हुआ था । उसने अपनी दलील के समर्थन में कि उसकी जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 थी, सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए तारीख 10 अक्तूबर, 2010 को एक प्रमाणपत्र को भी प्रस्तुत किया । आवेदन का राज्य द्वारा यह कथन करते हुए विरोध किया गया कि पूछताछ के दौरान, उसने यह कथन किया था कि उसका वर्ष 1991 में जन्म हुआ था और इस प्रकार वह घटना की तारीख को किशोर नहीं था । इसके अतिरिक्त गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए एक प्रमाणपत्र के प्रति का भी संदर्भ लिया जो यह दर्शित करता था कि अपीलार्थी की जन्म-तिथि तारीख 5 जुलाई, 1993 थी । विचारण न्यायालय द्वारा गांव के चौकीदार द्वारा दर्ज की गई जन्म-तिथि प्रमाण स्वरूप मानी और उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय का निर्णय मान्य ठहराते हुए चौकीदार द्वारा दर्ज जन्म-तिथि मान्य ठहराते हुए अपीलार्थी आयुक्त की दोषसिद्धि की गई । इससे व्यथित होकर अपील फाइल की गई । अपील मंजूर करते हुए,

**अभिनिर्धारित** – न्यायालय ने पंजाब राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, चंडीगढ़ के तारीख 5 अप्रैल, 2006 को जारी किए गए प्रमाणपत्र और सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए

प्रमाणपत्र की शुद्धता की अवेक्षा की है और सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा के प्रवेश द्वारा नाम वापस लेने के रजिस्टर को चुनौती नहीं दी गई है । अश्विनी कुमार सक्सेना वाले मामले में इस न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि किशोर न्याय अधिनियम की धारा 7क के साथ पठित किशोर न्याय नियम की नियम सं. 12 के अधीन "आयु अवधारण जांच" किस प्रकार की जाती है । "आयु अवधारण जांच" जो किशोर न्याय अधिनियम की धारा 7क सपठित किशोर न्याय नियम 2007 के नियम 12 के अधीन अनुध्यात की गई है न्यायालय को साक्ष्य लेने के लिए सामर्थ्य बनाती है और उक्त प्रक्रिया में, न्यायालय यदि उपलब्ध हो तो मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्रों को ले सकता है । किसी मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्रों के अभाव में ही केवल न्यायालय को प्ले स्कूल से भिन्न पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय से जन्म प्रमाणपत्र की तारीख लेने की आवश्यकता होगी । केवल मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्र के अभाव में या पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय से जन्म-तिथि प्रमाणपत्र या पंचायत (शपथ पत्र नहीं अपितु प्रमाणपत्र या दस्तावेज) द्वारा दिए गए जन्म-तिथि प्रमाणपत्र को लेने की आवश्यकता होगी । किसी सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय मत प्राप्त करने का प्रश्न केवल तभी उत्पन्न होता है यदि उपर्युक्त वर्णित दस्तावेज उपलब्ध नहीं है । यदि किसी मामले में आयु का ठीक आकलन नहीं किया जा सकता, तब न्यायालय अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, यदि आवश्यक विचार करे, तो बालक या किशोर को एक वर्ष की अवधि के भीतर नीचे की ओर उसकी आयु मानते हुए फायदा दे सकता है । एक बार न्यायालय द्वारा ऊपर वर्णित प्रक्रियों का अनुसरण करते हुए आदेश पारित किए जाने पर उक्त आदेश ऐसे बालक या प्रश्नगत किशोर के संबंध में आयु का निश्चायक सबूत होगा । नियम 12 के उपनियम (5) में यह स्पष्ट किया गया है कि नियम 12 के उपनियम (3) को निर्दिष्ट करने के पश्चात् कोई प्रमाणपत्र या कोई अन्य दस्तावेजी सबूत प्राप्त करने और उसकी जांच करने के पश्चात् न्यायालय या बोर्ड द्वारा और कोई अतिरिक्त जांच नहीं की जाएगी । इसके अतिरिक्त, किशोर न्याय अधिनियम की धारा 49 अपनी संतुष्टि होने पर किसी के किशोर होने की आयु की उपधारणा कर सकेगा ।" (पैरा 11 और 12)

न्यायालय का यह मत है कि ऐसे मामले में जहां विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की शुद्धता को चुनौती नहीं दी गई है, सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त की माता प्रकाश कौर द्वारा किए गए

कतिपय कथनों पर अवलंब लेने में न्यायानुमत नहीं थे । सेशन न्यायालय ने गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेने में भी एक त्रुटि कारित की थी जिसकी आर. डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षा की गई थी । जब विधि पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय द्वारा जारी किए जन्म-तिथि को प्रमुख रूप से महत्व देती है, जिसकी शुद्धता विवादित नहीं है, वहां पर गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेने का कोई प्रश्न नहीं उठता । न्यायालय यह इंगित कर सकता है कि यह सभी विधिक पहलू पहले ही अश्विनी कुमार सक्सेना वाले मामले में चर्चा किए जा चुके हैं, इसलिए प्रश्न पर और आगे विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं उठती । उठाए गए विवाद्यक हमारे मत में पूर्णतया ऊपर वर्णित निर्णय के अधीन आता है । ऐसी परिस्थितियों में, हम इस अपील को मंजूर करते हैं । सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 अप्रैल, 2011 को पारित किए गए आदेश को अपास्त करते हैं और 2011 की दांडिक पुनरीक्षण सं. 1440 में तारीख 7 जुलाई, 2011 को दिए गए आक्षेपित निर्णय द्वारा आदेश को भी अपास्त करते हैं । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलार्थी घटना की तारीख को किशोर था और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा विचारण किया जाना चाहिए । सेशन न्यायालय को किशोर न्याय बोर्ड को फाइलें सुपुर्द करने का निदेश दिया जाता है जिससे कि विचारण किया जा सके जहां तक अपीलार्थी का संबंध है । (पैरा 13 और 14)

**अवलंबित निर्णय**

| | | पैरा |
|---|---|---|
| [2012] | 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5377 = (2012) 9 एस. सी. सी. 750 : **अश्विनी कुमार सक्सेना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** । | 7,12,14 |

**अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 1973. [2011 की विशेष अपील (दांडिक) सं. 9343 से उद्भूत]**

पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 7 जुलाई, 2011 को पारित किए निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

**अपीलार्थी की ओर से** श्री एस. के. सभरवाल

**प्रत्यर्थियों की ओर से** श्री कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति के. एस. राधाकृष्णन् ने दिया ।

**न्या. राधाकृष्णन्** – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. अपीलार्थी और संदीप सिंह को पुलिस अधीक्षक/तस्करी विरोधी दल द्वारा तारीख 26 सितम्बर, 2012 को गुरुद्वारा अटारी साहिब सुल्तानविंड, अमृतसर के निकट उस समय गिरफ्तार किया गया था, जब वे अपनी मोटरसाइकिल सं. पीबी 02 बीसी 1089 पर दो किलोग्राम हिरोईन की सुपुर्दगी करने के लिए एक व्यक्ति का इंतजार कर रहे थे । पुलिस थाना राज्य विशेष आपरेशन सेल द्वारा स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ की धाराओं 21, 25, 29, 61 और 85 के अधीन तारीख 26 सितम्बर, 2010 को प्रथम इत्तिला सूचना सं. 26 रजिस्ट्रीकृत की गई थी । अपीलार्थी द्वारा न्यायाधीश, विशेष न्यायालय, अमृतसर के समक्ष उन्हें विचारण के लिए किशोर न्याय बोर्ड के समक्ष उनके विरुद्ध मामला भेजने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था ।

3. अपीलार्थी ने न्यायाधीश विशेष न्यायालय अमृतसर के समक्ष यह कथन किया कि वह घटना की तारीख को किशोर था, चूंकि उसका जन्म तारीख 20 जुलाई, 1996 को हुआ था । उसने अपनी दलील के समर्थन में कि उसकी जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 थी, सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए तारीख 10 अक्तूबर, 2010 को एक प्रमाणपत्र को भी प्रस्तुत किया । आवेदन का राज्य द्वारा यह कथन करते हुए विरोध किया गया कि पूछताछ के दौरान, उसने यह कथन किया था कि उसका वर्ष 1991 में जन्म हुआ था और इस प्रकार वह घटना की तारीख को किशोर नहीं था । इसके अतिरिक्त गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए एक प्रमाणपत्र के प्रति का भी संदर्भ लिया जो यह दर्शित करता था कि अपीलार्थी की जन्म-तिथि तारीख 5 जुलाई, 1993 थी ।

4. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल की सुनवाई और अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात् सेशन न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया जो इस प्रकार है :–

> "अभिलेख पर का परिशीलन करने पर यह दर्शित होता है कि पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण करने का प्रमाणपत्र प्रदर्श क-1 जो शिक्षा विभाग, पंजाब द्वारा जारी किया गया था यह दर्शित करता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि तारीख 29 जुलाई, 1996

थी । आवेदक-अभियुक्त की माता ए. डब्ल्यू. 1 प्रकाश कौर ने जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 उल्लेख की है । उन्होंने यह कथन किया है कि जोधबीर सिंह की आयु साढ़े 14 वर्ष है । तथापि, अपनी प्रतिपरीक्षा में उक्त साक्षी प्रकाश कौर ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 थी और उन्होंने अपने विवाह की तारीख के संबंध में अनभिज्ञता प्रकट की । अपने पहले पुत्र के संबंध में उन्होंने यह कथन किया था कि उसका जन्म 15 माघ को हुआ था, किन्तु वह अपने सबसे बड़े पुत्र गुरसाहिब सिंह के जन्म के वर्ष को नहीं बता सकी । वह अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि बताने में भी सफल नहीं हुई यद्यपि उसने स्पष्ट रूप से अपनी मुख्य परीक्षा के दौरान तारीख बताई थी । वह यह भी नहीं बता सकी कि उसके विवाह के कितने वर्ष पश्चात् जोधबीर सिंह का जन्म हुआ था । यह दर्शित करता है कि आवेदक-अभियुक्त जोधबीर सिंह की माता प्रकाश कौर अपने पुत्र की जन्म-तिथि और इसी भांति उसकी आयु के संबंध में जानकारी नहीं रखती । आर. डब्ल्यू. 2 जगजीत सिंह चौकीदार ने यह कथन किया है कि उसके चौकीदार रजिस्टर के अभिलेख के अनुसार, जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि 5 जुलाई, 1993 थी । यहां पर भी प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/क दस्तावेज में काटा-पीटी है । यह सभी दर्शित करता है कि दस्तावेज प्रदर्श क-1 और दस्तावेज प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 2/क एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं और अभियुक्त की वास्तविक जन्म-तिथि दर्शित नहीं करते हैं । तारीख 26 सितम्बर, 2010 की प्रथम इत्तिला सूचना 26 के दांडिक मामले का अभिलेख यह दर्शित करता है कि अन्वेषण के दौरान अभियुक्त ने स्वयं को अवयस्क या किशोर नहीं दर्शाया था । यद्यपि उसके मामा दलबीर सिंह ने भी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धाराओं 21, 25 और 29 के अधीन अपराध के कारित किए जाने में अभियुक्त की सहभागिता के संबंध में सूचित किया था, किन्तु न तो उसके मामा और न ही उसके माता-पिता ने पुलिस को यह बताया था कि आवेदक-अभियुक्त जोधबीर सिंह अपराध के कारित किए जाने के समय अवयस्क था । अभियुक्त जोधबीर सिंह के शनाख्त प्रमाणपत्र में उसकी आयु 19-20 वर्ष उल्लेख की गई है । ऐसी परिस्थितियों में, विद्यालय प्रमाणपत्र और इसी भांति चौकीदार की रजिस्टर में आवेदक-अभियुक्त जोधबीर सिंह की जन्म-तिथि के संबंध में प्रविष्टि

सत्य प्रतीत नहीं होती है और उक्त अभिलेख किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के उपबंधों का असम्यक फायदा लेने के लिए गढ़े गए हैं ।"

5. अपीलार्थी ने, उपर्युक्त आदेश से व्यथित होकर पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के समक्ष 2011 की दांडिक पुनरीक्षण सं. 1440 फाइल की । उच्च न्यायालय ने सेशन न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त किए गए मतों से सहमति व्यक्त की और प्रबलता से निम्नलिखित परिस्थितियों पर अवलंब लेते हुए तारीख 7 जुलाई, 2011 को पुनरीक्षण अर्जी खारिज कर दी ।

"(i) याची की माता प्रकाश कौर ने ए. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित होते हुए प्रतिपरीक्षा के दौरान याची की जन्म-तिथि बताने में विफल रही है । वह यह भी नहीं बता सकी कि उसके विवाह के कितने वर्षों पश्चात् याची का जन्म हुआ था ।

(ii) स्वयं याची ने पूछताछ के दौरान अपने को अवयस्क या किशोर दर्शित नहीं किया था ।

(iii) उसके मामा दलबीर सिंह ने भी उसकी आयु के संबंध में पुलिस को कोई सूचना नहीं दी थी ।

(iv) शनाख्त प्रमाणपत्र में याची की आयु 19/20 वर्ष दी गई है ।"

6. उक्त आदेश से व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई है ।

7. श्री सिद्धार्थ मित्तल, अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि सेशन न्यायालय ने किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 7क और किशोर न्याय नियम 2007 के नियम 12 की व्यापकता का मूल्यांकन करने में घोर त्रुटि कारित की है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि न्यायालयों ने गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेकर घोर त्रुटि कारित की है और राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् पंजाब, चंडीगढ़ द्वारा जारी किए गए तारीख 5 अप्रैल, 2006 और सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए तारीख 19 अक्तूबर, 2000 के प्रमाणपत्र पर अवलंब न लेने में घोर त्रुटि कारित की है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि ऊपर उल्लिखित दोनों प्रमाणपत्र

यह इंगित करते हैं कि अपीलार्थी की जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 है और इसलिए घटना की तारीख अर्थात् 26 सितम्बर, 2010 को अपीलार्थी किशोर था । **अश्विनी कुमार सक्सेना** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर अपनी दलील के समर्थन में मुख्य रूप से अवलंब लिया है ।

8. श्री सौरभ अजय गुप्ता, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से उपस्थित हुए विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए आदेश जिसकी उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी, में कोई अवैधता नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि विद्यालय रजिस्टर और गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र में दर्शाए गए जन्म-तिथि के संबंध में कुछ विरोध है, सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय, किशोर होने के दावे को नामंजूर करने के लिए गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेने पर न्यायानुमत थे ।

9. जब मामला सुनवाई के लिए आया, हमने तारीख 29 अगस्त, 2012 को भी आदेश पारित किया जो निम्न प्रकार है :–

> "याची की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् पंजाब, चंडीगढ़ के तारीख 5 अप्रैल, 2006 को जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लिया जिसमें यह कथन किया गया है कि याची की जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 है । उसकी एक फोटो कॉपी न्यायालय को और इसी भांति राज्य सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल को उपलब्ध कराई गई है ।
>
> याची की ओर से विद्वान् काउंसेल ने सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए तारीख 19 अक्तूबर, 2000 के प्रमाणपत्र की एक प्रति पर भी अवलंब लिया है जो याची की जन्म-तिथि 20 जुलाई, 1996 दर्शित करती है और सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा (तरण तारण) के प्रवेश और नाम हटाए जाने के संबंध में रजिस्टर का भी संदर्भ लिया गया है जो कि सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा (तरण तारण) के प्रधानाध्यापक/प्रिंसिपल द्वारा जारी किया गया था ।

---

[1] 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5377 = (2012) 9 एस. सी. सी. 750.

इन परिस्थितियों में हम राज्य को इन दस्तावेजों की शुद्धता की परीक्षा करने और उक्त प्रभाव के संबंध में एक शपथपत्र फाइल करने का निदेश देने के लिए आनत हैं ।"

10. उक्त आदेश के अनुसरण में तारीख 14 नवम्बर, 2012 को पुलिस उपाधीक्षक, राज्य विशेष आपरेशन प्रकोष्ठ, अमृतसर, पंजाब जिन्होंने हमारे आदेश में निर्दिष्ट प्रमाणपत्रों की शुद्धता के संबंध में जांच की थी, द्वारा एक शपथपत्र फाइल किया गया था । आदेश का सुसंगत भाग निम्न प्रकार है :–

"3. निदेशों के अनुसार, याची द्वारा प्रस्तुत किए गए निम्नलिखित दस्तावेजों की उनकी शुद्धता अभिनिश्चित करने के लिए जांच की गई है ।

(क) पंजाब राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 5 अप्रैल, 2006 को जारी किए गए प्रमाणपत्र ।

(ख) सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किया गया प्रमाणपत्र ।

(ग) सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा का प्रवेश और नाम वापस लेने के रजिस्टर की एक प्रति ।

4. श्री मनजिंदरजीत सिंह सरकारी हाई स्कूल चीमा (तरण तारण) के प्रधानाध्यापक ने विद्यालय में बनाए गए अभिलेख के आधार पर दस्तावेजों की शुद्धता को प्रमाणित किया है ।

5. श्री मनजिंदरजीत सिंह सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा (तरण तारण) के प्रधानाध्यापक द्वारा इस प्रभाव के प्रस्तुत किए गए कथन की प्रति उपाबंध आर - 1 पर संलग्न है ।"

11. हमने पंजाब राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, चंडीगढ़ के तारीख 5 अप्रैल, 2006 को जारी किए गए प्रमाणपत्र और सरकारी हाई स्कूल, नौशेहरा चीमा (तरण तारण) द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र की शुद्धता की अवेक्षा की है और सरकारी हाई स्कूल नौशेहरा चीमा के प्रवेश द्वारा नाम वापस लेने के रजिस्टर को चुनौती नहीं दी गई है ।

12. **अश्विनी कुमार सक्सेना** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस

न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि किशोर न्याय अधिनियम की धारा 7क के साथ पठित किशोर न्याय नियम के नियम सं. 12 के अधीन "आयु अवधारण जांच" किस प्रकार की जाती है ।

> "32. "आयु अवधारण जांच" जो किशोर न्याय अधिनियम की धारा 7क सपठित किशोर न्याय नियम 2007 के नियम 12 के अधीन अनुध्यात की गई है न्यायालय को साक्ष्य लेने के लिए सामर्थ्य बनाती है और उक्त प्रक्रिया में, न्यायालय यदि उपलब्ध हो तो मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्रों को ले सकता है । किसी मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्रों के अभाव में ही केवल न्यायालय को प्ले स्कूल से भिन्न पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय से जन्म प्रमाणपत्र की तारीख लेने की आवश्यकता होगी । केवल मैट्रिक या समतुल्य प्रमाणपत्र के अभाव में या पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय से जन्म-तिथि प्रमाणपत्र या पंचायत (शपथपत्र नहीं अपितु प्रमाणपत्र या दस्तावेज) द्वारा दिए गए जन्म-तिथि प्रमाणपत्र को लेने की आवश्यकता होगी । किसी सम्यक् रूप से गठित चिकित्सा बोर्ड से चिकित्सीय मत प्राप्त करने का प्रश्न केवल तभी उत्पन्न होता है यदि उपर्युक्त वर्णित दस्तावेज उपलब्ध नहीं है । यदि किसी मामले में आयु का ठीक आकलन नहीं किया जा सकता, तब न्यायालय अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से, यदि आवश्यक विचार करे, तो बालक या किशोर को एक वर्ष की अवधि के भीतर नीचे की ओर उसकी आयु मानते हुए फायदा दे सकता है ।
>
> 33. एक बार न्यायालय द्वारा ऊपर वर्णित प्रक्रियों का अनुसरण करते हुए आदेश पारित किए जाने पर उक्त आदेश ऐसे बालक या प्रश्नगत किशोर के संबंध में आयु का निश्चायक सबूत होगा । नियम 12 के उपनियम (5) में यह स्पष्ट किया गया है कि नियम 12 के उपनियम (3) को निर्दिष्ट करने के पश्चात् कोई प्रमाणपत्र या कोई अन्य दस्तावेजी सबूत प्राप्त करने और उसकी जांच करने के पश्चात् न्यायालय या बोर्ड द्वारा और कोई अतिरिक्त जांच नहीं की जाएगी । इसके अतिरिक्त, किशोर न्याय अधिनियम की धारा 49 अपनी संतुष्टि होने पर किसी के किशोर होने की आयु की उपधारणा कर सकेगा ।"

13. हमारा यह मत है कि ऐसे मामले में जहां विद्यालय छोड़ने के प्रमाणपत्र की शुद्धता को चुनौती नहीं दी गई है, सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय प्रतिपरीक्षा में अभियुक्त की माता प्रकाश कौर द्वारा किए गए

कतिपय कथनों पर अवलंब लेने में न्यायानुमत नहीं थे । सेशन न्यायालय ने गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेने में भी एक त्रुटि कारित की थी जिसकी आर. डब्ल्यू. 2 के रूप में परीक्षा की गई थी । जब विधि पहली बार प्रवेश लिए गए विद्यालय द्वारा जारी किए जन्म-तिथि को प्रमुख रूप से महत्व देती है, जिसकी शुद्धता विवादित नहीं है, वहां पर गांव के चौकीदार द्वारा जारी किए गए प्रमाणपत्र पर अवलंब लेने का कोई प्रश्न नहीं उठता ।

14. हम यह इंगित कर सकते हैं कि यह सभी विधिक पहलू पहले ही **अश्विनी कुमार सक्सेना** (उपर्युक्त) वाले मामले में चर्चा किए जा चुके हैं, इसलिए प्रश्न पर और आगे विचार किए जाने की आवश्यकता नहीं उठती । उठाए गए विवाद्यक हमारे मत में पूर्णतया ऊपर वर्णित निर्णय के अधीन आता है । ऐसी परिस्थितियों में, हम इस अपील को मंजूर करते हैं । सेशन न्यायालय द्वारा पारित किए गए तारीख 16 अप्रैल, 2011 को पारित किए गए आदेश को अपास्त करते हैं और 2011 की दांडिक पुनरीक्षण सं. 1440 में तारीख 7 जुलाई, 2011 को दिए गए आक्षेपित निर्णय द्वारा आदेश को भी अपास्त करते हैं । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि अपीलार्थी घटना की तारीख को किशोर था और किशोर न्याय बोर्ड द्वारा विचारण किया जाना चाहिए । सेशन न्यायालय को किशोर न्याय बोर्ड को फाइलें सुपुर्द करने का निदेश दिया जाता है जिससे कि विचारण किया जा सके जहां तक अपीलार्थी का संबंध है ।

अपील मंजूर की गई ।

अनू.

# संसद् के अधिनियम

## धार्मिक विन्यास अधिनियम, 1863[1]

---

[1] संक्षिप्त नाम, भारतीय संक्षिप्त नाम अधिनियम, 1897 (1897 का 14) द्वारा दिया गया ।

यह अधिनियम धार्मिक विन्यास (कनारा पर विस्तारित) अधिनियम, 1865 (1865 का बम्बई अधिनियम सं. 7) द्वारा कनारा को विस्तारित किया गया जिसे विशेष रूप से इसी प्रयोजन के लिए पारित किया गया ।

अनुसूचित जिला अधिनियम, 1874 (1874 का 14) की धारा 3(क) के अधीन अधिसूचना द्वारा यह निम्नलिखित अनुसूचित जिलों में प्रवृत्त घोषित किया गया है, अर्थात् :–

हजारीबाग, लोहारदागा (अब जिला रांची,
कलकत्ता राजपत्र, 1899, भाग 1 पृ. 44 देखिए)
तथा मानभूम जिलों और सिंहभूम जिले में

परगना दालभूम तथा कोल्हन ..... भारत का राजपत्र, 1881, भाग 1, पृ. 504 देखिए ।

मिर्जापुर जिले का अनुसूचित भाग..... भारत का राजपत्र, 1879, भाग 1, पृ. 383 देखिए ।

जौनसार बाबर..... भारत का राजपत्र, 1879, भाग 1, पृ. 382 देखिए ।

गंजाम और विशाखापत्तनम के अनसूचित जिले..... भारत का राजपत्र, 1898, भाग 1, पृ. 870 देखिए ।

असम (नार्थ लुशाई हिल्स को छोड़कर).....भारत का राजपत्र, 1897, भाग 1, पृ. 299 देखिए ।

इसका पश्चात्वर्ती उल्लिखित अधिनियम की धारा 5 के अधीन अधिसूचना द्वारा निम्नलिखित अनुसूचित जिलों, पर विस्तार किया गया है, अर्थात् :–

कुमाऊं और गढ़वाल..... भारत का राजपत्र, 1976, भाग 1, पृ. 606 देखिए ।

आगरा प्रान्त की तराई..... भारत का राजपत्र, 1876, भाग 1, पृ. 505 देखिए ।

अजमेर और मेरवाड़ा..... भारत का राजपत्र, 1877, भाग 1, पृ. 605 देखिए ।

**(1863 का अधिनियम संख्यांक 20)**

**[10 मार्च, 1863]**

**सरकार को धार्मिक विन्यासों के प्रबन्ध से अपने को निर्निहित करने के वास्ते समर्थ बनाने के लिए अधिनियम**

**उद्देशिका** – यह समीचीन है कि बंगाल में फोर्ट विलियम की प्रेसिडेंसी में और फोर्ट सेन्ट जार्ज की प्रेसीडेंसी में राजस्व बोर्डों और स्थानीय अभिकर्ताओं को बंगाल संहिता के विनियम 19, 1810 (बंगाल विनियम, 1810 का 19) द्वारा (मस्जिदों, हिन्दू मंदिरों, महाविद्यालयों की संभाल और अन्य प्रयोजनों के लिए अनुदान की गई भूमियों के किराए और उपज के सम्यक् विनियोग के लिए ; पुलों, सरायों, क्षेत्रों और अन्य सार्वजनिक भवनों के अनुरक्षण और मरम्मत के लिए ; और नजूल संपत्ति का राजगामी संपत्ति की अभिरक्षा और निपटान के लिए), और मद्रास संहिता के विनियम 7, 1817 द्वारा (मस्जिदों, हिन्दू मंदिरों और महाविद्यालयों की संभाल या अन्य सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनुदान की गई भूमियों के किराए और उपज के सम्यक् विनियोग के लिए ; पुलों, चौल्ट्रियों, या सत्रमों और अन्य

---

1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1-7-1965 से) यह अधिनियम दादरा और नागर हवेली पर विस्तारित किया गया एवं प्रवृत्त हुआ ।

धारा 22 भाग ख राज्यों के सिवाय संपूर्ण भारत पर लागू होती है ।

मद्रास हिन्दू रिलिजियस एण्डाउमेंट्स ऐक्ट, 1926 (1927 का मद्रास अधिनियम सं. 2) द्वारा मद्रास में हिन्दू धार्मिक विन्यास तक और उड़ीसा हिन्दू रिलिजियस एण्डाउमेंट्स ऐक्ट, 1939 (1939 का उड़ीसा अधिनियम सं. 4) द्वारा उड़ीसा में अधिनियम निरसित किया गया तथा बंगाल वक्फ ऐक्ट, 1934 (1934 का बंगाल अधिनियम सं. 13) द्वारा बंगाल में संशोधित किया गया ।

यह अधिनियम बिहार राज्य के किसी धार्मिक न्यास पर लागू नहीं होगा (1951 का बिहार अधिनियम सं. 1) ।

1964 के अधिनियम सं. 34 द्वारा यह अधिनियम किसी ऐसे वक्फ पर लागू नहीं होगा जिसे वक्फ अधिनियम, 1954 (1954 का अधिनियम सं. 29) लागू होता हो ।

1959 के मद्रास अधिनियम सं. 22 द्वारा यह अधिनियम मद्रास राज्य में प्रवृत्त नहीं रहेगा ।

सार्वजनिक भवनों के अनुरक्षण और मरम्मत के लिए ; और राजगामी संपत्ति की अभिरक्षा और निपटान के लिए) उन पर अधिरोपित कर्तव्यों में वहां तक अवमुक्त कर दिया जाए जहां तक उन कर्तव्यों में मस्जिदों या हिन्दू मंदिरों की संभाल के लिए और अन्य धार्मिक उपयोगों के लिए अनुदान की गई भूमियों का अधीक्षण ; ऐसे धार्मिक स्थापनों के अनुरक्षण के लिए बनाए गए विन्यासों का विनियोग ; उनसे संबंधित भवनों की मरम्मत और परिरक्षण, और उनके न्यासियों या प्रबंधकों की नियुक्ति सम्मिलित है अथवा ऐसे धार्मिक स्थापनों [1]**** के प्रबन्ध से किसी प्रकार का संबंध अंतर्ग्रस्त है, अत: निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित किया जाता है :–

1. [**1810 के बंगाल विनियम 19 और 1817 के मद्रास विनियम 7 के कुछ भागों का निरसन** ।] – निरसन अधिनियम, 1870 (1870 का 14) की धारा 1 तथा अनुसूची द्वारा निरसित ।

2. **निर्वचन-खंड** – इस अधिनियम में –

[2]*****

"सिविल न्यायालय" और "न्यायालय" – "सिविल न्यायालय" और "न्यायालय" शब्दों से, [3][धारा 10 में यथा उपबंधित के सिवाय,] अभिप्रेत है उस जिले में आरंभिक सिविल अधिकारिता वाला प्रधान न्यायालय जिसमें, [2][या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त सशक्त कोई अन्य न्यायालय जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर] वह मस्जिद, मंदिर या धार्मिक स्थापन स्थित है जिसके संबंध में या जिसके विन्यास के संबंध में इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन कोई वाद संस्थित किया जाएगा या आवेदन दिया जाएगा ।

3. **मस्जिदों आदि के बारे में सरकार द्वारा विशेष उपबंध किया जाना** –

---

[1] 1874 के अधिनियम सं. 16 की धारा 1 और अनुसूची द्वारा "और यह मस्जिदों, हिन्दू मंदिरों की संभाल या अन्य धार्मिक प्रयोजनों के लिए विन्यास के संबंधित बंगाल संहिता के विनियम 19, 1810 तथा मद्रास संहिता के विनियम सं. 7, 1817 का निरसन उस प्रयोजन के लिए समीचीन है," शब्दों और अक्षरों को निरसित किया गया ।

[2] 1914 के अधिनियम सं. 10 की धारा 5 और अनुसूची 2 द्वारा "संख्या" और "लिंग" से संबंधित खंड निरसित ।

[3] 1925 के अधिनियम सं. 21 की धारा 2 द्वारा अंत:स्थापित ।

प्रत्येक ऐसी मस्जिद, मंदिर या अन्य धार्मिक स्थापन के मामले में, जिसको [1][इस अधिनियम की उद्देशिका] में विनिर्दिष्ट विनियमों में से किसी के उपबंध लागू हैं और जिसके न्यासी, प्रबंधक, या अधीक्षक का नामनिर्देशन, इस अधिनियम के पारित होने के समय, सरकार या किसी लोक अधिकारी में निहित है, या उसके द्वारा किया जा सकता है, जिसमें ऐसे न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक का नामनिर्देशन सरकार या किसी लोक अधिकारी द्वारा पुष्टि के अधीन है, राज्य सरकार इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात्, यथाशक्य शीघ्र इसमें इसके पश्चात् यथा उपबंधित विशेष उपबंध केरगी ।

4. **राजस्व बोर्ड के भाराधीन न्यास संपत्ति का न्यासियों आदि को अंतरण** – प्रत्येक ऐसी मस्जिद, मंदिर, या अन्य धार्मिक स्थापन के मामले में, जो इस अधिनियम के पारित होने के समय, किसी ऐसे न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक के प्रबंध के अधीन है, जिसका नामनिर्देशन न तो सरकार या किसी लोक अधिकारी में निहित है न उसके द्वारा किया जा सकता है और न उसकी पुष्टि के ही अधीन है, राज्य सरकार इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र, ऐसी संपत्ति के सिवाय जो इसमें इसके पश्चात् उपबंधित है, उस समस्त भू-संपत्ति या अन्य संपत्ति को, इस अधिनियम के पारित होने के समय राजस्व बोर्ड या किसी स्थानीय अभिकर्ता के कब्जे में या अधीक्षण के अधीन है और ऐसी मस्जिद, मंदिर या अन्य धार्मिक स्थापन की है, ऐसे न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक को अंतरित करेगी ;

**ऐसी संपत्ति के बारे में बोर्ड की शक्तियों की समाप्ति** – और ऐसी मस्जिद, मंदिर या अन्य धार्मिक स्थापन के बारे में, और इस प्रकार अंतरित समस्त भूमि और अन्य संपत्ति के बारे में, राजस्व बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं की शक्तियां और उत्तरदायित्व वहां तक के सिवाय जहां तक वे ऐसे अंतरण के पूर्व उक्त राजस्व बोर्ड या किसी स्थानीय अभिकर्ता द्वारा किए गए कार्य और उपगत दायित्व के बारे में हैं, समाप्त और पर्यवसित हो जाएंगे ।

[2]5. **न्यास अधिकारी पद के रिक्त होने पर उसके उत्तराधिकार के**

---

[1] 1891 के अधिनियम सं. 12 की धारा 2 और अनुसूची 2 द्वारा "धारा 1" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] धारा 5 किसी ऐसे वक्फ पर लागू नहीं होगी जिसे वक्फ अधिनियम, 1954 (1954 का 29) लागू होता हो ।

**अधिकार के बारे में विवाद की दशा में प्रक्रिया** – जब कभी किसी कारण किसी न्यासी, प्रबंधक, या अधीक्षक का पद जिसको पूर्वगामी धारा के अधीन संपत्ति अंतरित कर दी गई है रिक्त हो जाता है और ऐसे पद के उत्तराधिकार के अधिकार के बारे में कोई विवाद पैदा हो जाता है तो जिस मस्जिद, मंदिर या धार्मिक स्थापन की वह संपत्ति है उसमें या उसकी पूजा या सेवा करने में या उससे संबंधित न्यासों में हितबद्ध किसी व्यक्ति के लिए यह विधिसम्मत होगा कि वह ऐसे मस्जिद, मंदिर या अन्य धार्मिक स्थापन का कोई प्रबंधक, नियुक्त किए जाने के लिए सिविल न्यायालय को आवेदन करे और तब ऐसा न्यायालय ऐसे प्रबंधक को तब तक कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकेगा जब तक कि कोई अन्य व्यक्ति ऐसे पद के उत्तराधिकार के अपने अधिकार को वाद द्वारा स्थापित नहीं कर लेता ।

**न्यायालय द्वारा नियुक्त प्रबंधकों की शक्तियां** – सिविल न्यायालय द्वारा इस प्रकार नियुक्त प्रबंधक का वे सब शक्तियां होंगी और वह उनका प्रयोग करेगा जो इस या किसी अन्य अधिनियम के अधीन, पूर्ववर्ती न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक को, जिसके स्थान पर ऐसा प्रबंधक न्यायालय द्वारा नियुक्त किया गया है, ऐसे मस्जिद, मंदिर और धार्मिक स्थापन के या उसकी संपत्ति के संबंध में प्राप्त थी या जिनका वह प्रयोग कर सकता था ।

6. **जिन न्यासियों को धारा 4 के अधीन संपत्ति का अन्तरण किया जाता है उनके अधिकार आदि** – प्रत्येक ऐसे न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक के, जिसको इस अधिनियम की धारा 4 में विहित रीति में किसी मस्जिद, मंदिर या अन्य धार्मिक स्थापन की भूमि और अन्य संपत्ति अंतरित की गई है, अधिकार, शक्तियां और उत्तरदायित्व, तथा उसकी नियुक्ति, निर्वाचन और हटाने की शर्तें, इस अधिनियम के अधीन वाद चलाए जाने के दायित्वाधीन होने के सिवाय और राजस्व बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं को ऐसे मस्जिद, मंदिर या धार्मिक स्थापन पर और ऐसे न्यासी, प्रबंधक या अधीक्षक पर इसके द्वारा निरसित विनियमों द्वारा दिए गए प्राधिकार के सिवाय जो प्राधिकार इसके द्वारा पर्यवसित और निरसित किया जाता है, वैसी ही होंगी जैसी वे उस दशा में होती जब यह अधिनियम पारित नहीं किया गया होता ।

ऐसी सब शक्तियां जो इस अधिनियम की उक्त धारा 4 के अधीन अन्तरित भूमि और अन्य सम्पत्ति के किराए की वसूली के लिए किसी बोर्ड या स्थानीय अभिकर्ता द्वारा प्रयुक्त की जा सकती हैं ऐसे अन्तरण की

तारीख से किसी ऐसे न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक द्वारा प्रयुक्त की जा सकेंगी जिसको ऐसा अन्तरण किया गया है ।

7. **समितियों की नियुक्ति** – इस अधिनियम की धारा 3 में वर्णित सभी मामलों में, राज्य सरकार प्रत्येक खण्ड या जिले में एक बार एक या अधिक समितियां नियुक्त करेगी जो इसके द्वारा निरसित विनियमों के अधीन राजस्व बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं का स्थान ग्रहण करेंगी और उनकी शक्तियों का प्रयोग करेंगी ।

**समितियों का गठन और कर्तव्य** – ऐसी समिति में तीन या अधिक व्यक्ति होंगे, और वह ऐसी किसी सम्पत्ति से, जिसके लिए इस अधिनियम की धारा 21 के अधीन विशेष रूप से उपबन्ध किया गया है, सम्बन्धित कर्तव्यों के सिवाय उन सभी कर्तव्यों का पालन करेगी जो ऐसे बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं पर अधिरोपित हों ।

8. **समिति के सदस्य की अर्हताएं** – उक्त समिति के सदस्य, उन धर्मों को जिनके प्रयोजनों के लिए, वह मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन स्थापित किया गया था या अब अनुरक्षित किया जाता है मानने वाले व्यक्तियों में से और जहां तक अभिनिश्चित किया जा सके उन व्यक्तियों की, जो ऐसी मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन के अनुरक्षण में हितबद्ध हैं, सामान्य इच्छा के अनुसार नियुक्त किए जाएंगे ।

समिति की नियुक्ति राजपत्र में अधिसूचित की जाएगी ।

**हितबद्ध व्यक्तियों की इच्छा अभिनिश्चित करना** – ऐसी नियुक्ति के बारे में, ऐसे व्यक्तियों की सामान्य इच्छा अभिनिश्चित करने के लिए, राज्य सरकार [1][राजपत्र में अधिसूचना द्वारा,] (इस अधिनियम के उपबन्धों से असंगत न होने वाले), ऐसे नियमों के अधीन जो ऐसी राज्य सरकार द्वारा बनाए जाएं, निर्वाचन करा सकती है । [1][इस धारा के अधीन बनाया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखा जाएगा ।]

9. **पदावधि** – यथापूर्वोक्त नियुक्त समिति का प्रत्येक सदस्य जीवनपर्यन्त पद धारण करेगा जब तक कि उसे अवचार या अयोग्यता के कारण हटा न दिया जाए ;

---

[1] 1983 के अधिनियम सं. 20 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15-3-1984 से) अंत:स्थापित ।

**हटाना** – और कोई भी ऐसा सदस्य सिविल न्यायालय के आदेश के बिना नहीं हटाया जाएगा जैसा कि इसमें इसके पश्चात्, उपबन्धित है ।

10. **रिक्तियों का भरा जाना** – जब यथापूर्वोक्त नियुक्त समिति के सदस्यों में कोई रिक्ति हो जाए तब ऊपर उपबन्धित रूप से हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा उस रिक्ति को भरने के लिए एक नया सदस्य निर्वाचित किया जाएगा ।

**प्रक्रिया** – समिति के शेष सदस्य यथासम्भव शीघ्र, ऐसी रिक्ति की सार्वजनिक सूचना देंगे और निर्वाचन संबंधी नियमों के अधीन, जो राज्य सरकार द्वारा बनाए जाएं, ऊपर उपबंधित रूप से हितबद्ध व्यक्तियों द्वारा नए सदस्य के निर्वाचन के लिए कोई दिन नियत करेंगे जो ऐसी रिक्ति की तारीख से तीन मास के पश्चात् का नहीं होगा ;

और जो कोई भी उक्त नियमों के अधीन निर्वाचित होगा वह ऐसी रिक्ति को भरने के लिए समिति का सदस्य होगा ।

**कब न्यायालय द्वारा रिक्ति का भरा जाना** – यदि यथावूर्वोक्त किसी रिक्ति को उसके होने के पश्चात् तीन मास के भीतर यथापूर्वोक्त निर्वाचन द्वारा न भरा जाए तो सिविल न्यायालय किसी भी व्यक्ति के आवेदन पर उस रिक्ति को भरने के लिए किसी व्यक्ति को नियुक्त कर सकेगा अथवा यह आदेश दे सकेगा कि उस रिक्ति को समिति के शेष सदस्यों द्वारा तुरन्त भर लिया जाए, जिस आदेश का पालन करना शेष सदस्यों का कर्तव्य होगा और यदि इस आदेश का पालन नहीं किया गया तो सिविल न्यायालय उक्त रिक्ति को भरने के लिए कोई सदस्य नियुक्त कर सकेगा ।

[1][**स्पष्टीकरण** – इस धारा में "सिविल न्यायालय" से उस जिले में आरम्भिक सिविल अधिकारिता वाला प्रधान न्यायालय अभिप्रेत है जिसमें वह मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन, जिनके लिए समिति नियुक्त की गई है, या उनमें से कोई स्थित है ।]

11. **समिति के किसी सदस्य का मस्जिद आदि का न्यासी आदि भी न होना** – इस अधिनियम अधीन नियुक्त समिति का कोई सदस्य, उस मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन का, जिसके प्रबनध के लिए ऐसी समिति नियुक्त की गई है, न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक भी नहीं हो सकेगा

---

[1] 1925 के अधिनियम सं. 21 की धारा 3 द्वारा जोड़ा गया ।

या उस रूप में कार्य भी नहीं करेगा ।

12. **समिति की नियुक्ति पर, बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं का सम्पत्ति को अन्तरित करना** – किसी ऐसी मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन के अधीक्षण के लिए और उसके कार्यों के प्रबन्ध के लिए ऊपर उपबन्धित रूप से किसी समिति की नियुक्ति पर तुरन्त राजस्व बोर्ड या उक्त बोर्ड के प्राधिकार के अधीन कार्य करने वाले स्थानीय अभिकर्ता, इसमें इसके पश्चात् यथा उपबन्धित के सिवाय उस समस्त भू-सम्पत्ति या अन्य सम्पत्ति को जो नियुक्ति के समय उक्त बोर्ड या स्थानीय अभिकर्ताओं के अधीक्षण के अधीन या कब्जें में है और उक्त धार्मिक स्थापन की है, ऐसी समिति को अन्तरित करेंगे ।

**बोर्ड और अभिकर्ताओं की शक्तियों और उत्तरदायित्वों की समाप्ति** – और तब ऐसी मस्जिद, मन्दिर और धार्मिक स्थापन के बारे में और इस प्रकार अन्तरित समस्त भूमि और अन्य सम्पत्ति के बारे में बोर्ड और स्थानीय अभिकर्ताओं की शक्तियां और उत्तरदायित्व, उपरोक्त के सिवाय और वहां तक के सिवाय जहां तक वे ऐसे अन्तरण के पूर्व उक्त बोर्ड और अभिकर्ताओं द्वारा किए गए कार्यों और उपगत दायित्वों के बारे में है, समाप्त और पर्यवसित हो जाएंगे ।

**समिति की शक्तियों का प्रारम्भ** – वे सब शक्तियां, जो इस धारा के अधीन अनतरित भूमि और अन्य सम्पत्ति के किराए की वसूली के लिए किसी बोर्ड या स्थानीय अभिकर्ता द्वारा प्रयुक्त की जा सकती थीं, ऐसे अन्तरण की तारीख से उस समिति द्वारा प्रयुक्त की जा सकेंगी जिसको ऐसे अन्तरण किया गया है ।

13. **लेखाओं के बारे में न्यासी आदि का कर्तव्य** – जिस मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन को इस अधिनियम के उपबन्ध लागू होते हैं उसके प्रत्येक न्यासी, प्रबंधक ओर अधीक्षक का कर्तव्य होगा कि वह ऐसे मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन के विन्यासों और व्ययों के बारे में अपनी प्राप्तियों और संवितरणों के नियमित लेखे रखे ;

**और समिति के कर्तव्य** – और इस अधिनियम के प्राधिकार के अधीन नियुक्त या कार्य करने वाली प्रत्येक प्रबन्ध समिति का कर्तव्य होगा कि वह ऐसी मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन के प्रत्येक न्यासी, प्रबन्धक और अधीक्षक से ऐसी प्राप्तियों और संवितरणों के नियमित लेखे

प्रत्येक वर्ष में कम से कम एक बार पेश करने की अपेक्षा करे और ऐसी प्रत्येक प्रबन्ध समिति उनके ऐसे लेखे स्वयं रखेगी ।

14. **न्यासभंग आदि की दशा में हितबद्ध व्यक्ति द्वारा अकेले ही वाद लाया जा सकना** – किसी मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन में, या उसकी पूजा या सेवा करने या उससे संबंधित न्यासों में हितबद्ध कोई व्यक्ति उसमें हितबद्ध अन्य व्यक्तियों में से किसी को वादी के रूप में संयोजित किए बिना, ऐसे मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन के न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक अथवा इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किसी समिति के सदस्य के विरुद्ध किसी ऐसे अपकरण, न्यासभंग या कर्तव्य-उपेक्षा के लिए सिविल न्यायालय में वाद ला सकेगा जो ऐसे न्यासी, प्रबधक, अधीक्षक या ऐसी समिति के सदस्य द्वारा क्रमशः उनमें निहित या उनको विश्वासपूर्वक सौंपे गए न्यासों के बारे में किए गए हों ;

**सिविल न्यायालय की शक्तियां** – और सिविल न्यायालय ऐसे न्यासी, प्रबंधक, अधीक्षक या समिति के सदस्य द्वारा किसी कार्य के विनिर्दिष्ट पालन के लिए निदेश दे सकेगा,

और ऐसे न्यासी, प्रबन्धक, अधीक्षक या समिति के सदस्य के विरुद्ध नुकसानी और खर्चों की डिक्री दे सकेगा,

और ऐसे न्यासी, प्रबन्धक, अधीक्षक या समिति के सदस्य को हटाने का निदेश भी दे सकेगा ।

15. **व्यक्ति को वाद लाने के लिए हकदार बनाने वाले हित का स्वरूप** – अन्तिम पूर्वगामी धारा के अधीन किसी व्यक्ति को वाद लाने का हकदार बनाने के लिए अपेक्षित हित का धन-सम्बन्धी या प्रत्यक्ष या तात्कालिक हित या ऐसा हित होना आवश्यक नहीं है जिससे कि वाद लाने वाला व्यक्ति न्यासों के प्रबन्ध या अधीक्षण में कोई भाग लेने का हकदार हो ।

जो कोई व्यक्ति किसी मस्जिद, मन्दिर या धार्मिक स्थापन में पूजा या सेवा में उपस्थित होने का अधिकारी है या उपस्थित होता रहा है अथवा किसी भिक्षा-वितरण के लाभ में भाग लेने का अधिकारी है, वह अन्तिम पूर्वगामी धारा के अर्थ में हितबद्ध व्यक्ति समझा जाएगा ।

16. **मध्यस्थों को निर्देश** – इस अधिनियम के अधीन संस्थित किसी वाद या कार्यवाही में उस न्यायालय के लिए, जिसके समक्ष ऐसे वाद या

कार्यवाही लम्बित है, यह आदेश देना विधिसम्मत होगा कि ऐसे वाद में जिस मामले पर मतभेद है वह एक या अधिक मध्यस्थों को विनिश्चय के लिए निर्दिष्ट किया जाए ।

**1940 के अधिनियम संख्यांक 10 का लागू होना** – जब कभी ऐसा कोई आदेश दिया जाए तो, [1][माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के अध्याय 4] के उपबंध, ऐसे आदेश और माध्यस्थम् को सभी मामलों में उसी रीति में लागू होंगे मानो पक्षकारों के आवेदन पर ऐसा आदेश [2][उक्त अधिनियम की धारा 21] के अधीन दिया गया हो ।

17. **1940 के अधिनियम संख्यांक 10 के अधीन निर्देश** – अन्तिम पूर्वगामी धारा की कोई भी बात, उक्त [3][माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की] उक्त [3][धारा 21] के अधीन पक्षकारों को न्यायालय में आवेदन करने के लिए या न्यायालय को निर्देश का आदेश देने के लिए निवारित नहीं करेगी ।

18. **वाद संस्थित करने की इजाजत के लिए आवेदन** – इस अधिनियम के अधीन कोई वाद जब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे वाद को संस्थित करने की इजाजत के लिए न्यायालय को प्रारम्भिक आवेदन न किया गया हो । [4]****

न्यायालय आवेदन के परिशीलन पर यह अवधारित करेगा कि वाद को संस्थित करने के लिए पर्याप्त प्रथमदृष्ट्या आधार है या नहीं, और यदि न्यायालय का यह निर्णय है कि ऐसे आधार हैं तो वाद संस्थित करने के लिए इजाजत दे दी जाएगी ।

---

[1] 1940 के अधिनियम सं. 10 की धारा 49 और अनुसूची 4 द्वारा "सिविल प्रक्रिया संहिता के अध्याय 6" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1940 के अधिनियम सं. 10 की धारा 49 और अनुसूची 4 द्वारा "उक्त संहिता की धारा 312" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1940 के अधिनियम सं. 10 की धारा 49 और अनुसूची 4 द्वारा "उक्त सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 312" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1870 के अधिनियम सं. 7 की धारा 2 और अनुसूची 3 द्वारा "आवेदन अस्टाम्पित पत्र पर किया जाए" शब्द निरसित ।

**खर्चे** – [1]*** यदि न्यायलय की यह राय है कि वाद न्यास के फायदे के लिए रहा है और वाद के किसी भी पक्षकार का कसूर नहीं है तो न्यायालय खर्चे का या उसके ऐसे भाग का संदाय, जो वह ठीक समझे, संपदा में से किए जाने का आदेश दे सकेगा ।

19. **न्यायालय का न्यास के लेखे दाखिल किए जाने की अपेक्षा कर सकना** – वाद संस्थित करने की इजाजत देने के पहले, या इजाजत देने के बाद कोई कार्यवाही किए जाने के पहले, या जब वाद लम्बित हो तब किसी भी समय न्यायालय, यथास्थिति, न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक अथवा समिति के किसी सदस्य को न्यास के लेखे या उनका उतना भाग, जो न्यायालय को आवश्यक प्रतीत हो, न्यायालय में दाखिल करने के लिए आदेश दे सकेगा ।

20. **आपराधिक न्यासभंग के लिए कार्यवाही** – पूर्वगामी धाराओं के अधीन किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित कोई वाद या कार्यवाही, आपराधिक न्यासभंग के लिए किसी दाण्डिक न्यायालय में किसी कार्यवाही पर किसी भी प्रकार से कोई प्रभाव नहीं डालेगी या हस्तक्षेप नहीं करेगी ।

21. **वे मामले जिनमें विन्यास भागतः धार्मिक और भागतः लौकिक प्रयोजनों के लिए हैं** – किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी भूमि या अन्य सम्पत्ति का अनुदान किसी ऐसे स्थापन की संभाल के लिए किया गया है जिसका स्वरूप भागतः धार्मिक और भागतः लौकिक है,

या जिसमें किसी स्थापन की संभाल के लिए किए गए विन्यास का विनियोग भागतः धार्मिक और भागतः लौकिक उपयोगों के लिए किया जाता है,

राजस्व बोर्ड किसी न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक, अथवा इस अधिनियम के अधीन नियुक्त किसी प्रबन्ध समिति को अन्तरण करने से पहले, यह अवधारित करेगा कि उक्त भूमि या अन्य सम्पत्ति का कितना भाग, यदि कोई हो, लौकिक उपयोगों में लगाए जाने के लिए उक्त बोर्ड के अधीक्षणाधीन रहे,

---

[1] 1870 के अधिनियम सं. 7 की धारा 2 और अनुसूची 3 द्वारा "वाद के उन्मोचन पर खर्चे की संगणना करते समय प्रारम्भिक आवेदन पर स्टाम्प शुल्क प्राक्कलित किया जाएगा और वाद के खर्चे में जोड़ा जाएगा" शब्द निरसित ।

और कितना भाग न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक, अथवा समिति के अधीक्षण के लिए अन्तरित किया जाए,

और कितनी वार्षिक रकम, यदि कोई हो, उक्त न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक, या समिति के अधीक्षण में इस प्रकार अंतरित की जाने वाली भूमि या अन्य सम्पत्ति पर प्रभारित की जाए और यथापूर्वोक्त लौकिक उपयोगों के लिए उक्त बोर्ड या स्थानीय अभिकर्ताओं को संदेय की जाए ।

ऐसे प्रत्येक मामले में इस अधिनियम के उपबन्ध केवल उस भूमि और अन्य सम्पत्ति के बारे में ही प्रभावी होंगे जो इस प्रकार अन्तरित की जाए ।

22. **सरकार द्वारा अब इसके पश्चात् से किसी मस्जिद, मन्दिर आदि की संभाल के लिए सम्पत्ति का भार धारण न किया जाना** – इस अधिनियम में यथा उपबन्धित के सिवाय, [1][केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार] के लिए या किसी सरकार के किसी अधिकारी के लिए अपनी शासकीय हैसियत में यह विधिसम्मत [2]*** नहीं होगा कि वह,

किसी मस्जिद, मन्दिर या अन्य धार्मिक स्थापन की संभाल के लिए अनुदान की गई या अन्यथा उसकी किसी भूमि या अन्य संपत्ति के अधीक्षण का भार ग्रहण करे या पुनर्गहण करे, अथवा

ऐसी किसी मस्जिद, मंदिर या अन्य स्थापन के अनुरक्षण के लिए किए गए किसी विन्यास के प्रबंध या विनियोग में कोई भाग ले, अथवा

उसका कोई न्यासी, प्रबन्धक या अधीक्षक नामनिर्देशित या नियुक्त करे, या किसी रूप में उससे [3]सम्बन्धित रहे ।

23. **अधिनियम का उसमें उल्लिखित विनियमों और पुरावशेष भवनों आदि के बारे में प्रभाव** – इस अधिनियम की किसी भी बात के बारे में यह

---

[1] विधि अनुकूलन आदेश, 1948 द्वारा "भारत में किसी सरकार" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1874 के अधिनियम सं. 16 की धारा 1 और अनुसूची द्वारा "इस अधिनियम के पारित होने के पश्चात्" शब्द निरसित ।

[3] बंगाल वक्फ अधिनियम, 1934 (1934 का बंगाल अधिनियम सं. 13) द्वारा केवल बंगाल पर लागू धारा 22 में एक परन्तुक जोड़ा गया ।

नहीं माना जाएगा कि वह इस अधिनियम में उल्लिखित [1]विनियमों के उपबंधों पर, वहां तक के सिवाय जहां तक उनका सम्बन्ध मस्जिदों, हिन्दू मन्दिरों और अन्य धार्मिक स्थापनों से है, प्रभाव डालती है; या सरकार को ऐसे विनियमों के उपबन्धों के अधीन ऐसे भवनों[2] को, जो अपनी पुरातनता के लिए, या अपने ऐतिहासिक या वास्तुकलात्मक महत्व के लिए प्रसिद्ध है या लोक सुविधाओं के लिए अपेक्षित है, हानि से बचाने के लिए और परिरक्षित करने के लिए उक्त विनियमों के उपबन्धों के अधीन ऐसी कार्रवाई करने से रोकती है जैसी वह आवश्यक समझती है ।[3]

24. [“**भारत**” ।] - भारतीय स्वतन्त्रता (केन्द्रीय अधिनियम तथा अध्यादेश अनुकूलन) आदेश, 1948 द्वारा निरसित ।

---

[1] अर्थात् बंगाल चैरिटेबल एण्डाउमेन्ट्स, पब्लिक बिल्डिंग एण्ड एनचीट्स रेगूलेशन, 1810 (1810 का बंगाल विनियम सं. 19) और मद्रास एण्डाउमेंट्स एंड एनचीट्स रेगूलेशन, 1817 (1817 का मद्रास विनियम सं. 7) ।

[2] अब प्राचीन संस्मारक परिरक्षण अधिनियम, 1904 (1904 का 7) भी देखिए ।

[3] बंगाल वक्फ ऐक्ट, 1934 (1934 का बंगाल अधिनियम सं. 13) द्वारा केवल बंगाल पर लागू धारा 23क जोड़ी गई ।